भवभूति की कृतियों का नाट्यशास्त्रीय विवेचन

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशिका

डॉ० राजलक्ष्मी वर्मा

प्रोफ़ेसर, संस्कृत-विभाग

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

प्रस्तुतकर्ता

अशोक कुमार दुबे

एम० ए० (संस्कृत)

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, इलाहाबाद

सितम्बर, १९९९ ई०

पुरोवाक्

नाटक मानव प्रकृति का दर्पण है । सम्भवतः इसीलिए समस्त दृश्य एवं श्रव्य काव्यों में उसका स्थान सर्वोपरि है । संस्कृत नाट्य-परम्परा वैदिक काल से प्रारम्भ होकर अद्यावधि नवीनता धारण किये हुए है । मानव की अपनी समस्त मनोवृत्तियाँ, विचार तथा आचरण नाटक में सहज ही प्रतिबिम्बित हो जाता है । जिस प्रकार किसी व्यक्ति का परिचय दूसरे उस व्यक्ति से अतिशीघ्र हो जाता है जो उसके विचारों के अनकूल हो; ठीक उसी प्रकार नाटक भी है जिसमें सामान्य मानव के व्यवहार को दृश्य-श्रव्य माध्यम से साधारणीकरण के धरातल पर दिखलाया जाता है । वस्तुतः साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में नाटक का स्थान दशरूपकों में शीर्षस्थ है ।

अपने अध्ययन काल की प्रारम्भिक घड़ियों में ही साहित्य के प्रति मेरा अनुराग जागृत हुआ और धीरे-धीरे यह आस्था बनकर उत्कर्ष को प्राप्त हुआ । कालान्तर में यदि किसी काव्य-विधा ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया तो वह है नाटक । बी०ए० के पाठ्यक्रम में निर्धारित 'अभिज्ञानशकुन्तलम्' तथा 'उत्तररामचरितम्' के अध्ययन से मेरी अभिलाषा तीव्रतर होती गयी, विशेषकर मुझे उत्तररामचरितम् नाटक की नायिका व भारतीय नारी का आदर्श देवी सीता ने अपने उदात्त चरित से अत्यन्त प्रभावित किया । उसी समय मन में यह विचार आया कि यदि मुझे कभी इस विषय पर शोध करने का अवसर मिला तो मैं स्वयं को कृतार्थ पाऊँगा । अवसर आने पर मेरी शोध-निर्देशिका **प्रो० (डॉ०) राजलक्ष्मी वर्मा** जी ने मेरी रुचि के अनुकूल विषय प्रदान कर मेरा उत्साहवर्धन किया। कार्य का प्रथम सोपान ही मेरे लिए सुखद सिद्ध हुआ, जिससे मेरा मनोबल बढ़ा और मैं एकाग्रचित्त होकर तन्मयता के साथ अपने शोध-कार्य में प्रवृत्त हुआ ।

महाकवि भवभूति तथा उनकी कृतियों पर पर्याप्त कार्य हो चुका है परन्तु नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से उनका विवेचन प्रायः कम ही उपलब्ध होता है । उनके उत्तररामचरितम् नाटक पर तो अनेक विद्वानों ने कार्य किया है किन्तु महावीरचरितम् और मालतीमाधवम् पर अपेक्षाकृत कम कार्य हुआ है । इसीलिए मैंने भवभूति की तीनों नाट्यकृतियों को अपने शोध का विषय बनाया है ।

शोध-प्रबन्ध कुल आठ अध्यायों में विभक्त है जिसमें क्रमशः संस्कृत नाट्य-परम्परा महाकवि भवभूति का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, शिल्प-विधान, इतिवृत्त-योजना, चरित्राङ्कन, रस-निरूपण, भाव-सौन्दर्य तथा नाट्यकला की सविस्तार विवेचना की गयी है । तीनों कृतियों के आधार पर पात्रों के चरित्र के माध्यम से भवभूति जिन मानवीय मूल्यों को उजागर करना चाहते हैं उनका भी यथासामर्थ्य निरूपण किया गया है ।

मेरी शोध-निर्देशिका ***डॉ० राजलक्ष्मी वर्मा*** प्रोफ़ेसर संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की सत्प्रेरणा, स्नेहिल व्यवहार तथा आत्मीयता से पोषित हो मेरे शोध-प्रबन्ध का नन्हा सा पौधा पुष्पित तथा पल्लवित होकर हरित तरुवर का रूप धारण करने में समर्थ हुआ है । मेरे कार्य के हर मोड़ पर उन्होंने अपना पूर्ण सहयोग तथा समुचित मार्गदर्शन प्रदान किया है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध उनके शुभ आशीर्वचनों का ही परिणाम है । मैं हृदय के अन्तस्तल से उनके प्रति कृतज्ञ हूँ । मैं शाब्दिक रूप से उनके प्रति आभार प्रकट कर उनकी सद्भावना एवं सहयोग की अवमानना करने की धृष्टता नहीं कर सकता । बस ······ उनके सौजन्य ने मुझे आजीवन उनका ऋणी बना दिया है ।

प्रो० सुरेशचन्द्र पाण्डे पूर्व विभागाध्यक्ष संस्कृत इलाहाबाद यूनिवर्सिटी,***डॉ० कमलेशदत्त त्रिपाठी*** प्रोफ़ेसर संस्कृत, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य समय में से कुछ क्षण मुझे प्रदान कर मेरा मार्गदर्शन किया है । इसके

अतिरिक्त जिन अन्य विभूतियों का मार्गदर्शन व आशीर्वाद प्राप्त हुआ है वे हैं - ***प्रो० आद्याप्रसाद मिश्र*** *पूर्व कुलपति इलाहाबाद यूनिवर्सिटी,* ***प्रो०चण्डिका प्रसाद शुक्ल*** *पूर्व विभागाध्यक्ष संस्कृत इलाहाबाद यूनिवर्सिटी,* ***प्रो०नीतीश कुमार सान्याल*** *कुलपति उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद,* ***डॉ०गयाचरण त्रिपाठी*** *प्राचार्य श्री गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद,* ***डॉ०राजेन्द्र मिश्र*** प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष संस्कृत हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला, ***डॉ०मृदुला त्रिपाठी*** *प्रोफ़ेसर संस्कृत विभाग इलाहाबाद यूनिवर्सिटी तथा* ***श्री सुभाष कुमार I.A.S.*** पूर्व जिलाधिकारी एवं आयुक्त इलाहाबाद मण्डल, मैं इन सभी महानुभावों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ ।

पूज्य माता एवं पिता को प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूँ जिनके आशीर्वाद की छाया सतत वर्तमान रहती है । पितृ-तुल्य श्री ***राजकेशर सिंह*** *संसद-सदस्य (लोक सभा)* के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने सदैव मेरा उत्साहवर्धन किया है । मेरी सहधर्मिणी सान्त्वना ने इस कार्य में मुझे सहयोग और सम्बल प्रदान किया है । मेरे बी०ए० के छात्र वीरेन्द्र, अमित एवं 'कॉमटेक कम्प्यूटर्स' गोविन्दपुर, इलाहाबाद के श्री प्रेम प्रकाश श्रीवास्तव ने मेरे शोध कार्य में सहयोग दिया है अतः इन सभी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ ।

संस्कृत नाट्य-जगत् के शिखरस्थ महाकवि भवभूति पर लिखने का उपक्रम मेरे लिए दुस्साहस ही है तथापि मैंने यथामति उनकी कृतियों की समीक्षा करने की चेष्टा की है । आशा करता हूँ कि सुधीजन मेरी त्रुटियों को क्षमा करेंगे तथा अपने बहुमूल्य सुझाव देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे ।

अशोक

दिनाङ्क - १० सितम्बर, १९९९ — अशोक कुमार दुबे

विषय-सूची

तृतीय अध्याय - **43 - 77**

शिल्प-विधान

* * * * * * *

अध्याय - १

संस्कृत नाट्य-परम्परा और भवभूति

'काव्येषु नाटकं रम्यम्' अर्थात् समस्त दृश्य एवं श्रव्य काव्यों में नाटक सर्वश्रेष्ठ है। नाटकों की प्राचीनता और लोकप्रियता की प्रमाणभूत सामग्री अनेक रूपों में उपलब्ध एवं सुरक्षित है । संस्कृत नाट्य-परम्परा के आदिम स्रोत हमारे वेद व वैदिक साहित्य हैं । वैदिक ऋचाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस काल में नाट्यकला को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी थी। **पञ्चम नाट्यवेद** के रूप में उसकी मान्यता का आधार भी उसकी यही लोकप्रियता रही है ।

वैदिक साहित्य के अतिरिक्त शास्त्रीय ग्रन्थों, पुराणों, काव्यों, नाटकों और कथाओं में भी उसके अस्तित्व एवं महत्त्व के प्रचुर प्रमाण बिखरे हुए हैं । प्रस्तुत अध्याय में नाट्य-परम्परा के विकास-क्रम के तीन सोपान प्रस्तुत किये जा रहे हैं :-

१. नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि के पूर्व की नाट्य-परम्परा ।

२. नाट्यशास्त्र की समकालिक नाट्य-परम्परा ।

३. नाट्यशास्त्र के बाद की नाट्य-परम्परा, जो १७ वीं शताब्दी ई० तक चलती रही ।

आचार्य भरत से पूर्व नाट्य-विषयक ग्रन्थों का प्रायः कुछ पता नहीं चलता है । किन्तु **नाट्यशास्त्र** और **अभिनवभारती** आदि ग्रन्थों में सुरक्षित नाट्याचार्यो के नामों से ज्ञात होता है कि आचार्य भरत के पहले भी नाट्य-विषयक कार्य हो चुका था । उनके पूर्ववर्ती नाट्याचार्यो एवं नाट्य-विषयक सामग्री का जिन ग्रन्थों में उल्लेख हुआ है, उनका विवरण इस प्रकार है –

	भरतपूर्व नाट्याचार्य	*साधनग्रन्थ*	*ग्रन्थकार*
१.	शिलालि	नाट्यशास्त्र	आचार्य भरत
२.	कृशाश्व	नाट्यशास्त्र	आचार्य भरत
३.	धूर्तिल	नाट्यशास्त्र	आचार्य भरत
४.	शाण्डिल्य	नाट्यशास्त्र	आचार्य भरत
५.	वात्स्य	नाट्यशास्त्र	आचार्य भरत

	भरतपूर्व नाट्याचार्य	*साधनग्रन्थ*	*ग्रन्थकार*
६.	कोहल	नाट्यशास्त्र	आचार्य भरत
७.	सदाशिव	नाट्यशास्त्र	आचार्य भरत
८.	पद्मभू	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
९.	द्रोहिणी	दशरूपकम्	धनञ्जय
१०.	व्यास	दशरूपकम्	धनञ्जय
११.	आञ्जनेय	भावप्रकाशनम्	- शारदातनय

नाट्यशास्त्र विषयक ग्रन्थों के निर्माता जिन पुरातन आचार्यो का नाट्यशास्त्र, अभिनवभारती, दशरूपकम् और भावप्रकाशन आदि ग्रन्थों में नामोल्लेख मिलता है, उनकी कोई भी स्वतंत्र रचना सम्प्रति उपलब्ध नहीं है । उनमें से अधिकतर आचार्य वैदिक युगीन हैं । इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक काल में ज्ञान की जिन विभिन्न शाखाओं का निर्माण हुआ, नाट्यविद्या भी उनमें से एक थी।[१]

वैयाकरण **पाणिनि**(५०० ई०पू०) की **'अष्टाध्यायी'** के उल्लेखानुसार 'पाराशर्य' तथा 'कर्मन्दक' ने भिक्षुसूत्रों (वेदान्त), 'शिलालि' तथा 'कृशाश्व' ने नटसूत्रों का निर्माण किया ।[२] **पतञ्जलि** (२०० ई०पू०) के **महाभाष्य** और जयादित्य तथा वामन की संयुक्त कृति 'काशिका' आदि ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें वेदों की शाखाओं के समकक्ष नटसूत्रों की स्वतंत्र शाखा का उल्लेख मिलता है । नाट्य-विषयक ग्रन्थों के प्रणेता जिन प्राचीन आचार्यो की नामावली ऊपर दी गयी है, उनके अतिरिक्त भरतपूर्व नाट्य सामग्री कुछ ऐसी है, जो कि अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय

---

१. द्रष्टव्य - *'भारतीय नाट्य-परम्परा और अभिनयदर्पण'*, वाचस्पति गैरोला - पृष्ठ - २०.

२. *'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयो:'* - अष्टाध्यायी - ४/३/११०

प्रामाणिक और प्रचुर है । नाट्यशास्त्र विषयक परवर्ती ग्रन्थों में जिन पुरातन शास्त्रीय ग्रन्थों का सोद्धरण नामोल्लेख हुआ है उनका विवरण इस प्रकार है[1] –

	ग्रन्थकार	*ग्रन्थ*	*साधनग्रन्थ*	*ग्रन्थकार*
१.	कोहल	कोहल प्रदर्शिका	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
२.	तुम्बुरु	अज्ञात	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
३.	दत्तिल	अज्ञात	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
४.	मतङ्ग	अज्ञात	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
५.	कात्यायन	अज्ञात	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
६.	राहुल	अज्ञात	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
७.	उद्भट	अज्ञात	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
८.	लोल्लट	अज्ञात	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव

---

१. *'भारतीय नाट्य-परम्परा और अभिनयदर्पण'*, वाचस्पति गैरोला - पृष्ठ - २१.

९.	शङ्कुक	अज्ञात	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
१०.	भट्टनायक	अज्ञात	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
११.	भट्टयंत्र	अज्ञात	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
१२.	कीर्तिधर	अज्ञात	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
१३.	मातृगृप्त	——	——	——
१४.	सुबन्धु	नाट्यपाराख्य	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
			सङ्गीतरत्नाकर	शाङ्र्गदेव
१५.	अश्मकुट्ट	अज्ञात	नाटकलक्षणरत्नकोश	सागरनन्दी
१६.	बादरायण	अज्ञात	नाटकलक्षणरत्नकोश	सागरनन्दी
१७.	शातकर्णी	अज्ञात	नाटकलक्षणरत्नकोश	सागरनन्दी
१८.	नखकुट्ट	अज्ञात	नाटकलक्षणरत्नकोश	सागरनन्दी

आचार्य कोहल से लेकर आचार्य नखकुट्ट तक जितने नाम हैं, उनमें अधिकतर सुपरिचित हैं । उनकी ऐतिहासिक क्रमबद्धता में विषमता हो सकती है, किन्तु वाङ्मय के विभिन्न क्षेत्रों में बिखरे होने के कारण उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है । इन प्राचीन आचार्यों ने नाट्यशास्त्र पर भी अपने स्वतंत्र विचार प्रतिपादित किए, इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है, क्योंकि परवर्ती नाट्याचार्यों ने अपने मतों की पुष्टि के लिए प्रमाण रूप में उनको उद्धृत किया है।

परवर्ती ग्रन्थों में उद्धृत ये अंश किन्हीं नाट्य-विषयक स्वतंत्र ग्रन्थों से सम्बद्ध हैं या नहीं, इस सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है । परन्तु इतना अवश्य है कि बहुत प्राचीन काल से आचार्य भरत के पूर्व ही नाट्य-विद्या पर स्वतंत्र ग्रन्थों का प्रणयन होना आरम्भ हो गया था ।

आचार्य भरत और उनका नाट्यशास्त्र

नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों के निर्माण की मूर्त परम्परा का प्रवर्तन आचार्य भरत के **'नाट्यशास्त्र'** से हुआ । उनके विषय में प्रायः सभी विद्वानों का अभिमत है कि वे महान् प्रतिभाशाली तथा युग प्रवर्तक महापुरुष थे । उनका 'नाट्यशास्त्र' एक विश्वकोशात्मक रचना है, जिसमें अनेक शिल्पों, नानाविध कलाओं और विभिन्न विद्याओं का दिग्दर्शन होता है ।

आचार्य भरत का व्यक्तित्व संस्कृत साहित्य में सर्वत्र व्याप्त है । नाट्यशास्त्र के निर्माता के रूप में उनका नाम विश्वसाहित्य में अमर है । उनका यह महान् ग्रन्थ, चारों वेदों का दोहन कर पञ्चम वेद के रूप में विश्रुत है और अपने निर्माता के यश एवं गौरव को सुरक्षित बनाये हुए है।

भरत किसी सम्प्रदाय, शाखा या चरण का नाम न होकर व्यक्ति विशेष का नाम था । उनके बाद उनकी परम्परा को आगे बढ़ाने वाले उनके सौ पुत्रों या शिष्यों द्वारा उन्हीं के नाम से उसका प्रचलन हुआ । व्यक्ति विशेष के लिए भरत शब्द का प्रयोग अनेक परवर्ती ग्रन्थों में देखने को मिलता है । इस प्रकार के ग्रन्थों में मुख्य रूप से महाकवि कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' और नाटककार भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' का नाम उल्लेखनीय है । कालिदास ने विक्रमोर्वशीयम् के एक संदर्भ में नेपथ्य से देवदूत द्वारा कहलाया हैः चित्रलेखा,

उर्वशी को शीघ्र ले आओ ! भरतमुनि ने आप लोगों को आठ रसों से युक्त जिस नाटक का प्रशिक्षण दिया है, भगवान् इन्द्र और लोकपाल उसका सुन्दर अभिनय देखना चाहते हैं ।[१]

इसी प्रकार भवभूति ने उत्तररामचरितम् के चतुर्थ अङ्क में महामुनि वाल्मीकि के आश्रम में महाराज जनक और महारानी कौशल्या आदि से लवकुश का परिचय प्रसङ्ग प्रस्तुत करते हुए जनक जब लव से श्रीराम के जीवन की उत्तरकथा के सम्बन्ध में पूँछते हैं तो लव कहता है: 'उस कथा को महामुनि ने बताया तो है; किन्तु प्रकाशित नहीं किया है । वह अपने आप में एक पूरा प्रबन्ध है, जिसमें करुण तथा विप्रलम्भ रसों की प्रधानता है और जो अभिनेय है । अपनी हस्तलिपि में लिखे हुए उस प्रबन्ध को महामुनि वाल्मीकि ने नृत्य, गीत एवं वाद्य (तौर्यत्रिक) के प्रयोग के लिए महामुनि भरत को दे दिया है ।[२] यह प्रबन्ध रचना महामुनि भरत को इसलिए दी गयी कि वे अप्सराओं के साथ उसका अभिनय करेंगे ।[३]

महाकवि कालिदास और भवभूति ने अतिरिक्त इस संदर्भ में आचार्य अभिनवगुप्त की अभिनवभारती, आचार्य नन्दिकेश्वर के अभिनयदर्पण और आचार्य धनञ्जय के दशरूपक का नाम उल्लेखनीय है । अभिनवभारती, नाट्यशास्त्र का व्याख्या ग्रन्थ है । इस दृष्टि से उसके

---

१. चित्रलेखे, त्वरय त्वरयोर्वशीम् -
'मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयो नियुक्तः । ललिताभिनयं तमद्य भर्ता द्रष्टुमनाः सलोकपालः ॥' -- 'विक्रमोर्वशीयम्' - कालिदास, २/१७ ।

२. ..... *तं स्वहस्तलिखितं मुनिर्भगवान् व्यसृजद् भगवतो भरतस्य तौर्यत्रिकसूत्रधारस्य ।'*
-- उत्तररामचरितम् - भवभूति (चतुर्थ अङ्क) ।

३. ..... *स किल भगवान् भरतस्तमप्सराभिः प्रयोगयिष्यतीति ।'*
— उत्तररामचरितम् - भवभूति (चतुर्थ अङ्क) ।

उल्लेखों की प्रामाणिकता निर्विवाद है । आचार्य अभिनवगुप्त ने अपने ग्रन्थ में भरतः, भरतादिभिः और भरतागम आदि शब्दों का प्रयोग किया है । उन्होंने आचार्य भरत द्वारा निर्दिष्ट कुछ पूर्व आचार्यों के मतों का भी उल्लेख किया है । इसके साथ ही उन्होंने भरत के परवर्ती नाट्याचार्यों के नामों तथा सिद्धान्तों को भी उद्धृत किया है । उनके इन उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि नाट्यशास्त्र के निर्माता का नाम भरत था, और उनके शिष्य, प्रशिष्यों द्वारा प्रवर्तित परम्परा को 'भरतादिभिः' के नाम से कहा गया । इसी प्रकार के अन्य उल्लेख भी आचार्य भरत और उनके शास्त्र के परिचायक हैं ।

परवर्ती नाट्य-विषयक ग्रन्थ

आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के बाद तीसरे वर्ग में उन नाट्य-विषयक ग्रन्थों का स्थान है जो विशुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से लिखे गये और जिनके द्वारा नाट्यशास्त्र की परम्परा मूर्त रूप में आगे प्रशस्त हुई । इन सभी ग्रन्थों का आदर्श यद्यपि नाट्यशास्त्र ही रहा, फिर भी उनके द्वारा अनेक नयी बातें भी प्रकाश में आयीं । इस प्रकार के ग्रन्थों में कुछ तो मौलिक हैं और अधिकतर भाष्य, वृत्ति एवं टीकायें हैं । कुछ के नाम अज्ञात हैं किन्तु उनके रचयिताओं के नाम ज्ञात हैं । इन परवर्ती ग्रन्थों का विवरण निम्नलिखित है –

	ग्रन्थ	*ग्रन्थकार*	*समय*
१.	भरतकोश	महेन्द्रविक्रम	७वीं शताब्दी ई०
२.	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त	१०वीं श०ई०
३.	दशरूपकम्	धनञ्जय	१०वीं श०ई०
४.	अवलोक-वृत्ति	धनिक (धनञ्जय के अनुज)	१०वीं श०ई०

५.	नाटकलक्षणरत्नकोश	सागरनन्दी	११वीं श०ई०
६.	नाट्यदर्पण	रामचन्द्र गुणभद्र	१२वीं श०ई०
७.	भावप्रकाशनम्	शारदातनय	१२वीं श०ई०
८.	अभिनयदर्पण	नन्दिकेश्वर	१२वीं-१३वीं श०ई०
९.	नाटकपरिभाषा	शिङ्गभूपाल	१४वीं श०ई०
१०.	नृत्याध्याय	अशोकमल्ल	१४वीं श०ई०
११.	नृत्यरत्नकोश	कुम्भकर्ण	१४ वीं श०ई०
१२.	नाटकचन्द्रिका	रूपगोस्वामी	१५ वीं श०ई०
१३.	नाट्यप्रदीप	सुन्दर मिश्र	१७ वीं श०ई०

नाट्यशास्त्र पर सर्वाधिक प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण टीका आचार्य **अभिनवगुप्त** ने लिखी है जो **अभिनवभारती** के नाम से प्रसिद्ध है । यह टीका इतनी प्रामाणिक एवं पाण्डित्यपूर्ण है कि अपने आप में उसका स्वतंत्र ग्रन्थ जितना महत्त्व है । इस प्रकार मूलग्रन्थों और टीकाग्रन्थों के रूप में नाट्यशास्त्र की परम्परा निरन्तर प्रशस्त होती गयी । टीकाओं के अतिरिक्त जो मूलग्रन्थ लिखे गये उन पर भी नाट्यशास्त्र का प्रभाव पड़ा । लगभग १७ वीं शताब्दी ई० तक इस विषय पर ग्रन्थ लिखे जाते रहे और इन सभी के मूल में उसकी प्रेरणा निहित रही ।[१]

---

१. *'भारतीय नाट्य-परम्परा और अभिनयदर्पण'*, *वाचस्पति गैरोला ।*

भवभूति के पूर्ववर्ती नाट्याचार्य

किसी भी साहित्यकार की कृतियों को सही-सही परखने के लिए उसके आगे और पीछे की साहित्य-परम्पराओं पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक होता है। साहित्यकार किसी युग विशेष की विशिष्ट प्रवृत्तियों की देन होता है और ऐसी प्रवृत्तियाँ युग की लोकमानस की रुचियों, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं की ही सहज परिणति होती हैं। जब भवभूति जैसे कवि जो अपनी युग-चेतना को नवीन स्वर प्रदान करते हैं, के कृतित्व का मूल्यांकन करना होता है; तो उन्हें उनसे पहले से चली आती हुयी परम्परा से सर्वथा विच्छिन्न करके नहीं देखा जा सकता है। भास, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति आदि कवि संस्कृत काव्य या नाटक के प्रतिनिधि हैं और इनका संस्कृत साहित्य की लम्बी एवं बहुरङ्गी प्रकृति के साथ अविभाज्य सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि भवभूति की नाट्य-प्रतिभा के सम्यक् अनुशीलन के लिए उनके पूर्ववर्ती नाटककारों की रचनाधर्मिता का अनुशीलन होना आवश्यक है।

इसी परम्परा में कविपुत्र एवं सौमिल्ल की चर्चा स्वयं कालिदास ने अपने **मालविकाग्निमित्रम्** की प्रस्तावना में की है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि इन नाटककारों की कोई भी नाट्य कृति हमारे समक्ष उपलब्ध नहीं है। इसी तरह भास भी सन् १९१२ ई० तक नामशेष जाने जाते रहे, किन्तु सौभाग्य से उसी वर्ष श्री **टी० गणपति शास्त्री** के सम्पादकत्व में भास के तेरह नाटकों का प्रकाशन हुआ। यद्यपि इन नाटकों में भास के नाम का कहीं उल्लेख नहीं था, फिर भी कई प्रमाणों के आधार पर इन्होंने सिद्ध किया कि वे सभी भास के ही नाटक हैं।

भास ने अपने नाटकों की विषय-वस्तु महाभारत, रामायण, पुराण तथा तत्कालीन कथा-साहित्य से ग्रहण की है। भास के तेरह नाटकों में **मध्यमव्यायोग, दूत-घटोत्कच, कर्णभार, उरुभङ्ग, पञ्चरात्र, दूतवाक्य**-यह छः नाटक महाभारत पर, **प्रतिमा** एवं **अभिषेक**

नामक दो नाटक 'रामायण' पर तथा **बालचरितम्, अविमारक, दरिद्रचारुदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्** तथा **स्वप्नवासवदत्तम्** - ये पांच पुराण कथा आदि पर आद्धृत हैं । इससे स्पष्ट होता है कि भास के समय या उनसे बहुत पहले से महाभारत एवं रामायण का भारतीय जनमानस पर बहुत अधिक प्रभाव रहा था ।

भास की कृतियों की नाटकीय क्षमता सर्वतोन्मुखी है । नाटकीय शिल्प-विधान के सन्दर्भ में उनके कुछ प्रयोग परवर्ती नाटककारों के अनुकरण के विषय बन जाते हैं । जहाँ तक भाषा एवं शैली का प्रश्न है, नाटकीय कथोपकथन के संवेगों से युक्त इतनी सरल, प्रवाहपूर्ण एवं स्वाभाविक शैली संस्कृत के दूसरे किसी भी नाटककार की नहीं है । इसी परम्परा में भास के बाद 'अश्वघोष' अवतीर्ण हुए ।

महाकवि अश्वघोष (प्रथम और द्वितीय शताब्दी ई०) संस्कृत साहित्य के प्रथम बौद्ध नाटककार हैं। ये बौद्ध सम्राट कनिष्क के राजगुरु एवं आश्रित राजकवि थे । कनिष्क का राज्यकाल सन् ७८ से १२० ई० तक निश्चित किया गया है, जैसा कि प्रचलित शक-सम्वत् से पता चलता है । अश्वघोष ने **सौन्दरनन्द** तथा **बुद्धचरितम्** नामक दो महाकाव्यों की रचना की । उसके अलावा एक पाश्चात्य विद्वान् को मध्यकालीन एशिया के तुरफान नामक स्थान पर इनके प्राचीन लेखों का बृहद् समुदाय भी प्राप्त हुआ है, जिसमें तीन रूपक भी पाये गये हैं । उनमें से एक का नाम शारिपुत्रप्रकरण है, अन्य दो के नाम तथा रचनाक्रम के विषय में जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई है । अश्वघोष के पश्चात् संस्कृत नाट्य-साहित्य की जिस उज्ज्वल विभूति की कृति पर हमारा ध्यान केन्द्रित होता है, वह हैं - ***महाकवि शूद्रक*** (द्वितीय/तृतीय शताब्दी ई० पू०) कृत 'मृच्छकटिकम्' जिसका समय विवादित रहा है । यदि यह कहा जाय कि कालिदास से पूर्व ज्ञात नाटककारों तथा अब तक प्राप्त प्राचीन नाटकों के आलोचनात्मक अनुशीलन के प्रकाश में भास के पश्चात् विशिष्ट नाटककार के रूप में शूद्रक का ही नाम आता है, तो कोई अत्युक्ति

नहीं होगी । संस्कृत में नाटकों के बाद सबसे अधिक लिखे जाने वाले रूपक प्रकरण ही हैं । महत्त्व की दृष्टि से भी नाटकों के पश्चात् इन्हीं का स्थान है ।

मृच्छकटिकम् प्रकरण ग्रन्थ है, जो शूद्रक रचित है । शूद्रक एक ऐसे नाटककार हैं, जो पुराने नाट्य-उपकरणों को बेहिचक ग्रहण करके उन्हें अभिनव स्थितियों एवं रूपों में ढाल लेते हैं तथा उनसे नित्य नवीन भव्य प्रासाद खड़ा कर लेते हैं । भास, शूद्रक, कालिदास, भवभूति आदि की नाट्यकृतियों ने अपने पीछे बहुत सारे नाटकों को तिरोहित करने में प्रमुख योगदान दिया । भास, शूद्रक एवं अश्वघोष के बाद हमारी दृष्टि कालिदास पर केन्द्रित हो जाती है । कालिदास की कृतियाँ, चाहे श्रव्य हों अथवा दृश्य, भारतीय-साहित्य, कला, संस्कृति आदि के स्वर्णयुग की सच्ची प्रतिनिधि हैं । भास ने अपनी कृतियों के माध्यम से जिन महान् नाटकीय सम्भावनाओं का द्वार उद्घाटित किया था, कालिदास ने अपने नाटकों में उन सबको मूर्त रूप प्रदान किया । भास में जो शक्ति है, वह कालिदास में तेज बनकर फूटी है, उनकी जो रिक्तता है, वह इनमें स्वस्थ पूर्ति बनकर प्रकट हुई है । भास की तरह 'महाभारत' की मूलकथा अथवा उसके किसी खण्ड पर भी उनका कोई नाटक आद्धृत नहीं है, हाँ उनके आकर्षण का स्थल 'महाभारत' का ही एक उपाख्यान है जो उनकी विश्व-प्रसिद्ध नाट्यकृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का उपजीव्य है । उनकी शेष दो नाट्यकृतियों 'विक्रमोर्वशीयम्' तथा 'मालविकाग्निमित्रम्' में से एक उर्वशी तथा पुरुरवा की वैदिक एवं पौराणिक कहानी पर आद्धृत है तथा दूसरे का उपजीव्य राजा अग्निमित्र का ऐतिहासिक कथानक है । किन्तु कालिदास की नाट्य-प्रतिभा की वास्तविक निष्पत्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में हुई है । कालिदास सौन्दर्य के कोमल सत्यों के अन्वेषी हैं । उनकी यह नाट्यकृति इसी अन्वेषण की सर्वोत्तम उपलब्धि है।[१]

---

१. *भवभूति और उनकी नाट्यकला - डॉ० अयोध्या प्रसाद सिंह, पृष्ठ - ७२*

भवभूति से पूर्व संस्कृत नाटकों ने शैली, भाव और वस्तु की दृष्टि से तीनों ही क्षेत्रों में उत्कर्ष प्राप्त कर लिया था । इस उत्कर्ष का एकत्र प्रतिनिधित्व कालिदास के नाट्य ग्रन्थों में प्राप्त होता है । कालिदास के अनन्तर भवभूति के अतिरिक्त केवल एक ही ऐसे नाटककार हैं जो अपनी नाट्यकृति में कुछ नये नाटकीय मूल्यों के स्थापना में समर्थ दिखते हैं, वे हैं - 'विशाखदत्त' जिनकी कृति 'मुद्राराक्षसम्' है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भवभूति से पूर्ववर्ती नाटककारों में प्रमुख रूप से भास और कालिदास ही ऐसे नाटककार हैं जिनकी रचना का भवभूति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । भवभूति इसी संस्कृत नाट्य-परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं जिन्होंने संस्कृत नाट्य-साहित्य में अपनी मौलिक प्रतिभा, समर्थ अभिव्यक्ति और अद्भुद नाट्यकला से नये प्रतिमान स्थापित किये हैं, उनकी तीन कृतियाँ - महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् और उत्तररामचरितम् उनकी यशोगाथा कहती हैं । इस शोध-प्रबन्ध के अगले अध्यायों में इनके व्यक्तित्त्व-कृतित्व तथा नाट्यकृतियों के शिल्प और सौन्दर्य पर सविस्तार चर्चा की जायगी ।

नाटकों का उद्‌भव एवं विकास

भारतीय नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति का उल्लेख आचार्य भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' नामक ग्रन्थ में किया है । अवस्था के अनुकरण को ही ***नाट्य*** कहते हैं ।[१] मानव में स्वाभाविक रूप से अनुकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है । इस अनुकरण की प्रवृत्ति का एकमात्र लक्ष्य आनन्द प्राप्ति, मनोरञ्जन करना ही माना जा सकता है । इस अनुकरण की प्रवृत्ति काव्य या कला में भी मानी गई है । सम्भवतः इसीलिए पाश्चात्य दार्शनिक अरस्तू ने 'कला को अनुकरण'[२] ही माना है। इस अनुकरण का अनूठा दिग्दर्शन नाटक में स्पष्टतः परिलक्षित होता है ।

भारतीय नाट्य-परम्परा के अनुसार जैसा कि नाट्यशास्त्र में बताया गया है, नाटक की उत्पत्ति त्रेता युग में ब्रह्मा के द्वारा की गई थी । सतयुग में लोगों को किसी मनोरञ्जन के साधनों की आवश्यकता न थी । त्रेतायुग में देवता लोग ब्रह्मा के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि वे ऐसे वेद की रचना करें जो समस्त मानव जाति के लिए मनोरञ्जन तथा आनन्द प्राप्ति का साधन हो । समस्त देवताओं के आग्रह पर ब्रह्मा द्वारा चारों वेदों - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का सारतत्त्व लेकर पञ्चम वेद *नाट्यवेद* की रचना की गयी । इस पञ्चम वेद के चार अंग पाये जाते हैं - पाठ्य, गीत, अभिनय तथा रस । इन चारों तत्त्वों को ब्रह्मा ने ऋक्, साम, यजुष् तथा अथर्ववेद से गृहीत किया ।[३]

इसके बाद ब्रह्मा ने विश्वकर्मा को एक नाट्यगृह बनाने का आदेश दिया तथा भरतमुनि को इसका सम्यक् ज्ञान कराकर उसके अभिनय का दायित्व भी उन्हीं के ऊपर सौंप दिया । ब्रह्मा

---

१. *अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्* - दशरूपकम् , धनञ्जय १/७ ।

२. ***Art is Imitation*** - Aristotle

३. *जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च । यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥*

नाट्यशास्त्र - भरत, १ ।

ने भरतमुनि को सौ शिष्य तथा अप्सराएं भी इसीलिए सौंप दी वे उन्हें व्यवहारिक नाट्यकला की शिक्षा दें । इस काम में शिव तथा पार्वती ने भी हाथ बटाया । नाट्य में शिव ने ताण्डव नृत्य का तथा पार्वती ने लास्य नृत्य का समावेश किया ।

यदि हम और पीछे मुड़कर देखें तो पता चलता है कि नाटकों का प्रचलन अति प्राचीन काल में ही हो चुका था । रामायण तथा महाभारत के वन पर्व में 'रामायण' एवं 'कौबेररम्भाभिसार' नामक नाटक अभिनीत हुये, और पहले देखें तो ऋग्वेद में यज्ञ में 'सोमविक्रय' का अनुष्ठान अभिनय रूप में हुआ । आगे चलकर सतयुग के बाद जन-समाज काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्व्यसनों में लिप्त हो गया था । इसे देखकर देवताओं ने जम्बू द्वीप का हाल ब्रह्मा से कहा । ब्रह्मा ने स्त्री पात्र की भूमिका हेतु सुन्दर अप्सराओं की सृष्टि की ।[१] रङ्गशाला के निर्माण एवं साज-सज्जा के लिए विश्वकर्मा को तथा उसके पात्रों की रक्षा के लिए देवताओं की नियुक्ति की । तैयारी पूर्ण होने पर असुर-पराजय, अमृतमंथन, त्रिपुरदाह नामक नाटकों का अभिनय हुआ । परन्तु नाटकों की उत्पत्ति से सम्बन्धित आचार्य भरत के मत से अनेक पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वान् संतुष्ट नहीं हुए ।

डॉ० विण्डिश, ओल्डेनवर्ग, पिशेल आदि संवाद सूक्तों को गद्य-पद्यात्मक मानते हैं । गद्य भाग वर्णनात्मक होने से धीरे-धीरे लुप्त हो गया । उनके मत में ब्राह्मण ग्रन्थों के अनेक आख्यान शुनःशेप, पुरुरवा-उर्वशी आदि उसी के अवशिष्ट अंश हैं । ये संवाद सूक्त ही नाटक के मूल हैं ।

ए०बी०कीथ, संवाद सूक्तों को अभिनय नहीं अपितु शंसन मात्र मानते है, फिर इस बात को स्वीकार करते है कि इन संवाद सूक्तों में नाटकों का बीज ढूढ़ा जा सकता है । उनके

---

१. *नाट्यालङ्कारचतुराः प्रादान्मह्यं प्रयोगतः* - नाट्यशास्त्र, आचार्य भरत ।

मत में प्राकृतिक परिवर्तनों को जनसाधारण के समक्ष मूर्त रूप में प्रदर्शित करने की अभिलाषा से नाटक का जन्म हुआ ।[१] इस मत की पुष्टि हेतु वे 'कंस-वध' नामक नाटक का दृष्टान्त देते हैं । जिसका उद्देश्य हेमन्त ऋतु पर वसन्त-ऋतु की विजय प्रदर्शित करना है ।

डॉ० रिजवे ने नाटक की उत्पत्ति 'वीरपूजा' से बतलाई है । उनके अनुसार वीर पुरुषों के प्रति सम्मान की भावना या प्रदर्शन से नाटकों की उत्पत्ति हुई है । जिस प्रकार ग्रीक देश में नाटक (Tragedy) का जन्म मृत पुरुषों के प्रति किये गये सम्मान की प्रक्रिया से हुआ उसी प्रकार भारतवर्ष में नाटक वीरपूजा से उत्पन्न हुए । रामलीला तथा कृष्णलीला इस प्रवृत्ति तथा सिद्धान्त को पुष्ट करने वाले आधुनिक उज्ज्वल दृष्टान्त हैं ।[२]

जर्मन विद्वान् *डॉ० रिचर्ड पिशेल* ने 'पुत्तलिका नृत्य' से नाटक की उत्पत्ति माना है । इनके अनुसार भारत ही पुत्तलिका नृत्य का जन्मदाता है और यहीं से अन्य देशों में भी इनका प्रचार-प्रसार हुआ । 'सूत्रधार' एवं 'स्थापक' जैसे पदों से अपने मत की उन्होंने पुष्टि की है ।

'सूत्रधार' का मूल अर्थ है 'डोरी को पकड़ने वाला' और 'स्थापक' का अर्थ है किसी वस्तु को लाकर रखने वाला । इन दोनों शब्दों का सम्बन्ध पुत्तलिका नृत्य से है । डोरी पकड़कर पुतलियों को नचानेवाला व्यक्ति 'सूत्रधार' कहलाता है । नाटक के उपकरण को सूत्र कहते हैं , तथा उन्हें धारण करने वाला सूत्रधार कहलाता है ।[३] भारतीय नाट्य के निर्देशक को सूत्रधार कहने का तात्पर्य यही हो सकता है कि भारतीय नाटकों की उत्पत्ति पुत्तलिका नृत्य से हुई । इस मत में एक ही तत्त्व है और वह यह है कि पुत्तलिका नृत्य सबसे पहले भारत में ही उत्पन्न हुआ और

---

१. *Theory of Vegitation spirit* - Dr. A. B. Keith, Sanskrit Drama- P.P. 45-48

२. *Drama & Dramatic dances of Non-European Races.*- Dr. Ridgeway

३. *नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते । सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥*

— साहित्यदर्पण, आ० विश्वनाथ ।

यहीं से वह अन्य देशों में भी प्रकाशित हुआ । परन्तु इस सामान्य नृत्य से रसभाव संवलित नाटक की उत्पत्ति मानना नितान्त निराधार और प्रमाण रहित है ।[१]

कुछ विद्वानों के अनुसार नाटक की उत्पत्ति छाया नाटकों से हुई । डॉ० पिशेल इस मत के उद्भावक हैं तथा इसका समर्थन डॉ० लूडर्स एवं डॉ० कोनो ने किया है । परन्तु यह मत समीचीन नहीं प्रतीत होता क्योंकि भारतवर्ष के छाया नाटक की प्राचीनता सिद्ध नहीं की जा सकती । 'दूतांगद' नामक छाया-नाटक संस्कृत में अवश्य प्रसिद्ध है परन्तु वह न तो इतना प्राचीन है और न ही महत्त्वपूर्ण ।

कुछ विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति 'मे-पोल नृत्य' से निश्चित किया है । पश्चिमी देशों में मई का महीना काफी आनन्द एवं उत्सव का होता है । उस महीने में एक स्थान पर एक लम्बा बाँस गाड़ दिया जाता है और उसके नीचे स्त्रियाँ और पुरुष साथ-साथ नृत्य किया करते हैं और इस तरह आनन्दपूर्वक दिन बिताते हैं । यह लोकनृत्य का एक नमूना है । पाश्चात्य विद्वान् नाटक की उत्पत्ति इसी मे-पोल से मानते हैं । भारतवर्ष में होने वाला इन्द्रध्वज उत्सव ठीक इसी प्रकार का समझा गया है । विद्वानों ने इस मत को ध्यान देने के योग्य भी नहीं समझा है । इन्द्रध्वज उत्सव नेपाल आदि देशों में अभी तक प्रचलित है । उसका समय, उसके अन्तर्गत भाव तथा उसकी रूढ़ि सब इस मत के विरुद्ध प्रतीत होते है ।[२]

प्रो० वेबर आदि नाटकों का उद्भव यूनानी नाटकों से मानते हैं । परन्तु इस मत में वह यह कहते हैं कि भारतीय नाटकों पर यूनानी नाटकों का प्रभाव अवश्य पड़ा । प्रो० विण्डिश ने भारतीय रङ्गमञ्च पर प्रयुक्त होने वाले शब्द 'यवनिका' से यूनानी प्रभाव माना है परन्तु यह मत निराधार ही है क्योंकि यूनानी रङ्गमञ्च पर यवनिका का प्रयोग ही नहीं मिलता तथा वह

---

१. ***संस्कृत साहित्य का इतिहास*** - डॉ० बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ - ४६७ - ४६८ ।

२. ***संस्कृत साहित्य का इतिहास*** - डॉ० बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ - ४६८ ।

नाटक खुले आकाश के नीचे एक वेदिका पर अभिनीत होता था। जबकि भारतीय नाटक का अभिनय 'नाट्यशाला' में होता था । इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय नाटकों पर यूनानी प्रभाव नहीं पड़ा ।

प्रो० मैक्समूलर, पिशेल, लेवी, मैकडॉनेल तथा ए०बी०कीथ आदि विद्वान् इस मत से सहमत हैं कि सर्वप्रथम नाट्य की उत्पत्ति भारत में ही हुई है जिसका विकास क्रम इस प्रकार हैं।

रामायण और महाभारत के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय नाटकों का विकास प्रगति पर था । नाटकों में रस-परिपाक, हास्य आदि पर ध्यान दिया जाता था ।[१] शैलूष और उनकी स्त्रियों से पता चलता है कि अभिनेता, अभिनेत्रियाँ भी थी । हास्य रस वाले भी नाटक भी खेले जाते थे। वाल्मीकि रामायण के निम्नलिखित श्लोकों में नाटक, नट, नर्तक का स्पष्ट उल्लेख है ।[२]

नाराजके जनपदे प्रकृष्टनटनर्तकाः । - रामायण - २ - ६७ - १५ ।

वादयन्ति तथा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे।नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च ।।

- रामायण - २-६९-४ ।

शैलूषाश्च तथा स्त्रीभिर्यान्ति० । - रामायण - २-८३-१५ ।

आरम्भ में ही अयोध्या के वर्णन में महर्षि वाल्मीकि ने बताया है कि वहाँ नाटक की मण्डलियाँ तथा वेश्यायें भी थीं - ***वधूनाटकसघैश्च संयुक्ताम्*** - राम के अभिषेक के समय भी रामायण में नटों, नर्तकों, गायकों आदि का उपस्थित होना तथा अपनी कला-कुशलता से लोगों को प्रसन्न करना लिखा है –

---

१. *रसैः शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः । वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम् ।।'*

- रामायण-वाल्मीकि, १-४-९ ।

२. *संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास* - डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ २६९ ।

नटनर्तकसंघानां गायकानां च गायताम् ।

यतः कर्णसुखा वाचः सुश्राव जनता ततः ।। (रामा०-महर्षि वाल्मीकि)

इसी प्रकार ***महाभारत*** में भी सूत्रधार, नट, नर्तक, आदि का उल्लेख प्राप्त होता है ।[१] महाभारत के विराट पर्व में रङ्गशाला का भी उल्लेख मिलता है । हरिवंशपर्व में वज्रनाभ नामक राक्षस की नगरी में 'रामायण' और 'कौबेररम्भाभिसार' नामक नाटक खेलने का उल्लेख प्राप्त होता है । ***वैयाकरण पाणिनि*** ने अपनी अष्टाध्यायी में दो नटसूत्रों का उल्लेख किया है जिसमें एक के रचयिता शिलालिन् थे और दूसरे के कृशाश्व ।[२] इससे स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि पाणिनि से पहले भी नाट्यशास्त्र अपनी पूर्ण उन्नत अवस्था में प्राप्त हो चुका था । पाणिनि ने न केवल अष्टाध्यायी की ही रचना की थी, अपितु 'जाम्बवतीजय' नामक नाटक भी लिखा था ।[३] महर्षि पतञ्जलि (१५० ई० पू०) ने महाभारत में 'कंसवध' एवं 'बलिबंध' नामक नाटक के खेले जाने का उल्लेख किया है ।[४]

भारतीय नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि माने गये । उनका नाट्यशास्त्र ३६ अध्यायों में विभक्त है जिसमें लगभग ७०० पृष्ठों में नाट्य-सम्बन्धी सभी विषयों का विस्तृत

---

१. ***इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा ।*** - महाभारत - १-५१-१५ ।

२. ***पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ।*** - अष्टाध्यायी-पाणिनि - ४-३-११०

कर्मन्दकृशाश्वादिनिः । - अष्टाध्यायी-पाणिनि - ४-३-१११

Levy के अनुसार शिलाली का अर्थ है 'जिसके पास शिला की शय्या है और कोई चीज सोने को नहीं, और कृशाश्व का अर्थ है 'जिसके घोड़े दुबले-पतले हैं' परन्तु ऐसा अर्थ समीचीन नहीं लगता है ।

३. ***स्वस्ति पाणिनयै तस्मै येन रुद्रप्रसादतः । आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्ववतीजयम् ।।***

४. ***ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति ।***

- महाभाष्य - महर्षि पतञ्जलि - ३-२-१११

एवं प्रामाणिक विवेचन प्राप्त होता है । इनका समय २०० ई० पू० के आस-पास माना जाता है। इससे स्पष्ट है कि तृतीय या चतुर्थ शताब्दी ई० पू० में भारतीय नाट्यकला अपने उत्कर्ष पर थी । इसी प्रकार बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों और वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में भी नाटकों एवं नटों का उल्लेख प्राप्त है । वात्स्यायन (दूसरी शताब्दी ई०) में स्पष्टतः लिखा है कि नट लोगों को नाटक दिखावें और दूसरे दिन नागरिक चाहे तो फिर नाटक देखें, नहीं तो नटों को विदा कर दें।[१] कुशीलवाश्चागन्तवः[२] .... इत्यादि वात्स्यायन के कामसूत्र में आये कुशीलव शब्द से भी ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम अभिनय का कार्य राम के पुत्र कुश और लव ने किया था । अतः उनके अनुकरण और उनकी स्मृति में अभिनेता के लिए कुशीलव नाम प्रचलित हो गया । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटकों का उद्भव जितना प्राचीन है उतने ही समय से उसके विकास की परम्परा भी दृष्टिगोचर होती है ।

---

१. *संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास* - डॉ० कपिलदेव द्विवेदी - पृष्ठ २६८-२७१ ।

२. *कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः । द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजां नियतं लभेरन् । यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा ।* - कामसूत्र - वात्स्यायन - १-४-२८, ३१ ।

अध्याय - २

भवभूति - व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संस्कृत साहित्य में कालिदास के बाद भवभूति का ही नाम श्रेष्ठ नाटककार के रूप में लिया जाता है । प्रायः संस्कृत के प्राचीन महाकवियों एवं नाटककारों के विषय में न पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री मिलती है और न ही उनके विषय में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है । महाकवि बाणभट्ट के बाद भवभूति ही सम्भव है कि ऐसे दूसरे कवि हैं जिन्होंने अपनी कृतियों में अपना परिचय दिया है । उनके जीवन व काल के विषय में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों में बहुत सीमा तक मतैक्य है । महाकवि भवभूति के विषय में विस्तृत विवरण उनके तीन नाटकों - *महावीरचरितम्* , *मालतीमाधवम्* तथा *उत्तररामचरितम्* से प्राप्त होता है ।

महावीरचरितम् की प्रस्तावना में सर्वाधिक विस्तृत विवरण मिलता है जबकि मालतीमाधवम् तथा उत्तररामचरितम् की प्रस्तावना में अपेक्षाकृत कम । महावीरचरितम् की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि भवभूति के पूर्वज दक्षिणापथ में विदर्भ (बरार) के अन्तर्गत पद्मपुर नामक नगर के रहने वाले थे ।[१] कुछ इसी प्रकार का परिचय हमें *मालतीमाधवम्* नाटक में भी प्राप्त होता है ।[२] *उत्तररामचरितम्* में यह विवरण अपेक्षाकृत संक्षिप्त है ।[३] इस आधार पर भवभूति के जीवनवृत्त का जितना अंश प्रकाशित होता है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि दक्षिणापथ की सीमायें विस्तृत थीं और इस विशाल क्षेत्र में पद्मपुर की वास्तविक स्थिति

---

१. *'अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम् । तत्र केचित्तैत्तिरीयाः काश्यपाश्चरणगुरवः पंक्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति । श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः ।"* -महावीरचरितम्-भवभूति, प्रस्तावना ।

२. *'अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरं नाम नगरम् ।'*– मालतीमाधवम्-भवभूति, प्रस्तावना ।

३. *'अस्ति खलु तत्र भवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः,पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः।'* - उत्तररामचरितम्-भवभूति, प्रस्तावना ।

निश्चित कर लेना सरल नहीं है । मालतीमाधवम् की प्रस्तावना में पद्मपुर की स्थिति निश्चित हो गयी है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि विदर्भ प्रान्त में पद्मपुर नामक नगर में भवभूति का जन्म हुआ था ।

टीकाकार जगद्धर ने मालतीमाधवम् की टीका में पद्मपुर का अर्थ पद्मावती कर दिया।[१] यह पद्मावती *मालती* की जन्मभूमि थी, जहाँ विदर्भराज के मंत्री का पुत्र *माधव* विद्याध्ययन के लिए भेजा गया था । मालतीमाधवम् के नवें अङ्क में दिये गये वर्णन के आधार पर ***जनरल कनिङ्घम*** ने नरवर (मध्य प्रदेश के उत्तर भाग में स्थित) को पद्मावती का आधुनिक नाम मान लिया है ।[२] ***एम० बी० गर्दे*** ने इसमें थोड़ा संशोधन किया और नरवर के समीपवर्ती एक छोटे से गाँव पद्मपवाया को, जो डबरा से १२ मील की दूरी पर स्थित है, पद्मावती का परिवर्तित रूप बताया ।[३] ***माधव व्यङ्कटेश लेले*** ने भी इसी मत का समर्थन किया है कि पद्मावती ही भवभूति का जन्मस्थान है ।[४] यह मान्यता तभी सार्थक हो सकती है, जब टीकाकार जगद्धर के अनुसार पद्मपुर को पद्मावती से अभिन्न मान लिया जाय । किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि भवभूति ने उसी नगर में जन्म लिया हो जहाँ उनके एक नाटक की नायिका मालती ने जन्म लिया है ।

---

१. ***'पद्मनगरं पद्मावती'*** – जगद्धर टीका, पृष्ठ ७ ।

२. *Cunningham - 'Archaeological Report for 1962-5 Vol II, P-307-308 A'*

३. *एम० बी० गर्दे - 'Archaeological survey of India' - Report for 1915 - 1916,* P. 101 - 103.

४. *मालतीमाधवम् - सार आणि विचार - माधवव्यङ्कटेश,* पृष्ठ ५

अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम् से स्पष्ट है कि पद्मपुर *दक्षिणापथ* में ही था और नर्मदा के उत्तर में दक्षिणापथ मानना युक्तिसङ्गत नहीं लगता है ।[१]

यदि पद्मावती और उसके निकटवर्ती पहाड़ों, नदियों व वनों का वर्णन भवभूति ने किया है तो इसका अर्थ यही सम्भव है कि वह नगर उन्होंने स्वयं देखा होगा । यह भी हो सकता है कि उन्होंने कुछ समय तक पद्मावती में निवास किया हो । *डॉ० बेल्वल्कर* का मत है कि माधव के रूप में भवभूति विद्याध्ययन के लिए पद्मावती गये होंगे ।[२]

नागपुर के समीप चन्द्रपुर या चाँदा के आसपास अब भी तैत्तिरीय शाखा के ब्राह्मण परिवारों का निवास स्थान है । अतः ***डॉ० भण्डारकर*** का मत है कि चाँदा जिले का पद्मपुर गाँव ही भवभूति की जन्मभूमि है ।[३] ***डॉ० वासुदेव विष्णु मिराशी*** ने अपने एक लेख में डॉ० भण्डारकर के इस मत का खण्डन कर दिया, क्योंकि (i) पद्मापुर, पद्मपुर से नामतः भिन्न है। (ii) वह नया बसा हुआ गाँव है । (iii) उसकी प्राचीनता सिद्ध करने के लिए उसके आसपास कोई अवशेष नहीं है ।[४] *डॉ० मिराशी* का मत है कि भवभूति का जन्मस्थान भण्डारा जिले में आमगाँव स्टेशन से पूर्व में स्थित पद्मपुर है जो प्राचीन काल में वाकाटक राजाओं की राजधानी थी । वहाँ अब भी प्राचीन अवशेष प्राप्त हो रहे हैं तथा उसके आसपास उसी प्रकार के

---

१. ***'नर्मदायाः दक्षिणेन देशो दक्षिणापथः'-असें वात्स्यायनकामसूत्राचा-टीकाकार यशोधरम्हणतो।'*** - ***Dr. V. V. Mirashi*** - संशोधन मुक्तावालिसर - १, पृष्ठ ७७ ।

२. ***S. K. Belvalkar*** - Rama's later History Introduction - P. XXX VII .

३. *भण्डारकर 'मालतीमाधव टिप्पणी'* – खण्ड पृष्ठ - ३ ।

४. *सह्याद्रि* – May 1935 .

भयानक जङ्गल हैं जिनका वर्णन भवभूति के नाटकों में उपलब्ध होता है ।[१] इस प्रकार हम देखते हैं कि भवभूति की जन्मभूमि पद्मपुर मानना ही उचित है । भवभूति को दण्डकारण्य और गोदावरी नदी का प्रदेश अत्यन्त प्रिय था । उन्होंने दक्षिण भारत का अधिक भ्रमण किया था । अतः जो स्थान उन्हें मनोहर लगा, उसका उन्होंने बारम्बार वर्णन किया है । परन्तु यह स्पष्ट है कि पद्मावती के समान अतिसूक्ष्म वर्णन उन्होंने किसी भी स्थान का नहीं किया है ।

भवभूति की वंश-परम्परा

महाकवि भवभूति ने **मालतीमाधवम्** की प्रस्तावना में ही अपने कुल का पूर्ण परिचय दिया है । उनके पूर्वज काश्यप गोत्र के ब्राह्मण थे । ये ब्राह्मणभोज के समय अपनी उपस्थिति द्वारा पूरी पंक्ति को पवित्र करते थे ।[२] वे पञ्चाग्नियों का आधान करने वाले, चान्द्रायण आदि व्रतों का अनुष्ठान करते थे, और सोमयज्ञ कर सोमरस का पान करते थे । वे ब्रह्मवादी तथा ब्रह्मपरक उपदेश देने में कुशल थे ।[३] अपने पूर्वजों के गुण-कीर्तन में भवभूति ने जिन विशेषणों का प्रयोग किया है, उससे स्पष्ट है कि भवभूति का वंश एवं परिवार वैदिक आचार-विचार, यज्ञ, जाप, ब्रह्मविद्या के अध्ययन-अध्यापन का केन्द्र था, उनका पारिवारिक नाम **उदुम्बर** था । उन्हें धन की आवश्यकता यज्ञादि सत्कृत्यों के सम्पादन हेतु अथवा परोपकार में उसका सदुपयोग

---

1. *Bhavbhuti – Dr. V. V. Mirashi*, P. 36 - 43 .

२. *'पंक्तिपावनाः - पंक्तौ भोजनादिगोष्ठ्यां पावनाः अग्रभोजिनः पवित्रावेत्यर्थः । यद्वा 'यजुषां पारगो यस्तु साम्नां यश्चापि पारगः। अथर्वशिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पंक्तिपावनाः'* मालतीमाधवम् - जगद्धर टीका ।

३. *'अग्रयाः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च । श्रोत्रियाऽन्वयजाश्चैव विज्ञेयाःपंक्तिपावनाः ।।'*- मनुस्मृति - ३ / १८४ - १८६

करने हेतु ही होनी थी, केवल संतान प्राप्ति की इच्छा से वे विवाह करते थे और तप की इच्छा से ही आयु का आदर करते थे । भवभूति से पाँच पीढ़ी पहले **महाकवि** नाम के प्रख्यात महात्मा उत्पन्न हुए जिन्होंने **वाजपेय यज्ञ** किया था । भवभूति के पितामह का नाम **भट्टगोपाल** पिता का नाम **नीलकण्ठ** था, इनकी माता **जतुकर्णी** थीं । भवभूति स्वयं **श्रीकण्ठ** उपाधि से विभूषित थे[1], वे व्याकरण, मीमांसा एवं न्याय के ज्ञाता थे ।

'श्रीकण्ठपदलाञ्छनः भवभूतिर्नाम' का प्रयोग महाकवि ने अपने तीनों नाटकों की प्रस्तावना में किया है, इससे पता चलता है कि उनका नाम भवभूति था और वे **श्रीकण्ठ** नाम से प्रसिद्ध थे।[2] भवभूति का नाम भवभूति ही था, यह मानने में विद्वानों में मतभेद है, उनके अनुसार भवभूति के पिता का नाम **नीलकण्ठ** था इसलिए पुत्र का नाम **श्रीकण्ठ** होना सहज है; परन्तु उनका यह तर्क युक्तिसङ्गत नहीं लगता क्योंकि नीलकण्ठ के पिता का नाम गोपाल था गोकण्ठ नहीं ।[3]

भवभूति कवि की उपाधि थी, यह कल्पना प्राचीन टीकाकारों ने उन दो श्लोकों के आधार पर की है जो भवभूति के तीनों नाटकों में नहीं पाये जाते हैं, महावीरचरितम् की टीका में *वीरराघव* ने लिखा है – कवि का पितृकृत नाम श्रीकण्ठ था । ***साम्बा पुनातु भवभूति पवित्रमूर्तिः*** की रचना से सन्तुष्ट होकर राजा ने उन्हें **भवभूति** की उपाधि दी थी । परन्तु वीरराघव ने न तो उस राजा का नाम बताया है न उसकी राजधानी का निर्देश दिया है ।

---

१. *'श्रीकण्ठपदं लाञ्छनं यस्य सः । भवभूतिरिति व्यवहारे तस्येदं नामान्तरम् ।'*- त्रिपुरारि टीका ।

२. *'श्रीः सरस्वती कण्डे यस्य स श्रीकण्ठः । तद्वाचकं पदं लाञ्छनं जिह्नं यस्यः सः । नाम्ना श्रीकण्ठः । प्रसिद्ध्या भवभूतिरित्यर्थः ।'*– टीकाकार - जगद्धर ।

३. *भवभूति के नाटक* – डॉ० ब्रजवल्लभ शर्मा, पृष्ठ ६ ।

अनन्तपण्डित 'आर्यासप्तशती' की टीका में लिखते हैं –

'तपस्वी का गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव ।

गिरिजाया: कुचं वन्दे भवभूतिसिताननौ ॥'[१]

इस श्लोक के कारण कवि को भवभूति की उपाधि प्राप्त हुई है । मालतीमाधवम् के टीकाकार जगद्धर का भी यही मत है[२] - मालतीमाधवम् के टीकाकार त्रिपुरारि कहते हैं – ***भवभूतिरिति व्यवहारे तस्यैव नामान्तरम् ।*** उत्तररामचरितम् की टीका में पण्डित शेषराज शास्त्री प्राचीन टीकाकारों के मतों का उल्लेख करते हैं - ***'कालिदासस्य दीपशिखेव, भारवेरातपत्रमिव, माघस्य घण्टेव उत्तररामचरितप्रणेतुश्च भवभूतिरित्युपाधिश्चैवमेव संगच्छते'*** किन्तु इन चार उदाहरणों में से पहले तीन कालिदास, भारवि और माघ की उपाधियों का प्रयोग उनके नाम के स्थान पर नहीं किया जाता है । प्रश्न उठता है कि क्यों कुछ विद्वान् भवभूति का वास्तविक नाम भूलकर उनकी उपाधि का ही प्रयोग करने लगे ?

भवभूति और उनके अनेक नाम

नाटककार **भवभूति** और प्रसिद्ध मीमांसक **उम्बेक** एक ही व्यक्ति हैं या भिन्न-भिन्न इस विषय पर विद्वानों में मतैक्य का अभाव है । **गउडवहो** कि भूमिका में **शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डित** के अनुसार मालतीमाधवम् की एक प्राचीन प्रति के तृतीय अङ्क की पुष्पिका[३] और षष्ठ अङ्क की पुष्पिका[४] से सिद्ध होता है कि भवभूति ही उम्बेकाचार्य थे ।

---

१. **आर्यासप्तशती** - अनन्तपण्डित १/३९ ।

२. *'नाम्ना श्रीकण्ठ: प्रसिद्धचा भवभूति: ।'* – मालतीमाधवम्, जगद्धर टीका ।

३. *'इति श्री कुमारिलशिष्यकृते मालतीमाधवे तृतीयोङ्क: ।'* -- गउडवहो, एस०पी० पंडित ।

४. *'इति कुमारिलस्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभवश्रीमदुम्बेकाचार्यविरचिते मालतीमाधवे षण्ठोऽङ्क:'*- Introduction to Gaudavaho - एस० पी० पण्डित, P.C.C. VI - ।

माधव व्यङ्कटेश लेले ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया है ।[१] चित्सुखाचार्य ने भवभूति और उम्बेक को एक मानने का प्रयास किया है ।[२] जबकि चित्सुखी के व्याख्याकार प्रत्यग्रूप भगवान् ने नयनप्रसादिनी टीका में **भवभूतिरुम्बेकः** कहकर दो नामों में एक ही व्यक्ति को प्रमाणित किया है।[३] ***डॉ० पी० वी० काणे*** ने भी भवभूति और उम्बेक को एक माना है ।[४] **वाचस्पति गैरोला** के अनुसार - श्रीकण्ठभट्ट उनके बचपन की यादगार है, भवभूति उनके कवि जीवन के सौगात है, उम्बेक उनके बुढ़ापे के दिनों की सुधि दिलाता है ।[५]

आचार्य ***बलदेव उपाध्याय*** के अनुसार यह तो प्रायः माना जाने लगा है कि जिस प्रतिभाशाली विद्वान् ने नाटकों में अपना नाम भवभूति रखा, उसी ने मीमांसा शास्त्र के ग्रन्थों में अपना *उम्बेक* नाम दिया तथा उसी ने कालान्तर में भगवान् शङ्कराचार्य के द्वारा अद्वैत मत में दीक्षित होने पर ***सुरेश्वराचार्य*** के नाम से प्रख्याति प्राप्त की ।[६] विश्वरूप और सुरेश्वर की एकता **डॉ० पी० वी० काणे** ने प्रमाणित कर दी है ।[७]

डॉ० भण्डारकर को भवभूति और उम्बेक की अभिन्नता में सन्देह है, ***डॉ० वी० वी० मिराशी***[८] एवं ***डॉ० अयोध्या प्रसाद सिंह***[९] के अनुसार ये दोंनो एक नाम

---

१. ***मालतीमाधवम् - सार आणि विचार*** – एम०वी० लेले, पृष्ठ ८४ ।
२. ***तत्त्वप्रदीपिका*** -- निर्णयसागर, १९१५ – पृष्ठ २६५ ।
३. ***भवभूतिरुम्बेकः*** -- चित्सुखी की नयनप्रसादिनी टीका , पृष्ठ २६५
४. ***History of Dharmashastra – P. V. Kane*** -- Vol. 5 P. 1194, 1198
५. ***भवभूति-वाचस्पति गैरोला,*** प्रथम संस्करण, १९६३ - पृष्ठ - ३२२ ।
६. ***संस्कृत सुकवि समीक्षा - आचार्य बलदेव उपाध्याय-*** प्रथम संस्करण, १९६३, पृष्ठ ३२२
७. ***History of Dharmashastra*** -- Dr. P.V. Kane , Vol.-V. , P. - 1198
८. ***Bhavbhuti*** -- Dr. V. V. Misashi, P. 82-99
९. ***भवभूति और उनकी नाट्यकला*** -- डॉ० अयोध्या प्रसाद सिंह , पृष्ठ - ११

होकर अलग-अलग व्यक्ति हैं, परन्तु ***डॉ० गङ्गासागर राय*** का मत है कि वर्तमान स्थिति में हम इतना ही कह सकते है कि भवभूति तथा उम्बेक एक ही व्यक्ति थे पर सुरेश्वर और विश्वरूप के साथ भवभूति की एकता निश्चित नहीं है ।[१]

भवभूति ने अपने आप को ***पदवाक्यप्रमाणज्ञः*** तीनों नाटकों की प्रस्तावना में कहा है। ***प्रमाणज्ञः*** का अर्थ है 'मीमांसादर्शन का ज्ञाता' । अतः इससे स्पष्ट होता है कि प्रसिद्ध मीमांसक उम्बेक और भवभूति एक ही हैं ।

भवभूति का समय

महाकवि भवभूति के काल के विषय में कुछ तथ्य ज्ञात है जिनके आधार पर उनकी पूर्व और पर सीमा सरलता से निर्धारित की जा सकती है । *बाणभट्ट* ने *हर्षचरितम्* के प्रारम्भ में अपने पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवियों, नाटककारों और लेखकों का उल्लेख किया है परन्तु भवभूति का नाम नहीं लिया है, भवभूति यदि उनसे पूर्ववर्ती होते तो इतने बड़े नाटककार का नाम नहीं छोड़ सकते थे, इससे यह बात स्पष्ट होती है कि भवभूति, बाण से परवर्ती हैं । बाणभट्ट हर्ष के आश्रित कवि थे । हर्ष का राज्याभिषेक ६०६ ई० तथा उसकी मृत्यु ६४८ ई० में हुई थी । अतः बाणभट्ट का समय ७वीं शदी का पूर्वार्द्ध माना जाता है । इस प्रकार भवभूति का समय ६५० ई० के बाद ही माना जा सकता है क्योंकि भवभूति ने कहीं-कहीं पर अपनी कृतियों में बाण की भाषा को आदर्श मानकर उसका अनुकरण किया है । *मालतीमाधवम्* के नवम व दशम अङ्कों में *कादम्बरी* का भाव दृष्टिगोचर होता है ।

---

५. ***महाकवि भवभूति*** -- डॉ० गङ्गासागर राय, पृष्ठ - १७ ।

कल्हण के अनुसार भवभूति कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा यशोवर्मा के आश्रित कवि थे।[१] यशोवर्मा को कश्मीर नरेश ललितादित्य ने पराजित किया था ।[२] ***राजतरंगिणी*** के अनुसार ललितादित्य का शासनकाल ६९३ से ७३६ ई० था । यशोवर्मा के राजकवि वाक्पतिराज ने प्राकृत काव्य *गउडवहो* में एक सूर्यग्रहण का वर्णन किया है जिसके दूसरे दिन ललितादित्य द्वारा यशोवर्मा पराजित किए गये थे । ***डॉ० याकोबी*** के गणना के अनुसार इस सूर्यग्रहण की दोनों तिथि १४ अगस्त ७३५ ई० है । उस समय भवभूति व वाक्पतिराज दोनों ही यशोवर्मा के आश्रय में थे । वाक्क्पतिराज ने भवभूति के सम्बन्ध में प्रशस्य पद लिखा है-

'भवभूइजलहिणिग्गय कव्वामय-रसकणा इव फुरन्ति ।

जस्स विसेसा अज्जवि वियडेसु कहाणिवेसेसु ।।'[३] – गउडगहो, पद्य - ७९९

इसका संस्कृत रूपान्तर इस प्रकार है –

भवभूति जलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति ।

यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु ।।

अर्थात् भवभूति के विकट कथा-प्रबन्धों में कुछ विशेष बातें आज भी इस प्रकार चमक रही हैं, जैसे भवभूति रूपी समुद्र से निकले हुए काव्यरूपी अमृत रस के कण हों ।

इससे यह सिद्ध होता है कि *गउडवहो* की रचना से पूर्व भवभूति अपनी कृतियों का निर्माण कर चुके थे, सूर्यग्रहण के वर्णन से यह निश्चित हो जाता है कि *गउडवहो* की रचना ७३३ ई० के पश्चात् हुई है और उससे पूर्व भवभूति अपने नाटक लिख चुके थे ।

---

१. *राजतरङ्गिणी* -- कल्हण, ४/१४४ ।

२. *राजतरङ्गिणी* -- कल्हण, – ४/१३४ ।

३. *गउडबहो* -- पद्य ७९९ ।

वामन (८वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) ने अपने ***काव्यालङ्कारसूत्र*** में भवभूति के पद्यों को उद्धृत किया है । ***धनञ्जय*** ने ***दशरूपकम्*** में उदाहरण के रूप में अनेक पद्य भवभूति के तीनों नाटकों से लिए हैं । धनञ्जय का समय १०वीं शताब्दी है, ११०० ई० के लगभग आचार्य ***मम्मट*** ने भी अपने ***काव्यप्रकाश*** में भवभूति के पद्य उद्धृत किये हैं । ***राजशेखर*** (८८०-९२०) ने ***बालरामायण*** में एक श्लोक दिया है और उसमें कहा है कि पहले वाल्मीकि कवि हुए, तत्पश्चात् वही *भर्तृमेण्ठ* हुए, वही *भवभूति* हुए और अब वही राजशेखर हैं । इस प्रकार राजशेखर ने अपने आप को भवभूति का अवतार बताया है ।

> ***बभूव वल्मीकिभवः पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।***
> ***स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया, स वर्तते संप्रति राजशेखरः ॥***[1]

भवभूति राजशेखर से पूर्व हुए यह तो निश्चित ही है, किन्तु इस श्लोक से यह भी सिद्ध हो जाता है कि राजशेखर के समय भवभूति इतने प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हो चुके थे कि राजशेखर ने स्वयं को उनका अवतार घोषित करने में गौरव का अनुभव किया है । राजशेखर का समय १०वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है । ***महिमभट्ट*** ने ***व्यक्तिविवेक*** में उत्तररामचरितम् के दो पद्य उद्धृत किये हैं । ***क्षेमेन्द्र*** ने भी अपनी रचनाओं में भवभूति के अनेक पद्यों को उद्धृत किया है । महिमभट्ट तथा क्षेमेन्द्र इन दोनों का समय ११वीं शताब्दी है, इसलिए भवभूति को उनके पहले होना चाहिए ।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ११वीं शताब्दी तक तथा उसके बाद भी अनेक कवियों तथा लेखकों ने भवभूति का उल्लेख किया है । ७वीं शताब्दी के पूर्व तक उनकी चर्चा नहीं प्राप्त होती , इसलिए भवभूति का समय ७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक निश्चित किया जा सकता है ।[2]

---

१. ***बालरामायण*** , १/१६

२. ***भवभूति के नाटक*** -- डॉ० ब्रजवल्लभ शर्मा , पृष्ठ - २

पाश्चात्य विद्वान् वेबर[1], श्रूडर[2], मैक्समूलर[3], मैक्डॉनल[4] और विन्सेण्ट स्मिथ[5] आदि ने भी भवभूति का यही समय निश्चित किया है ।

भवभूति की रचनायें

अभी तक उपलब्ध साहित्य के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भवभूति की तीन कृतियाँ हैं – ***महावीरचरितम्*** , ***मालतीमाधवम्*** और ***उत्तररामचरितम्*** । महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् सात-सात अङ्कों के नाटक हैं जबकि मालतीमाधवम् प्रकरण है जिसमें दस अङ्क हैं । मालतीमाधवम् में मालती और माधव नामक दो प्रेमियों की कथा निबद्ध है तथा महावीरचरितम् में राम के प्रारम्भिक जीवन से लेकर उनके राज्याभिषेक तक की कथा चित्रित की गई है । इसी प्रकार उत्तररामचरितम् में राम के राज्याभिषेक के बाद से सीता-निर्वासन तक की घटना का वर्णन है ।

भवभूति और उम्बेक को एक मानने पर उनके अन्य दो दार्शनिक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं । १. कुमारिलभट्ट के श्लोकवार्तिक की तात्पर्य टीका २. मण्डन मिश्र के भावनाविवेक की टीका। इसके अतिरिक्त जिन-जिन सुभाषित संग्रहों में भवभूति के उद्धरण प्राप्त होते हैं वे निम्नवत् हैं –

१.	शाङ्र्गधरपद्धति	२.	श्रीधरदासकृत सदुक्तिकर्णामृत
३.	जल्हणकृत सूक्तिमुक्तावली	४.	गदाधरकृत रसिकजीवन
५.	सुभाषितावली	६.	कवीन्द्रवचनसमुच्चय

---

1. *Indian Literature - Weber*, P. - 222
2. *Indian Literature & Culture - Leopold V. Shroeder*, P. - 647
3. *India, 'What Can It Teach Us' - MaxMuller* , P. 332 - 335
4. *History of Sanskrit Literature - Macdonnel*, P. - 363
5. *Early History of India - Vincent Smith*, P. - 308

इसी प्रकार निम्न अलङ्कार-ग्रन्थों में भी भवभूति के उद्धरण प्राप्त होते हैं –
१ . काव्यप्रकाश २ . दशरूपकम् ३ . साहित्यदर्पण ४ . सरस्वतीकण्ठाभरण ५ . रसगङ्गाधर ६. काव्यालङ्कारवृत्ति ७. अलङ्कारसर्वस्व ८. काव्यानुशासन आदि । इन सुभाषित ग्रन्थों में भवभूति के कुछ ऐसे पद्य संग्रहीत हैं जो उनके तीनों नाटकों में नहीं पाये जाते ।[1] यद्यपि इन पद्यों की संख्या अधिक नहीं है फिर भी वर्ण्य-विषय में विभिन्नता होने के कारण उनका वर्गीकरण किया जा सकता है । उन सभी पद्यों को एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है । गदाधरकृत रसिकजीवन तथा शाङ्र्गधरपद्धति में संग्रहीत कुछ पद्य तो सुभाषित के उदाहरण हैं जब कि कुछ अन्योक्ति के ।

'किं चन्द्रमा प्रत्युपकारलिप्सया करोति गोत्रिः कुमुदावबोधनम् ।
स्वभाव एवोन्नतचेतसां सतां परोपकारव्यसनं हि जीवितम् ॥[*]
दैवाद्यदि तुल्योऽभूद् भूतेशस्य परिग्रहः ।
तथापि किं कपालानि तुलां यान्ति कलानिधेः ॥[**]

प्रकृतिवर्णन तथा ऋतुवर्णन के भी सुन्दर उदाहरण इन पद्यों में प्राप्य है ।

निस्ससार करघातविदीर्णध्वान्तदन्तरुधिरारुणमूर्तिः ।
केसरीव कटकादुदयाद्रेरङ्कलीनहरिणो हरिणाङ्कः ॥[2]

---

१. चूँकि ये पद्य भवभूति के नाम से ग्रन्थों में उद्धृत किये गये हैं इसलिए इन्हें भवभूति कृत माना सकता है ।

* *रसिकजीवन*-गदाधरभट्ट, ३/९५

** *शार्ङ्गधरपद्धति*, ७४९

२. *सदुक्तिकर्णामृत* - श्रीधरदास, १/८०/३

श्रीधरदासकृत सदुक्तिकर्णामृत में कुछ ऐसे पद्य मिलते हैं जो शृङ्गार रस से युक्त होने के साथ ही पारिवारिक तथा ग्राम्य जीवन का रमणीय और प्रभावी चित्र अङ्कित कर देते हैं ।

लघूनि तृणकुटीरे क्षेत्रकोणे यवानां नवकमलपलाशस्रस्तरे सोपधाने ।

परिहरति सुषुप्तं हालिकद्वन्द्वमारात् स्तनकलशमहोष्माबद्धरेखस्तुषारः।।[१]

इस प्रकार यदि ये भवभूति के श्लोक हैं तो ये अत्यन्त उच्चकोटि के उपमेयोपमान योजना से समन्वित हैं । परन्तु इसके अतिरिक्त भवभूति के कुछ ऐसे भी पद्य प्राप्त होते हैं जो हमें उनकी लुप्त रचनाओं की कल्पना करने के लिये बाध्य कर देते हैं । सम्भवतः सदुक्तिकर्णामृत के इस पद्य द्वारा भवभूति के किसी नाटक का आरम्भ हुआ हो ।

'गाढग्रन्थिप्रफुल्लद्गलविफलफणापीठनिर्यद्विषाग्नि-

ज्वालानिष्ठप्तचन्द्रद्रवदमृतरसप्रोषित प्रेतभावाः ।

उज्जृम्भा बभ्रुनेत्रद्युतिमसकृदसृक्तृष्णयालोकयन्त्यः ,

पान्तु त्वां नागनालग्रथितशवशिरः श्रेणयो भैरवस्य ।।'[२]

इससे स्पष्ट है कि भवभूति की ये तीन ही मूल कृतियाँ हैं । मालतीमाधवम् और महावीरचरितम् के विषय में विद्वानों में मतभेद है कि इनमें से कौन सी भवभूति की प्रथम नाट्य-कृति है परन्तु इतना अवश्य है कि उत्तररामचरितम् नामक नाटक उनकी अन्तिम कृति है जिसमें उनकी विद्वता का अनूठा परिचय मिलता है ।

भवभूति के नाटकों की रचना के क्रम के सम्बन्ध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार हैं । ***शारदारञ्जन राय*** के अनुसार मालतीमाधवम् भवभूति की अन्तिम कृति है । उनके अनुसार उत्तररामचरितम् की रचना मालतीमाधवम् से पूर्व की जा चुकी थी जिसका स्पष्टीकरण उन्होंने

---

१. *सदुक्तिकर्णामृत*-श्रीधरदास - २/१७१/१

२. *वही* - १/१३/२ ।

अनेक युक्तियों द्वारा उत्तररामचरितम् में किया है ।[१] इसी मत का समर्थन हरिदास शर्मा सिद्धान्तवागीश ने भी किया है ।[२] ***डॉ० ए० बी० कीथ*** ने उत्तररामचरितम् को भवभूति की अन्तिम कृति माना है परन्तु प्रथम कृति के विषय में उनका मत अनिश्चित है । वे कहते हैं सम्भवतः महावीरचरितम् उनकी प्रथम रचना है परन्तु इसके लिए कोई निश्चित प्रमाण नहीं है और ऐसा कारण भी नहीं है जिससे कि हम कह सकें कि यह मालतीमाधवम् से पूर्व की रचना है ।[३] ***एम० आर० काले*** के अनुसार मालतीमाधवम् कवि की प्रथम रचना है । महावीरचरितम् द्वितीय तथा उत्तररामचरितम् उनकी अन्तिम रचना है । उन्होंने अन्तःसाक्ष्य के आधार पर यही क्रम प्रमाणित किया है ।[४] इसके विपरीत ***टोडरमल, डॉ० भण्डारकर, डॉ० बेल्वरकर*** आदि विद्वानों ने भवभूति की प्रथम रचना महावीरचरितम् को माना है तत्पश्चात् उन्होंने मालतीमाधवम् की रचना की और अन्त में उत्तररामचरितम् की । टोडरमल ने उत्तररामचरितम् को इसलिए उनकी अन्तिम कृति माना है क्योंकि उसमें कवि ने अपना परिचय बहुत संक्षेप में दिया है । महावीरचरितम् में आये हुए 'अपूर्वत्वात् प्रबन्धस्य' वाक्य से स्पष्ट है कि कवि ने इससे पहले कोई रचना नहीं की थी । यह नाटक ही उनकी प्रथम कृति है । मालतीमाधवम् के 'अपूर्ववस्तुप्रयोगेण' वाक्य से यह अर्थ लिया जा सकता है कि भवभूति द्वारा उस नाटक में एक नया कथानक प्रस्तुत किया गया है ।[५] ***डॉ० भण्डारकर*** के अनुसार महावीरचरितम् भवभूति की प्रथम रचना है क्योंकि उनकी भाषा में न तो वैसी अभिव्यञ्जना है और न ही भावचित्र गहनता

---

१. *शारदारञ्जन राय सम्पादित उत्तररामचरितम् षष्ठ संस्करण की भूमिका*, पृष्ठ - १२ - १७

२. *उत्तररामचरितम् प्रथम संस्करण की भूमिका - हरिदास शर्मा सिद्धान्त वागीश* , पृष्ठ - १६

३. ***'Sanskrit Drama'*** -- *Dr. A. B. Keith* -- 1923, P. 192

४. *Malatimadhava* -- *M. R. Kale* , 1928, Introduction, P. 8-10

५. *Mahavircharitra - Todarmall* , Introduction , P. XXXI

के प्रति वैसी अन्तर्दृष्टि । उत्तररामचरितम् का यह वाक्य, *'शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतप्रज्ञस्य वाणीमिमाम्'* उनकी प्रौढि को स्पष्ट करता है । इसी बात का समर्थन इस पंक्ति से भी हो जाता है – *उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।*[1]

इस प्रकार इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि भवभूति की ये तीन ही मूल कृतियाँ हैं । यद्यपि मालतीमाधवम्, महावीरचरितम् के विषय में विद्वानों में मतभेद है कि इनमें से कौन सी भवभूति की प्रथम नाट्य-कृति है, फिर भी समस्त विद्वानों के मतों को देखते हुए ऐसा कहा जा सकता है कि महावीरचरितम् ही कवि की प्रथम रचना है क्योंकि कवि ने इस कृति में अपना विस्तृत परिचय दिया है । मालतीमाधवम् उनकी द्वितीय कृति है क्योंकि इसमें अपेक्षाकृत कम परिचय मिलता है । उत्तररामचरितम् इनकी अन्तिम कृति है जिसमें उनकी विद्वता का अनूठा परिचय तो मिलता ही है साथ-साथ कवि ने अपना परिचय भी अत्यन्त संक्षेप में दिया है ।

---

1. *Malatimadhava* -- *Dr. R. G. Bhandarkar* -- 1905, Introduction P.-X

भवभूति के कृतियों की संक्षिप्त कथावस्तु

उत्तररामचरितम्

उत्तररामचरितम् महाकवि भवभूति की सर्वोत्कृष्ट रचना है । इस नाटक का सारांश इस प्रकार है । सर्वप्रथम नान्दी पाठ के पश्चात् सूत्रधार नाटककार भवभूति का परिचय देता है और सूचित करता है कि राज्याभिषेक के समय आये हुए अतिथियों को महाराज राम ने विदा कर दिया है । महाराज दशरथ की पुत्री शान्ता के पति तथा विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋष्यशृंग ने बारह वर्ष चलने वाला यज्ञ प्रारम्भ किया है । उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए महर्षि वशिष्ठ के नेतृत्व में राम की माताये और अरुन्धती गई है । सूत्रधार सीताविषयक लोकापवाद का सङ्केत करता है और नट कहता है कि सीता की अग्नि परीक्षा पर लोगों को अविश्वास है। सूत्रधार यह आशङ्का प्रकट करता है कि यदि यह बात राम तक पहुँचेगी तो अनिष्ट की सम्भावना है । नट यह विश्वास प्रकट करता है कि देवगण सर्वथा कल्याण करेंगे । महाराज जनक की विदाई से सीता दुःखी हैं । उन्हें सान्त्वना देने के लिए राम अन्तःपुर में जाते हैं । इसके पश्चात् सीता को आश्वासन देते हुए राम का रङ्गमञ्च पर प्रवेश होता है । ऋष्यशृंग के आश्रम से महर्षि वसिष्ठ आदि का सन्देश लेकर आए हुए *अष्टावक्र* का प्रवेश होता है । अष्टावक्र ने सन्देश सुनाया कि वसिष्ठ ने सीता को आशीर्वाद दिया है कि वह वीरप्रसवा हो । अरुन्धती और शान्ता आदि ने राम से आग्रह किया है कि वे गर्भिणी सीता के दोहदों (गर्भकाल की इच्छाओं) को पूर्ण करें । ऋष्यशृंग ने कहा कि वे पुत्रवती सीता का दर्शन करेंगे । वसिष्ठ ने राम को आदेश दिया कि वह प्रजा को सर्वथा प्रसन्न रखें । इस उत्तर में राम का कथन है कि मैं प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए सीता को भी छोड़ सकता हूँ । *'स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि । आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ।।'* राम का यह कथन सीता के भावी परित्याग की सूचना देता है।

इसके पश्चात् लक्ष्मण खिन्न सीता के मनोविनोदार्थ राम और सीता को चित्रवीथी में रामचरित से सम्बद्ध चित्रों को देखने के लिए ले जाते हैं । इस चित्रवीथी में सीता की अग्निशुद्धि तक के चित्र हैं । राम सीता की पूर्ण पवित्रता की घोषणा करते हैं । जृम्भक अस्त्रों के चित्र को देखकर राम सीता को वर देते हैं कि ये जृम्भक अस्त्र तुम्हारी सन्तान को प्राप्त होंगे । तत्पश्चात् राम का अपने विवाह, मन्थरा-वृत्तान्त, वनवास के लिए जटा-धारण, भागीरथी नदी, प्रस्रवण पर्वत, गोदावरी नदी, शूर्पणखा-विवाद, सीताहरण की स्मृति, राम के द्वारा सीता को आश्वासन, जटायु के पराक्रम का चित्र, कुञ्जवान् पर्वत, मतंग ऋषि के आश्रम में श्रमणा नामक सिद्ध तपस्विनी, पम्पा सरोवर, हनूमान और माल्यवान् पर्वत के चित्रों को देखना । सीता का चित्र-विहार और गंगा स्नान का दोहद । चित्रों को देखकर हुए थकी हुई सीता को नींद आ जाती है । इसके बाद *दुर्मुख* नामक दूत का प्रवेश होता है । वह सीता विषयक लोकापवाद की सूचना राम को देता है। मूर्च्छित राम सीता को निर्वासित करने का निश्चय करते हैं । राम स्वयं को दोषी बताते हैं । उनकी आज्ञानुसार लक्ष्मण सीता को रथ में बैठाकर वन में छोड़ने के लिए चले जाते हैं ।

द्वितीय अङ्क में सीता परित्याग के बाद बारह वर्षो में घटित घटनाओं की सूचना दी गई है । तपस्विनी आत्रेयी और वनदेवता का प्रवेश होता है । आत्रेयी ने सूचित किया है कि किसी देवता ने महर्षि वाल्मीकि को कुश और लव नाम के दो बालक लाकर समर्पित किए हैं । इन्होंने अभी माता का दूध छोड़ा है । ये दोनों बालक अद्भुत गुणों वाले हैं । इन्हें रहस्य सहित जृम्भक अस्त्र जन्मसिद्ध है । वाल्मीकि ने इनका पालन-पोषण किया है । दोनों बालक अत्यन्त प्रतिभाशाली हैं । महर्षि वाल्मीकि को क्रौंच वध के कारण दया आना और सहसा उसके मुख से *मा निषाद०* इत्यादि श्लोक का उद्गार होता है । ब्रह्मा का वाल्मीकि को आर्षदृष्टि देना और आदेश देना कि तुम रामचरित का वर्णन करो । आत्रेयी सूचित करती है कि ऋष्यशृंग का बारह वर्ष तक चलने वाला यज्ञ समाप्त हो गया है । वसिष्ठ, अरुन्धती, सीता-परित्याग के कारण राम

से अप्रसन्न हैं, अतः वे वाल्मीकि के आश्रम में जाती हैं । उधर राम ने अश्वमेघ नामक यज्ञ प्रारम्भ किया है और उसमें पत्नी के स्थान पर सीता की स्वर्ण मूर्ति स्थापित की है । दिग्विजय के निमित्त अश्वमेघ का घोड़ा छोड़ा गया है और उसके रक्षकों का नेतृत्व लक्ष्मण का पुत्र *चन्द्रकेतु* कर रहा है । इस बीच एक ब्राह्मण बालक की अकालमृत्यु होती है । तत्पश्चात् आकाशवाणी होती है कि *शम्बूक* नाम का एक शूद्र तप कर रहा है, उसको मारकर ब्राह्मण बालक को पुनर्जीवित करो । राम शम्बूक को ढूँढ़ते हुए दण्डकारण्य में जाते हैं ।

राम शम्बूक को मारते हैं । शम्बूक दिव्य पुरुष का रूप धारण करके राम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है । शम्बूक से यह जानकर कि यह दण्डक वन है राम पूर्व घटनाओं को स्मरण कर विलाप करने लगते हैं । पुनः अगस्त्य के निमन्त्रण पर पंचवटी दर्शन किए बिना ही पुष्पक विमान से राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम के लिए प्रस्थान कर देते हैं ।

तृतीय अङ्क में शरीरधारी तमसा और मुरला नामक दो नदियों का प्रवेश होता है । दोनों के संवाद से सूचित होता है कि सीता के परित्याग से राम अत्यधिक दुःखी हैं । गोदावरी नदी से प्रार्थना की गई है कि वह राम के जीवन के प्रति सावधान रहे । कुश और लव के विषय में और विवरण प्राप्त होता है कि वाल्मीकि के आश्रम के समीप सीता को छोड़कर जब लक्ष्मण लौट जाते हैं तब सीता ने प्रसववेदना से पीड़ित होकर अपने आपको गङ्गा के प्रवाह में डाल दिया और वहीं उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए । गङ्गा और पृथ्वी सीता को पाताल ले जाती है । जब दोनों बालकों ने माँ का दूध छोड़ दिया तब देवी गङ्गा ने स्वयं उनको महर्षि वाल्मीकि को समर्पित किये । इधर राम अगस्त्य के आश्रम से लौटकर पञ्चवटी में आते हैं । गङ्गा को सन्देह है कि कहीं राम कुछ अनिष्ट न कर दें अतः वह सीता सहित गोदावरी के पास आती है । उस दिन कुश और लव की बारहवीं वर्षगाँठ थी । गङ्गा ने सीता को आदेश दिया कि वह अपने हाथ से एकत्रित फूलों से सूर्य की पूजा करें । साथ ही सीता को सिद्धि

प्रदान की कि वह अदृश्य होकर रहेंगी । उसे मनुष्य ही नहीं, अपितु वनदेवता भी नहीं देख सकेगें । इस प्रकार आगे के वर्णन में राम भी सीता को नहीं देख पाते हैं । सीता गोदावरी के जल से निकलती हैं और साक्षात् करुणा की मूर्ति एवं शरीरधारिणी विरह-व्यथा प्रतीत होती है। राम पञ्चवटी में प्रवेश करते हैं और अपने पूर्व परिचित स्थानों को देखकर मूर्छित होते हैं । सीता अपने स्पर्श से राम को होश में लाती हैं । राम सीता के प्रति अपने हार्दिक एवं मार्मिक उद्गार प्रकट करते हैं । सीता भी अदृश्य रहते हुए राम के हार्दिक भावों से परिचित होती है । वनदेवी वासन्ती के पञ्चवटी में राम से मिलने पर राम वासन्ती से वार्तालाप करते हैं । वासन्ती राम से सीता के विषय में प्रश्न पूछती है और सीता परित्याग करने के लिए राम की भर्त्सना करती है कि कीर्तिलाभ के लिए क्या सीता का परित्याग करना उचित था । राम दुःखित होते हैं और आशङ्का प्रकट करते हैं कि वन में सीता को हिंसक पशु खा गये होंगे । राम भावावेश में विलाप करते हैं । वे मूर्छित होते हैं और सीता के हस्त स्पर्श से होश में आते हैं । राम सूचित करते हैं कि उन्होंने अश्वमेघ यज्ञ प्रारम्भ किया है और उसमें सीता की स्वर्ण-प्रतिमा को उन्होंने पत्नी के स्थान पर रखा है । राम अश्वमेघ के लिए अयोध्या लौट जाते हैं और सीता पुत्रों की वर्षगाँठ मनाने के लिए गङ्गा के पास जाती है ।

चतुर्थ अङ्क में वाल्मीकि के शिष्य सौधातकि और दण्डायन के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि, अरुन्धती, राम की माताएँ और जनक अतिथि रूप में आये हैं । सीता के शोक से सन्तप्त राजर्षि *जनक* आश्रम के बाहर वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं । जनक का प्रवेश होता है । वे सीता के शोक में विलाप करते हैं । वशिष्ठ के आदेशानुसार अरुन्धती के साथ कौशल्या जनक से मिलने आती हैं । जनक और कौशल्या सीता शोक के कारण दुःखित होते हैं तथा राम और सीता के विवाह के पश्चात् की घटनाओं का स्मरण करते हैं । अरुन्धती का कथन कि वशिष्ठ ने बताया है कि इन घटनाओं का अन्त सुखद होगा । इसके पश्चात् नेपथ्य से खेलते

हुए बालकों का कोलाहल सुनायी पड़ता है । जिसमें राम के समान आकृति वाला बालक दिखाई देता है । जनक उसे कञ्चुकी से बुलवाते हैं । बालक *लव* आकर उन सभी को प्रणाम करता है। कौशल्या यह देखकर आनन्दित होती है कि लव की आकृति सीता से मिलती जुलती है । कौशल्या लव से उसके माता-पिता का नाम पूछती है । लव अपने को वाल्मीकि का पुत्र बताता है साथ ही साथ रामायण की कथा तथा उसके पात्र राम, लक्ष्मण, जनक आदि की जानकारी प्राप्त कराता है । जनक के यह पूछने पर कि दशरथ के किस-किस पुत्र के कितनी संतान है, लव सूचित करता है कि यह अंश अभी तक अप्रकाशित है और वाल्मीकि ने यह अंश मेरे बड़े भाई *कुश* के संरक्षण में अभिनय के लिए भरतमुनि के पास भेजा है । इसी बीच अश्वमेघ का घोड़ा आश्रम के समीप आता है और बालक घोड़ा दिखाने के लिए लव को ले जाते हैं । अश्व-रक्षकों से विवाद बढ़ जाने के कारण लव अपना धनुष उठाकर युद्ध के लिए तैयार हो जाता है ।

पञ्चम अङ्क में सारथी सुमन्त्र के साथ लक्ष्मण के पुत्र *चन्द्रकेतु* का प्रवेश होता है । दोनों यह देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं कि लव ने अश्व-रक्षकों को हरा दिया है । वार्तालाप में विघ्न करने के कारण लव जृम्भक अस्त्र के प्रयोग से सैनिकों को निश्चेष्ट कर देता है । लव राम के शौर्य को कुछ नहीं समझता है और उन पर आक्षेप करता है। क्रुद्ध चन्द्रकेतु लव से युद्ध के लिए तैयार हो जाता है ।

षष्ठ अङ्क में विद्याधर और विद्याधरी के संवाद से सूचना मिलती है कि लव और चन्द्रकेतु में दिव्य अस्त्रों से घोर युद्ध हो रहा है । चन्द्रकेतु ने *आग्नेयास्त्र* का प्रयोग किया है । उसके प्रतिकारस्वरूप लव ने *वारुणास्त्र* का प्रयोग किया है । पुनः उसके प्रतिकार रूप में चन्द्रकेतु ने वायव्यास्त्र छोड़ा है । इसी समय शम्बूक के वध के बाद लौटे हुए राम का प्रवेश होता है । लव और चन्द्रकेतु राम को प्रणाम करते हैं । लव को देखकर राम को हार्दिक

होती है और वे उसे गले लगाते हैं । लव जृम्भक अस्त्र को लौटा देता है । लव राम को सूचित करता है कि जृम्भक अस्त्र उसे जन्मसिद्ध हैं । इस समय भरत के आश्रम से लौटे हुए कुश का प्रवेश होता है । कुश लव से राम का परिचय प्राप्त कर उन्हें प्रणाम करता है । राम, कुश और लव की आकृति से अनुमान करते है कि ये दोनों बालक सीता के पुत्र है । ये युगल हैं, इन्हें जृम्भक अस्त्र जन्मसिद्ध हैं । अपने अनुमान की पुष्टि के लिए वे उनसे कुछ प्रश्न पूछते हैं, परन्तु सीता के विषय में उनके उत्तर उदासीन हैं । अतः राम अपना अनुमान त्याग देते हैं । शिशु कलह को सुनकर वशिष्ठ, वाल्मीकि, जनक, दशरथ की रानियाँ और अरुन्धती वहाँ पहुँचती हैं । शोक सन्तप्त एवं लज्जित राम उनको प्रणाम करने के लिए जाते हैं।

सप्तम अङ्क में वाल्मीकि के आश्रम के समीप गङ्गा के तट पर वाल्मीकि की कृति का अप्सराओं के द्वारा अभिनय दिखाया गया है । इस अभिनय को देखने के लिए राम सहित सारी प्रजा उपस्थित है । वाल्मीकि ने अपने तपस्या के प्रभाव से चराचर जगत् के समस्त देवों और असुरों को वहाँ बुला लिया है । इस गर्भ नाटक का उद्देश्य यह है सीता को सर्वथा निर्दोष सिद्ध कर उनका कुश, लव का राम के साथ मिलन कराकर नाटक को सुखान्त बनाया जा सकता है । इसमें सीता परित्याग से लेकर कुश, लव के जन्म तक की कथा का वर्णन है । सीता प्रसववेदना से पीड़ित होकर अपने आपको गङ्गा में डाल देती है । सीता जल में ही पुत्रों को जन्म देती है । गङ्गा और पृथ्वी एक-एक बच्चे को गोद में लिए हुए सीता को सहारा देकर जल से बाहर लाती है । पृथ्वी सीता-परित्याग के कारण राम पर क्रोधित होती है । गङ्गा उसे समझाती हैं । आकाश में तीव्र प्रकाश होता है कि और प्रकाशमय जृम्भक अस्त्र कुश और लव को प्राप्त होते हैं । पृथ्वी के आदेशानुसार सीता दूध छोड़ने तक दोनों बच्चों का पालन करती है और तत्पश्चात् गङ्गा उन दोनों को महर्षि वाल्मीकि को समर्पित करती है । सीता के रसातल को सुशोभित करने का समाचार सुनकर राम मूर्छित हो जाते हैं । इसी समय गङ्गा

पृथ्वी के साथ सीता जल से प्रकट होती हैं । सीता के हस्तस्पर्श से राम होश में आते हैं । पृथ्वी अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाती है कि अब तक मैनें सीता की पूरी रक्षा की । राम पृथ्वी के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं । अरुन्धती सीता की पवित्रता की घोषणा करती है और सभी देवादि तथा चराचर प्राणी उसका समर्थन करते हैं । राम निर्दोष सीता को स्वीकार करते हैं कुश और लव के साथ वाल्मीकि का प्रवेश होता है । कुश और लव का माता-पिता से मिलन होता है । भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति होती है ।[१]

महावीरचरितम्

महावीरचरितम् भवभूति की प्रथम नाट्यकृति है । इसमें सात अङ्क हैं, जिसमें रामायण के पूर्वार्द्ध की कथा वर्णित है अर्थात् रामविवाह, रामवनवास, सीता-हरण और राम का राज्याभिषेक । इस सम्पूर्ण कथा में आदि से लेकर अन्त तक श्रीराम के महावीर स्वरूप का चित्रण किया गया है । आरम्भ से जो कथा चलती है, वह अन्त तक रावण के विनाश के बाद ही समाप्त होती है । रावण राम के विनाश के लिए तरह-तरह से कुचक्र रचता है, जिस पर वे विजय प्राप्त करते हैं । संक्षिप्त कथा-वस्तु इस प्रकार है ।

सीता के स्वयंवर में रावण, सीता की याचना के लिए दूत भेजता है, किन्तु राम शिव-धनुष को तोड़कर सीता का वरण कर लेते हैं । इस पराजय का बदला लेने के लिए रावण और उसका मंत्री माल्यवान्, परशुराम को राम के विरुद्ध उकसाते हैं । परशुराम राम से युद्ध करते हैं परन्तु उनके विनम्र भाव के कारण अन्ततः पराजित होते हैं । तब माल्यवान् शूर्पणखा को मन्थरा के रूप में भेजता है । उस समय राम जनक के यहाँ मिथिला में थे । मंथरा रूपधारी शूर्पणखा कैकेयी का एक पत्र राम को देती है, जिसमें उन्हें चौदह वर्ष का वनवास दिया जाता

---

१. *आधार, उत्तररामचरितम्* – भवभूति - डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ४६/५१

है । माल्यवान् ही बालि को राम से लड़ने के लिए प्रेरित करता है और अन्त में राम द्वारा रावण और मेघनाद के वध के पश्चात् लङ्का और अलकापुरी की अधिष्ठात्री देवियाँ परस्पर संवेदना प्रकट करती है ।

मालतीमाधवम्

यह दस अङ्कों का एक प्रकरण है । इसमें मालती और माधव की प्रणय कथा का सविस्तार वर्णन किया गया है । पद्मावती नरेश के मंत्री भूरिवसु अपनी पुत्री *मालती* का विवाह अपने बाल्यकाल के अभिन्न मित्र देवरात के पुत्र *माधव* के साथ करने के इच्छुक हैं । इधर राजा का साला *नन्दन* भी इस प्रेम में माधव का प्रतिद्वंद्वी है और उसको पूर्ण राजकीय संरक्षण प्राप्त है। इस प्रणय प्रसङ्ग में सहायक पात्रों में माधव का मित्र *मकरन्द और मालती* की सखी नन्दन की भगिनी *मदयन्तिका* है एक दिन मालती और माधव परस्पर एक शिव मंदिर में मिलते हैं जहाँ पर मकरन्द मदयन्तिका की एक बाघ से रक्षा करता है और इस घटना के कारण वे दोनों एक दूसरे पर अनुरक्त हो जाते हैं । राजा, नन्दन और मालती के विवाह के लिए पूर्ण प्रयत्नशील है । अतः माधव भी प्रेम को सफल बनाने के लिए श्मशान में जाकर तंत्र-साधना करता है । उसी समय अघोरघंट मालती की बलि चढ़ाने के लिए उस स्थान पर आता है जहाँ माधव उसका वध कर मालती की रक्षा करता है और दोनों भाग जाते हैं । राजा के समीप मकरन्द मालती का वेश धारण कर विवाह करने को प्रस्तुत होता है और विवाह के बाद वह नन्दन को दुत्कार देता है । इस प्रकार अवसर पाकर मदयन्तिका मकरन्द के समीप आकर उसके साथ चली जाती है । इस भगदड़ में अघोरघंट की शिष्या कपालकुण्डला मालती को चुरा लेती है और सौदामिनी की सहायता से माधव उसको ढूंढने में समर्थ हो जाता है । इसके उपरान्त राजा की अनुमति से माधव और मालती का परस्पर विवाह हो जाता है । इस तरह उनका शेष जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता है ।

अध्याय - ३

शिल्प-विधान

नाट्यलक्षण

अवस्था के अनुकरण को 'नाट्य' कहते हैं, अर्थात् जहाँ काव्य में निबद्ध या वर्णित धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त प्रकृति के नायकों तथा नायिकाओं या अन्य पात्रों का आङ्गिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक इन चार ढंग के अभिनयों के द्वारा अवस्थानुकरण किया जाता है, वह ***नाट्य*** है ।[१] अवस्थानुकरण से तात्पर्य यह है कि चाल-ढाल, वेश-भूषा, आलाप आदि के द्वारा पात्रों की प्रत्येक अवस्था का अनुकरण इस ढंग से किया जाय कि नटों में पात्रों की *'तादात्म्यापत्ति'* हो जाय । यथा, नट दुष्यन्त की प्रत्येक प्रवृत्ति की ऐसी अनुकृति करे कि सामाजिक उसे दुष्यन्त ही समझें । अभिनय के समय दुष्यन्त एवं नट का भेद न रहे । उनमें परस्पर अभेद हो जाय ।[२] ***नाट्यशास्त्र*** में ***आचार्य भरत*** ने अवस्था के अनुकरण को 'लोकवृत्तानुकरण' बताया है ।[३]

भरत ने असंदिग्ध रूप से नाट्य का सम्बन्ध सुखदुःखात्मक जगत् से माना है अर्थात् आङ्गिक, वाचिक, सात्त्विक एवं आहार्य नामक चतुर्विध अभिनय ही नाट्य का रूप ले लेता है। अब यदि भरत ही अन्यत्र नाट्य को लोकवृत्तानुकरण कहते हैं तो वस्तुतः यहाँ उनके अनुकरण का सम्बन्ध अपने से है न कि नाट्य रचना की प्रक्रिया से । अभिनय कला का नाट्यमञ्च से घनिष्ठ सम्बन्ध है । नट यदि नाटकों में निबद्ध रामादि पात्रों के जीवन की अवस्थाओं की अनुकृति नहीं करेगा तो उसकी कला सफल नहीं हो सकती । दूसरे शब्दों में अभिनय का मूल मन्त्र अनुकरण है, अनुकरण रहित अभिनय की कल्पना भी नहीं की जा सकती । अतः हमारे

---

१. ***'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'*** – दशरूपकम्, धनञ्जय १/७ ।

२. ***'हिन्दी दशरूपक'*** – डॉ० भोला शङ्कर व्यास, पृष्ठ ४ ।

३. ***'लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृतम्'*** -- नाट्यशास्त्र, आचार्य भरत, १/१९० ।

यहाँ के आचार्य जब नाट्य को अनुकरण बताते हैं, तो उनका स्पष्ट सङ्केत चतुर्विध अभिनय की ओर होता है जिसके माध्यम से कवि-निबद्ध लोकवृत्त की अनुकृति प्रस्तुत की जाती है ।

अवस्था का अनुकरण नाट्य कहलाता है । नाट्य केवल श्रव्य न होकर रङ्गमञ्च के ऊपर अभिनीत भी होता है, अतः यह दृश्य है, इसे देखा जा सकता है । जैसे हम नीले, पीले आदि रङ्ग को देखते हैं तथा उसके रूप का ग्रहण करते हैं ठीक उसी प्रकार चक्षुर्ग्राह्य होने के कारण नाट्य ***रूप*** भी कहलाता है । वही नाट्य-रूप, ***रूपक*** भी कहलाता है क्योंकि उसमें आरोप पाया जाता है । जैसे, रूपक अलङ्कार में हम देखते हैं कि मुख पर चन्द्रमा का आरोप कर दिया जाता है - 'मुखचन्द्रः' (मुखरूपी चन्द्रमा) वैसे ही नाट्य में नट पर रामादि पात्रों की अवस्था का आरोप किया जाता है अतः इसे रूपक भी कहते हैं । जिस प्रकार इन्द्र, पुरन्दर और शक्र इन तीनों नामों से जाने जाते हैं वैसे ही एक अर्थ में नाट्य, रूप तथा रूपक तीनों शब्दों का प्रयोग होता है । इस प्रकार शुद्ध नाट्य केवल दस ही तरह का होता है इसीलिए लक्षण में 'एव' पद का प्रयोग किया गया है ।[१] नाटिका का समावेश रूपकों के शुद्ध भेदों में नहीं है । दशरूपक हैं - ***नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अङ्क और ईहामृग*** ।[२] अब क्रमशः प्रकरण से आरम्भ करके दशरूपकों का लक्षण दिया जा रहा है।

१. ***प्रकरण :*** पञ्चसन्धियुक्त कल्पित कथावस्तु होती है । यह पाँच से दस अङ्क तक होता है । धीरप्रशान्त नायक होता है। शृङ्गार रस होता है तथा कैशिकी वृत्ति होती है ।

---

१. *'अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते ।*
रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम् ॥' - दशरूपकम् - धनञ्जय, १/७ ।

२. *नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः ।*
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति । - दशरूपकम् - धनञ्जय, १/८ ।

अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम् ।

अमात्यविप्रवणिजामेकं कुर्याच्च नायकम् ॥

धीरप्रशान्तं सापायं धर्मकामार्थतत्परम् ।

शेषं नाटकवत्सन्धिप्रवेशकरसादिकम् ॥ [१]

२. **भाण :** रूपक के इस भेद में कथावस्तु धूर्तचरितविषयक कल्पित होती है । यह एक अङ्क वाला रूपक होता है । इसमें कलावित् विट नायक होता है तथा एक ही पात्र की उक्ति-प्रत्युक्ति का प्रयोग **(Mono-acting)** होता है । इसमें वीर तथा शृङ्गार रस होते हैं । भाण का लक्षण दशरूपकम् में इस प्रकार बताया गया है –

भाणस्तु धूर्तचरितं स्वानुभूतं परेण वा ।

यत्रोपवर्णयेदेको निपुणः पण्डितो विटः ॥

सम्बोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः ।

सूचयेद्वीरशृङ्गारौ शौर्यसौभाग्यसंस्तवः ।

भूयसा भारतीवृत्तिरेकाङ्के वस्तुकल्पितम् ।

मुखनिर्वहणे साङ्गे लास्याङ्गानि दशापि च ॥ [२]

३. **प्रहसन :** इस रूपक में कल्पित कथावस्तु होती है । प्रायः एक अङ्क होता है । इसके पात्र पाखण्डी, कामुक, धूर्त आदि होते हैं । इसमें हास्य रस होता है –

तद्वत्प्रहसनं त्रेधा शुद्धवैकृतसङ्करैः । [३]

---

१. **दशरूपकम्** - *धनञ्जय* - ३/३९-४० ।

२. *वही* - ३/४९-५१ ।

३. *वही* - ३/५४ ।

४. ***डिम :*** इसमें पौराणिक कथावस्तु होती है । चार अङ्क होते हैं । विमर्श रहित चार सन्धियों में कथावस्तु विभक्त होती है । इसमें धीरोद्धत नायक होता है । हास्य और शृङ्गार रस से भिन्न छः रसों का प्रयोग होता है तथा सात्त्वती और आरभटी वृत्ति होती है –

'डिमे वस्तु प्रसिद्धं स्याद् वृत्तयः कैशिकी विना ।
नेतारो देवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः ॥
भूतप्रेतपिशाचाद्याः षोडशात्यन्तमुद्धताः ।
रसैरहास्यशृङ्गारैः षड्भिर्दीप्तैः समन्वितः ॥
मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः ।
चन्द्रसूर्योपरागैश्च न्याय्ये रौद्ररसेऽङ्गिनि ॥
चतुरङ्कश्चतुस्सन्धिर्निर्विमर्शो डिमः स्मृतः ।' [१]

५. ***व्यायोग :*** इसमें प्रसिद्ध पौराणिक कथावस्तु होती है । गर्भ तथा विमर्श रहित तीन सन्धियाँ होती हैं । एक अङ्क, धीरोदात्त नायक होता है । हास्य एवं शृङ्गार रस के अतिरिक्त छः रस होते हैं । सात्त्वती तथा आरभटी वृत्ति होती है । इसमें स्त्री पात्र कम होते हैं, पुरुष पात्र अधिक –

'ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः ख्यातोद्धतनराश्रयः ।
हीनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्डिमवद्रसाः ॥
अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो जामदग्न्यजये यथा ।
एकाहाचरितैकाङ्को व्यायोगो बहुभिर्नरैः ॥' [२]

---

१. **दशरूपकम्** - *धनञ्जय* - ३/५७-६० ।

२. *वही* - ३/६०-६२ ।

६. ***समवकार :*** इस रूपक में देव-दैत्यों से सम्बद्ध प्रसिद्ध पौराणिक कथावस्तु होती है। विमर्श सन्धि के अतिरिक्त शेष चार सन्धियों का समावेश होता है। यह तीन अङ्कों वाला होता है। धीरोदात्त तथा धीरोद्धत प्रकृति के बारह नायक, वीर रस, सात्त्वती तथा आरभटी वृत्तियां होती हैं –

'कार्यं समवकारेऽपि आमुखं नाटकादिवत् ॥
ख्यातं देवासुरं वस्तु निर्विमर्शास्तु सन्धयः।
वृत्तयो मन्दकैशिक्यो नेतारो देवदानवाः ॥
द्वादशोदात्तविख्याताः फलं तेषां पृथक्पृथक् ।
बहुवीररसाः सर्वे यद्वदम्भोधिमन्थने ॥
अङ्कैस्त्रिभिस्त्रिकपटस्त्रिशृङ्गारस्त्रिविद्रवः ।
द्विसन्धिरङ्कः प्रथमः कार्यो द्वादशनालिकः ॥
चतुर्द्विनालिकावन्त्यौ नालिका घटिकाद्वयम् ।
वस्तुस्वभावदैवारिकृताः स्युः कपटास्त्रयः ॥
नगरोपरोधयुद्धे वाताग्न्यादिकविद्रवाः ।
धर्मार्थकामैः शृङ्गारो नात्र बिन्दुप्रवेशकौ ॥
वीथ्यङ्गानि यथालाभं कुर्यात्प्रहसने यथा ।' [१]

७. ***वीथी :*** इसमें कल्पित कथावस्तु होती है। एक अङ्क होता है। नायक शृङ्गार प्रिय होता है। शृङ्गार रस तथा कैशिकी वृत्ति होती है।

'वीथी तु कैशिकीवृत्तौ सन्ध्यङ्गाङ्कैस्तु भाणवत् ॥
रसः सूच्यस्तु शृङ्गारः स्पृशेदपि रसान्तरम् ।

---

१. ***दशरूपकम्*** *- धनञ्जय -* ३/६२-६८ ।

युक्ता प्रस्तावनाख्यातैरङ्गैरुद्घात्यकादिभिः ॥

एवं वीथी विधातव्याद्व्येकपात्रप्रयोजिता ।' [१]

८. ***अङ्क :*** इसमें प्रसिद्ध पौराणिक कथावस्तु होती है । एक अङ्क होता है । नायक प्राकृत पुरुष होता है तथा इसमें करुण रस के साथ स्त्रियों का रुदन होना चाहिये । इसके पात्रों में वाग्युद्ध तथा जय और पराजय की योजना के साथ-साथ सात्त्वती वृत्ति होती है –

'उत्सृष्टिकाङ्के प्रख्यातं वृत्तं बुद्ध्या प्रपञ्चयेत् ॥

रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः ।

भाणवत्सन्धिवृत्त्यङ्गैर्युक्तिः स्त्रीपरिदेवितैः ॥

वाचा युद्ध विधातव्यं तथा जयपराजयौ ।' [२]

९. ***ईहामृग :*** इस रूपक में प्रख्यात एवं कल्पित कथावस्तु का मिश्रण होता है । यह चार अङ्कों में विभक्त होता है । गर्भ व विमर्श से रहित तीन सन्धियाँ होती है । नर तथा देवता के नियम से इसमें नायक एवं प्रतिनायक की योजना होती है । ये दोनों इतिहास-प्रसिद्ध तथा धीरोद्धत होते हैं । प्रतिनायक ज्ञान की भ्रान्ति के कारण अनुचित कार्य करने वाला होता है । यह किसी दिव्य स्त्री को - जो उसे नहीं चाहती भगाकर ले जाना चाहता है । इस तरह इसमें नायक और प्रतिनायक के विरोध को पूर्णता तक ले जाकर उसे किसी बहाने से हटा दिया जाता है । उसके वध के समीप होने पर भी उसका वध नहीं कराया जाता है ।[३] इसमें शृङ्गार रस होता है। *'ईहामृग' नाम इसलिये रखा गया है कि इसमें नायक हिरन की तरह किसी अलभ्य नायिका को प्राप्त करने की इच्छा करता है ।*

---

१. ***दशरूपकम्*** *- धनञ्जय* - ३/६८-७० ।

२. *वही* - ३/७०-७२ ।

३. ***हिन्दी दशरूपक*** - डॉ० भोला शङ्कर व्यास, पृष्ठ १८०-८१ ।

'मिश्रमिहामृगे वृत्तं चतुरङ्कं त्रिसन्धिमत् ॥

नरदिव्यावनियमान्नायकप्रतिनायकौ ।

ख्यातौ धीरोद्धतावन्त्यो विपर्यासादयुक्तकृत् ॥

दिव्यस्त्रिमयनिच्छन्तीमपहारादिनेच्छतः ।

शृङ्गाराभासमप्यस्य किञ्चिकिञ्चित्प्रदर्शयेत् ॥

संरम्भं परमानीय युद्धं व्याजान्निवारयेत् ।

वधप्राप्तस्य कुर्वीत वधं नैव महात्मनः ।' [१]

१०. ***नाटक :*** समस्त रूपक भेदों में सर्वाधिक विकसित रूप नाटक का है । दृश्य काव्य की समस्त विशेषताओं से युक्त होने के कारण इसकी गणना समस्त रूपकों में अग्रणी है । नाटक का सर्वव्यापी स्वरूप भी इसके महत्त्व और प्राधान्य का कारण है, जिसमें जीवन और जगत् के समस्त भावों, रसों, कर्मो तथा नाना अवस्थाओं का समावेश मिलता है । नाटक की विभिन्न महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में दी गई परिभाषायें इस प्रकार हैं । ***आचार्य भरत*** के ***नाट्यशास्त्र***[२] के अनुसार नाटक का लक्षण है –

प्रख्यातवस्तु विषयं प्रख्यातोदात्तनायकम् ।

राजर्षिवंशचरितं तथा दिव्याश्रयोत्थितम् ॥

नानाविभूतिसंयुतमृद्धिविलासादिभिर्गुणैर्युक्तम् ।

अङ्क-प्रवेशकाद्यं भवति हि तन्नाटकं नाम ॥

अर्थात् जिसकी कथावस्तु प्रख्यात (पुराण या इतिहास पर आधारित) हो, नायक प्रसिद्ध और उदात्त (धीरोदात्त) हो, राजाओं की जीवनी हो, दिव्य पात्रों या घटनाओं के सहारे जिसमें नायक

---

१. ***दशरूपकम्*** - धनञ्जय - ३/७२-७५

२. ***नाट्यशास्त्र*** - १८/१०-१६ ।

का उत्थान बतलाया जाता हो, तथा विभूति, समृद्धि, विलास आदि गुणों का समावेश हो तथा जो अङ्क प्रवेशक से युक्त हो, उसे *'नाटक'* समझना चाहिये । आचार्य भरत के इस मत से समस्त नाट्याचार्य सहमत हैं कि नाटक की कथावस्तु तथा नायक दोनों प्रख्यात होने चाहिये ।

आचार्य विश्वनाथ के ***साहित्यदर्पण***[1] के अनुसार नाटक का लक्षण है –

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।

विलासद्ध्र्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ॥

सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।

पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।

दिव्योऽथ दिव्योदिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ॥

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।

अङ् गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥

चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः ।

गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ॥

धनञ्जय के **दशरूपकम्**[2] के अनुसार नाटक का लक्षण है –

अभिगम्यगुणैर्युक्तो धीरोदात्तः प्रतापवान् ॥

कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः ।

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायकः ॥

तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम् ।

---

१. ***साहित्यदर्पण*** - आचार्य विश्वनाथ, ६/७-११ ।

२. *दशरूपकम्* - धनञ्जय, ३/२२-२४

अर्थात् नाटक में प्रख्यात वंशीय एवं दिव्य दोनों प्रकार के नायक स्वीकार किये जाते हैं। नायक या तो प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न राजर्षि होता है जो उत्कृष्ट गुणों से युक्त होता है, धीरोदात्त प्रकृति का तथा प्रभावशाली होता है अथवा नाटक का नायक कोई दिव्य देवता हो सकता है, जो इन सभी विशेषताओं से युक्त हो । उस नायक के विषय में इतिहास-पुराणादि में प्रसिद्ध कथावस्तु को ही नाटक की आधिकारिक वस्तु रखना चाहिये । जिस प्रख्यात वृत्त में इस तरह का, इन गुणों से युक्त नायक हो, वहीं वृत्त *'नाटक'* होता है ।

दशरूपककार ने भरत तथा नाट्यदर्पणकार के विपरीत नाटक में प्रख्यात वंशीय तथा दिव्य दोनों प्रकार के नायक स्वीकार किये हैं तथा विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में नायक की कल्पना प्रख्यात वंशोत्पन्न राजर्षि के रूप में की है और ये नायक दिव्य, अदिव्य तथा दिव्यादिव्य में से कोई भी हो सकता है । दुष्यन्त राजर्षि नायक हैं, श्रीकृष्ण दिव्य तथा श्रीराम दिव्यादिव्य नायक माने जा सकते हैं ।

नाटक में रस के विषय में भी समस्त आचार्य एकमत हैं, उनके मतानुसार वीर तथा श्रृङ्गार की अङ्गी रस के रूप में तथा अन्य रसों की अङ्ग रूप में प्रतिष्ठा होनी चाहिये । दशरूपककार[१] ने रस का परिपाक नाटक में पूर्ण तथा अनेक रूप से निर्दिष्ट किया है । नाट्यशास्त्रकार, शारदातनय[२] तथा साहित्यदर्पणकार[३] ने वीर तथा श्रृङ्गार की महत्ता को नाटक में स्वीकार किया है । आचार्य धनञ्जय[४] ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि नाटक में अङ्गी रस एक ही होना चाहिये वह या तो श्रृङ्गार हो सकता है या वीर ।

---

१. ***भूयो रसपरिग्रहात्*** – दशरूपकम्, तृतीय प्रकाश ।

२. ***वीरश्रृङ्गारयोरन्यतराङ्गिरसनिर्भरम्*** – भावप्रकाशनम्, ८/११० ।

३. ***एक एव भवेदङ्गी श्रृङ्गारो वीर एव वा*** – साहित्यदर्पण, ६/१० ।

४. ***एको रसोऽङ्गी कर्त्तव्यो वीरः श्रृङ्गार एव वा*** - दशरूपकम्-धनञ्जय, ३/३३ ।

नाट्य, रूप और रूपक को धनञ्जय ने एक ही माना है, नृत्य, नाट्य से भिन्न है अतः अब नाट्य का नृत्य से भेद स्पष्ट किया जा रहा है । नृत्य भाव पर आश्रित होता है जबकि नाट्य या रूपक रसों पर, अतः उनमें विषय भेद है ।*

'नाट्य' शब्द की व्युत्पत्ति '*नट् अवस्पन्दने*' धातु से हुई है ।[1] यहाँ नट् धातु का अर्थ है-अवस्पन्दन या कुछ-कुछ चञ्चलता । अतः नाट्य में सात्त्विक अभिनय की बहुलता होती है, इसीलिए नाट्य विशारद '*नट*' कहलाते हैं । जैसे गात्रविक्षेप के समान रूप से दोनों में पाये जाने पर भी नृत्य, नृत्त से सर्वथा भिन्न इसीलिए है कि पहले में अनुकरण पाया जाता है दूसरे में नहीं। वैसे ही वाक्यार्थ रूप (वाचिक) अभिनय वाले नाट्य से पदार्थ रूप (आङ्गिक) अभिनय वाला नृत्य भी अलग ही है ।[2]

'*नृत्य*' शब्द की व्युत्पत्ति 'नृत्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है, गात्रविक्षेप अर्थात् आङ्गिक अभिनय की बहुलता । जबकि नाट्य में चारों तरह के अभिनय पाये जाते हैं । नृत्य कला विशारद 'नर्तक' कहलाते हैं, नट नहीं । नृत्य केवल 'दृश्य' है श्रव्य नहीं । इसमें कथोपकथन का अभाव होता है तथा लौकिक व्यवहार के लिए '*अत्रप्रेक्षणीयम्* ' ऐसा प्रयोग होता है । नाटक आदि रूपक कोरे भाव पर आश्रित न होकर रस परक होते हैं ।[3]

---

* नाटक में कथोपकथन आवश्यक होता है जबकि नृत्य में केवल गात्र विक्षेप से ही भावव्यञ्जना होती है । नाट्य या रूपक का उदाहरण 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक है, नृत्य का उदयशङ्कर के भाव नृत्य ।

१. ***नाट्यमिति च 'नट अवस्पन्दने' इति नटेः किञ्चिच्चलनार्थत्वात्सात्त्विकबाहुल्यम् अत एव तत्कारिषु नटव्यपदेशः*** - दशरूपक पर धनिक की टीका ।

२. ***अन्यद्भावाश्रयं नृत्यं, नृत्तंताललयाश्रयम्*** – दशरूपकम्, १/९ ।

३. ***हिन्दी दशरूपक*** - डॉ० भोला शङ्कर व्यास, पृष्ठ ५ ।

इतिवृत्त-योजना

'वस्तुनेतारसस्तेषांभेदक:' के आधार पर दशरूपककार धनञ्जय[१] ने नाटक का त्रिविध विभाजन किया, जिनमें से इतिवृत्त या कथावस्तु रूपकों का प्रमुख तत्त्व है । काव्य या नाटक का इतिवृत्त मानव जीवन का प्रतिबिम्ब है । इस प्रकार नाटक की कथावस्तु दो प्रकार की होती है, आधिकारिक और प्रासङ्गिक । आधिकारिक कथावस्तु मुख्य कथा होती है तथा प्रासंगिक कथावस्तु गौण । आधिकारिक कथावस्तु रूपक के नायक की फलप्राप्ति से सम्बद्ध होती है - ***'अधिकार: फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभु: । तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ।।'***[२] तथा प्रासंगिक कथावस्तु आधिकारिक के प्रयोजन के लिए होती है; किन्तु प्रसंग से जिसका स्वयं का भी फल सिद्ध हो जाता है-***'प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गत: ।'***[३] रामायण की कथावस्तु में राम की कथा आधिकारिक है जबकि सुग्रीव या शबरी की कथा प्रासङ्गिक । नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया गया है-**प्रख्यात** कथावस्तु, जैसे-भवभूति का उत्तररामचरितम् तथा महावीरचरितम् नाटक है जिसकी कथावस्तु 'वाल्मीकिरामायण' पर आधारित है । **कविकल्पित** कथावस्तु, जैसे-भवभूति का मालतीमाधवम् एक प्रकरण है । इस प्रकरण की कथावस्तु कविकल्पित है-***'अथप्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयात्'***[४] । **मिश्रित** कथावस्तु-जिसमें कुछ अंश ऐतिहासिक और अधिक अंश कवि-कल्पित होता है। महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् नाटक में कवि की मौलिक कल्पनाओं

---

१. *दशरूपकम्*-धनञ्जय, १/११ ।

२. *दशरूपकम्*-धनञ्जय, १/१२ ।

३. *दशरूपकम्*-धनञ्जय, १/१३ ।

४. *दशरूपकम्*-धनञ्जय, ३/३९ ।

का भी समावेश है जिसके कारण नाटक की महत्ता और भी बढ़ जाती है । इतिवृत्त निरूपण में पञ्च-अर्थप्रकृति, पञ्चावस्था, पञ्च-सन्धि के शास्त्रीय लक्षण के साथ भवभूति के नाटक के आधार पर उसका विवेचन, कथानक का आधार तथा मूलकथा में परिवर्तन, आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक कथावस्तु की योजना के क्रम में अर्थोपक्षेपक उसका विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा । ये विभिन्न तत्त्व नाटक के स्वरूप का निर्माण करते हैं । इनकी उपस्थिति, जिनका अभिनय नहीं हो सकता, चरित्र को सुस्पष्ट करने में आवश्यक है ।

अर्थप्रकृतियाँ

अर्थप्रकृतियाँ, नाटकीय कथावस्तु के पाँच तत्त्व हैं । *धनञ्जय* और *विश्वनाथ* ने अर्थप्रकृति का अर्थ किया है - *'प्रयोजनसिद्धिहेतवः' ।* यहाँ *अर्थ* का तात्पर्य प्रयोजन या वस्तु के फल से है । इतिवृत्त का प्रयोजन या फल धर्म, अर्थ या कामरूप तीन पुरुषार्थ हैं । इस प्रयोजन सिद्धि की कारक पाँच अर्थप्रकृतियाँ हैं । इस प्रकार रूपक में *बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी* तथा *कार्य*-ये पाँच अर्थप्रकृतियाँ हैं *–'**बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः । अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः ।।**'*[१] रूपक के आरम्भ में अल्प रूप में सङ्केतित वह तत्त्व जो रूपक के फल का कारण है तथा इतिवृत्त में अनेक रूप से पल्लवित होता है, ***बीज*** कहलाता है-*'**स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा ।**'*[२] जहाँ किसी दूसरी कथा से विच्छिन्न हो जाने पर इतिवृत्त जोड़ने और आगे बढ़ाने के लिए जो कारण होता है, वह ***बिन्दु*** कहलाता है-*'**अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्।**'*[३] जो कथा काव्य या रूपक में बराबर चलती रहती

---

१. *दशरूपकम्*-धनञ्जय, १/१८

२. *दशरूपकम्*-धनञ्जय, १/१७

३. *दशरूपकम्*-धनञ्जय, १/१७

है अर्थात् सानुबन्ध हो, उसे ***पताका*** कहते हैं तथा जो कथा केवल एक ही प्रदेश तक सीमित रहती है, वह ***प्रकरी*** है-***'सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्।'***[1] रामायण की कथा में सुग्रीव या विभीषण का वृत्तान्त *पताका* है तथा श्रमणा, शबरी की कथायें *प्रकरी* हैं । इस प्रकार ये चार अर्थप्रकृतियाँ प्रयोजन सिद्धि की हेतु हैं ।[2] ***कार्य*** नामक अर्थप्रकृति स्वयं प्रयोजन हैं ।

पञ्चावस्था

नाटक में जो कार्य प्रारम्भ किया जाता है, उसकी प्रगति के विभिन्न आयामों को ***अवस्था*** कहते हैं । इस प्रकार फल की इच्छा वाले नायक आदि के द्वारा प्रारब्ध कार्य की पाँच अवस्थाएँ होती हैं – *आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम* ।[3] किसी भी फल की प्राप्ति के लिए नायकादि में इच्छा का होना, ***आरम्भ*** है ।[4] उस फल की प्राप्ति न होने पर उसे पाने के लिए जो उपाय, योजनायुक्त व्यापार एवं चेष्टा होती है वह ***प्रयत्न*** है ।[5] जहाँ उपाय तथा विघ्न की आशङ्का के कारण फलप्राप्ति के विषय में कोई एकान्तिक निश्चय नहीं हो पाता, फलप्राप्ति की सम्भावना, उपाय, विघ्न, आशंका दोनों में चलती रहती है, वहाँ ***प्राप्त्याशा*** नामक अवस्था होती है ।[6] जब विघ्न के अभाव के कारण फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है तो ***नियताप्ति*** नामक अवस्था होती है ।[7] समस्त फल की प्राप्ति हो जाने पर ***फलागम*** अवस्था

---

१. ***दशरूपकम्***-धनञ्जय, १/१३ ।

२. दशरूपकम् पर ***धनिक*** की अवलोकटीका - १/१८ ।

३. ***अवस्था पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।***
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः ॥ - दशरूपकम् - ध०, १/१९

४. ***औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे ।*** - दशरूपकम् - ध०, १/२०

५. ***प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः ।*** - दशरूपकम् - ध०, १/२०

६. ***उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्रप्तिसम्भवः ।*** - दशरूपकम् - ध०, १/२१

७. ***अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता ।*** - दशरूपकम् - ध०, १/२१

होती है ।[1] इसका तात्पर्य यह है कि अधूरे फल मिलने तक नियताप्ति अवस्था ही रहती है, पूर्ण फल मिलने पर फलागम हो जाता है ।

पञ्चसन्धियाँ

सन्धि का सामान्य लक्षण है - किसी एक प्रयोजन से परस्पर सम्बद्ध कथांशों को जब किसी दूसरे एक प्रयोजन से सम्बद्ध किया जाय तो वह सम्बन्ध ***'सन्धि'*** कहलाता है ।[2] अर्थात् एक ओर कथांशों का सम्बन्ध अर्थप्रकृति के रूप में कार्य से है, दूसरी ओर अवस्था के रूप में फलागम से, दोनों को सम्बद्ध करने पर सन्धि हो जाती है । जब पञ्च-अर्थप्रकृतियाँ, पञ्च-अवस्थाओं से मिलती हैं तो पञ्च-सन्धियों का निर्माण करती हैं । *'बीज'* नामक अर्थप्रकृति 'आरम्भ' नामक अवस्था से मिलकर ***मुखसन्धि*** का निर्माण करती हैं । इसी प्रकार बिन्दु, यत्न से मिलकर प्रतिमुखसन्धि का, पताका, प्राप्त्याशा से मिलकर ***गर्भसन्धि*** का, प्रकरी, नियताप्ति से मिलकर ***विमर्शसन्धि*** का तथा कार्य-फलागम से मिलकर ***निर्वहणसन्धि*** का निर्माण करते हैं ।[3]

मुखसन्धि

मुखसन्धि में नाना प्रकार के रसों को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति पायी जाती है ।[4] अर्थात् मुखसन्धि में ही रूपक के बीज की सूचना दी जाती है । यही बीज काव्य या नाटक के विभिन्न रसों को उत्पन्न करता है, उनका हेतु है । यहाँ *'बीज'* नामक अर्थप्रकृति *'आरम्भ'* नामक अवस्था से मिलकर मुखसन्धि का निर्माण करती है ।

---

१. *समग्रफलसंप्राप्तिः फलयोगो यथोदितः ।* - दशरूपकम् , १/२२ ।

२. *अन्तरैकार्थसम्बन्धः संधिरेकान्वये सति ।* - दशरूपकम् , १/२३ ।

३. *अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः।* - दशरूपकम् , १/२२ ।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च संधयः । - दशरूपकम् , १/२३ ।

४. *मुख बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा ।।* - दशरूपकम् , १/२४ ।

महावीरचरितम् के आरम्भ में प्रस्तावना की समाप्ति पर महाकवि भवभूति ने इस नाटक का *'बीज'* निहित कर दिया है । विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण जब आश्रम में पहुंच जाते हैं तब यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए सीता और उर्मिला के साथ कुशध्वज भी वहाँ आते हैं । कुशध्वज सीता और उर्मिला का परिचय देते हैं कि सीता की उत्पत्ति देवताओं के यज्ञ भूमि से हुई है तथा राजा जनक इनके पिता हैं यह देखकर राम के मन में सीता के विषय में और अधिक जानने की उत्सुकता होती है, यही 'आरम्भ' की अवस्था है । इस प्रकार यहाँ प्रथम अङ्क में बीज और आरम्भ को योग होने के कारण *मुखसन्धि* है ।

मालतीमाधवम् प्रकरण में कामन्दकी की यह कामना कि *'ईश्वर करे, भूरिवसु की कन्या मालती और देवरात के पुत्र माधव का पाणिग्रहण हो'* - में कथानक का *बीज* है और मालती के हृदय में माधव के प्रति प्रेम जागृत करने के लिए कामन्दकी का कुशल प्रयत्न *आरम्भ* की अवस्था है । इस प्रकार बीज और आरम्भ का संयोग होने से यहाँ पर मुखसन्धि है ।

उत्तररामचरितम् के प्रथम अङ्क में महर्षि वशिष्ठ के द्वारा राम को भेजे गये सन्देश *'जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम् । युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत् परमं धन वः ॥'* में बीज नामक अर्थप्रकृति है तथा दुर्मुख के प्रति राम के आदेश – *'ब्रूहि लक्ष्मणम् ! एष ते नूतना राजा रामः समाज्ञापयति'* में आरम्भ नामक अवस्था है। बीज और आरम्भ इन दोनों का संयोग होने से यहाँ पर मुखसन्धि है ।

प्रतिमुखसन्धि

बीज का कुछ-कुछ दिखाई देना और कुछ न दिखाई देना, इस लक्ष्यालक्ष्य रूप में फूट पड़ना या उद्भिन्न होना ***'प्रतिमुखसन्धि'*** कहलाता है । यहाँ पर *'बिन्दु'* नामक अर्थप्रकृति तथा *'प्रयत्न'* नामक अवस्था का मिश्रण होता है ।[1]

---

१. *लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेद् । बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश ॥*-दश०, १/३० ।

महावीरचरितम् के द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में माल्यवान् और शूर्पणखा की मन्त्रणाओं के कारण मूलकथा में विच्छेद हो गया है । 'राम का अन्वेषण करते हुए कुद्ध परशुराम अन्तःपुर की ओर आ रहे हैं' – नेपथ्य से कही गई इस उक्ति द्वारा मूलकथा का फिर से सूत्रपात होता है और यहीं से कथा आगे पुनः बढ़ती है, अतः यहाँ *'बिन्दु'* नामक अर्थप्रकृति है । त्रस्त सीता को सान्त्वना देने का कार्य सखियों पर छोड़कर राम, परशुराम को शान्त करने का प्रयत्न विनय और शौर्य के साथ करते हैं । वशिष्ठ, विश्वामित्र, शतानन्द, जनक और दशरथ द्वारा भी जामदग्न्य को शान्त करने का प्रयत्न किया जाता है । यहाँ *'यत्न'* नामक अवस्था है । अतः यहाँ बिन्दु और यत्न के योग के कारण *प्रतिमुखसन्धि* है ।

मालतीमाधवम् के तृतीय अङ्क के आरम्भ से चतुर्थ अङ्क के अन्त तक प्रतिमुखसन्धि है । कुसुमाकर उद्यान में माधव द्वारा मालती का दर्शन *'बिन्दु'* है । उद्यान में कामन्दकी और मालती का वार्तालाप, कामन्दकी द्वारा उन दोनों को समीप लाने का *'प्रयत्न'* है । यत्न की तीव्रता उस समय दिखती है जब कामन्दकी यह प्रण करती है कि मैं मालती और माधव का विवाह कराने के लिए पूर्ण प्रयत्न करूँगी, चाहे मुझे अपने प्राणों का उत्सर्ग ही क्यों न करना पड़े ।

उत्तररामचरितम् में शम्बूक वध की प्रासङ्गिक कथा का उपयोग महाकवि ने राम को जनस्थान में लाकर उनकी अन्तर्वेदना को अभिव्यक्त करने के लिए किया है । राजधर्म के पालन में यह दूसरा कठोर कर्म था जो अपनी इच्छा के विरुद्ध उन्हें करना पड़ा । दण्डकारण्य, पञ्चवटी के उन्हीं स्थलों के वर्णन पर अधिक बल दिया गया है जो सीता के साथ के कारण राम को अधिक प्रिय लग रहे थे । उन परिचित स्थानों को देखकर राम के हृदय में सीता की विरह-वेदना का तीव्र होना स्वाभाविक ही लगता है। तीसरे अङ्क में सीता को पञ्चवटी में लाने का उद्देश्य शोकाकुल अवस्था में राम को सान्त्वना देना है । इसके साथ ही कवि की दृष्टि

नाटक की सफलता पर भी थी । दूसरे अङ्क में शम्बूक के वृत्तान्त से मूलकथा में व्यवधान उत्पन्न हो गया था । परन्तु राम के द्वारा प्रस्रवण गिरि, गोदावरी नदी, पञ्चवटी आदि का दर्शन मूलकथा को गति प्रदान करता है जो कथानक का *'बिन्दु'* है । तीसरे अङ्क में लोपामुद्रा और भागीरथी परोक्ष तथा वासन्ती और तमसा के प्रत्यक्ष *प्रयत्न* की स्पष्ट झलक मिलती है । इन दोनों अङ्कों में बिन्दु और प्रयत्न के योग के कारण प्रतिमुखसन्धि है ।

गर्भसन्धि

जब बीज दिखने के बाद फिर से नष्ट हो जाने पर उसका अन्वेषण बार-बार किया जाता है तो *गर्भसन्धि* होती है-***गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः***[1] । इसमें *पताका* नामक अर्थ प्रकृति तथा *प्राप्त्याशा* नामक अवस्था का मिश्रण होता है-***'द्वादशाङ्गः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसंभवः ।***[2] ***महावीरचरितम्*** के चतुर्थ और पञ्चम अङ्कों में गर्भसन्धि है क्योंकि राम का श्रेय जो कथानक का बीज है । परशुराम पर राम की विजय का कारण दृष्ट तथा वनगमन के कारण अदृष्ट होता है । इस अङ्क के आरम्भ में राम के शील और शौर्य से प्रभावित होकर परशुराम अपना धनुष उन्हें देकर वन जाने के लिए तत्पर होते हैं, यही *प्राप्त्याशा* की अवस्था है । प्राप्त्याशा में उपाय और अपाय दोनों का होना आवश्यक है । चतुर्थ अङ्क में वसिष्ठ और विश्वामित्र द्वारा जामदग्न्य को शान्त करने का प्रयास *उपाय* तथा माल्यवान् की कूटनीति द्वारा उपस्थित विघ्न अपाय है । पञ्चम अङ्क में खर, दूषण आदि का वध उपाय तथा जटायु का वृत्तान्त अपाय है । उपाय और अपाय के सम्मिश्रण के कारण इन दोनों अङ्कों में फलप्राप्ति की सम्भावना अधिक समय तक बनी रहती है और नायक की फलप्राप्ति में सहायक होती है, *पताका* है । प्राप्त्याशा और पताका के योग के कारण इन अङ्कों में *गर्भसन्धि* है ।

---

१. *दशरूपकम्*-धनञ्जय - १/३६ ।

२. *दशरूपकम्*-धनञ्जय - १/३६ ।

मालतीमाधवम् के कुसुमाकर उद्यान के वृत्तान्त में जो बीज दृष्ट था, वह नन्दन के साथ मालती का विवाह निश्चित हो जाने पर अदृष्ट हो गया । पुनः माधव के प्रवेश से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण अङ्क में अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है । गर्भसन्धि में पताका और प्रत्याशा का योग होता है । मदयन्तिका और मकरन्द की प्रेम-कथा पताका है, जो एक बार आरम्भ होने पर मूलकथा के साथ अन्त तक चलती रहती है तथा उसकी प्रगति में सहायक होती है । प्रात्याशा में फल-प्राप्ति की आशा तो हो जाती है परन्तु वह विघ्न बाधाओं से घिरी रहती है । मांस-विक्रय के लिए श्मशान में पहुँचने पर भी माधव के मन में मालती को प्राप्त करने की आशा है ।[१] अचानक मालती कपालकुण्डला द्वारा अघोरघण्ट के सामने लायी जाती है जो कराला को उसकी बलि देने वाला है । माधव के प्रयत्न से यह विघ्न दूर हो जाता है और अघोरघण्ट को उचित दण्ड मिल जाता है । मालती और माधव के मिलन की सम्भावना बलवती हो जाती है । नन्दन के साथ मालती का विवाह निश्चित होने पर वह मन्दिर में आत्महत्या करने को उद्यत होती है । फिर माधव उसकी रक्षा करता है और दोनों गुप्त मार्ग से निकल भागते हैं ।

उत्तररामचरितम् के पञ्चम अङ्क में चन्द्रकेतु और सुमन्त्र के वार्तालाप से लव के शौर्य और पराक्रम का अनुमान हो जाता है । जिसमें वे लव तथा सेना के बीच हो रहे युद्ध का वर्णन करते हैं । सेना को जृम्भकास्त्र के प्रयोग से निश्चेष्ट कर जब लव चन्द्रकेतु के समीप होता है, तब दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति सहज आकर्षण उत्पन्न होता है, जिसका कारण वे दोनों नहीं समझ पाते । दोनों के मन में एक दूसरे को आलिङ्गन करने की इच्छा होती है परन्तु वीरों का कर्तव्य स्नेह को दबा देता है और यहीं गर्भसन्धि की सीमा समाप्त हो जाती है । लव के अभिज्ञान के विषय में गुरुजनों के मत स्पष्ट नहीं हैं जिसमें *उपाय* और *अपाय* दोनों का सम्मिश्रण है । चन्द्रकेतु तथा गुरुजनों के साथ लव का परिचय पताका है ।

---

१. ***मालतीमाधवम्-भवभूति*** - ५/७,८,९ ।

अवमर्शसन्धि

जब क्रोध, व्यसन या विलोभन अर्थात् लोभ से फलप्राप्ति के विषय में विचार या पर्यालोचन किया जाय तथा जहाँ गर्भसन्धि के द्वारा बीज को प्रकट कर दिया गया हो, वहाँ 'अवमर्शसन्धि' होती है । ***क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् । गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः ।।***[1] 'अवमर्श' शब्द की व्युत्पत्ति 'अव' उपसर्गपूर्वक 'मृश्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगने से हुई है, जिसका अर्थ है विचार, विवेचन या पर्यालोचन । यहाँ फलप्राप्ति की पर्यालोचना क्रोध, व्यसन या विलोभन के द्वारा हो सकती है । 'यह चीज अवश्य होगी', इस प्रकार फलप्राप्ति के निश्चय का निर्धारण तथा गर्भसन्धि के द्वारा प्रकटित बीज से जहाँ सम्बन्ध पाया जाता है वह पर्यालोचन, विमर्श या अवमर्श कहलाता है ।[2]

महावीरचरिम् में इस सन्धि के अन्तर्गत जिन घटनाओं का समावेश किया जाता है उनमें मुख्य हैं-राम द्वारा समुद्र पर सेतु का निर्माण, राम की सेना द्वारा लङ्का पर आक्रमण, राम-रावण युद्ध तथा समस्त राक्षस-कुल सहित रावण का वध । प्रकरी और नियताप्ति के योग के कारण इस अङ्क में *विमर्शसन्धि* है । अङ्गद का वृत्तान्त 'प्रकरी' है तथा रावण के सहित समस्त राक्षस-कुल का संहार हो जाने में फलप्राप्ति का निश्चय होना 'नियताप्ति' की अवस्था है।

मालतीमाधवम् के आठवें एवं नवें अङ्कों में अवमर्शसन्धि है । अवमर्शसन्धि में प्रकरी और नियताप्ति का योग होता है । रात्रि के अन्धकार में जब मकरन्द और मदयन्तिका नन्दन-भवन से पलायन कर रहे थे तब मार्ग में नगर-रक्षकों ने उन्हें देख लिया और रोकने का प्रयत्न किया । मकरन्द उनके साथ युद्ध करने लगा । समाचार पाकर माधव भी उसकी सहायता के लिए आ गया । महाराज ने अपने प्रासाद से यह दृश्य देखा और माधव तथा मकरन्द के

---

१. ***दशरूपकम्***-धनञ्जय, १/४३ ।

२. *हिन्दी-दशरूपक* - डॉ० भोला शङ्कर व्यास, पृष्ठ - ४६ ।

वीरता से प्रसन्न होकर युद्ध बन्द करने का आदेश दिया । नगर रक्षकों के साथ माधव और मकरन्द के युद्ध की घटना प्रकरी है । नियताप्ति में फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है । कामन्दकी द्वारा मालती और माधव को विवाह के लिए ही विहार में भेजे जाने पर भी फलप्राप्ति निश्चित नहीं हुई थी क्योंकि माधव जब मकरन्द की सहायता के लिए प्रस्थान करता है तभी कपालकुण्डला मालती का अपहरण कर लेती है । नियताप्ति की अवस्था वस्तुतः उस समय आती है जब सौदामिनी विरहाकुल माधव के हाथों पर बकुलमाला डाल सन्देश देती है कि मालती को कपालकुण्डला के कुचक्र से बचा लिया गया और वह श्रीपर्वत पर सुरक्षित है ।

उत्तररामचरितम् के पञ्चम अङ्क में लव के प्रति चन्द्रकेतु के प्रश्न-*'क्या तुम्हें हमारे तात के प्रताप का उत्कर्ष अच्छा नही लगता'* से लेकर छठें अङ्क के अन्त तक अवमर्शसन्धि है । इस प्रश्न से लव और चन्द्रकेतु के बीच परस्पर दर्पपूर्ण विवाद आरम्भ हो जाता है । विवाद की उग्रता में वह राम की वीरता की व्यङ्गपूर्ण आलोचना भी कर देता है,[1] जिसे चन्द्रकेतु सहन नहीं कर पाता है और वे दोनों द्वन्द्व युद्ध के लिए अग्रसर होते हैं । अवमर्शसन्धि के अन्तर्गत प्रकरी और नियताप्ति का योग होता है । लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का वृत्तान्त *'प्रकरी'* है, तथा कुश और लव के परिचय में *'नियताप्ति'* की अवस्था है ।

निर्वहणसन्धि

रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि अर्थ जो अब तक इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, जब एक अर्थ के लिए एक साथ समेटे या एकत्रित किये जाते हैं तो वहाँ 'निर्वहणसन्धि' होती है ।

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ।

ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ।।[1]

---

१. ***दशरूपकम्***, १/४८ ।

महावीरचरितम् के सातवें अङ्क में 'निर्वहणसन्धि' है, क्योंकि यहाँ पर कार्य और फलागम का योग हो रहा है । वसिष्ठादि द्वारा राम के राज्याभिषेक के लिए किया गया व्यापार 'कार्य' और सीता के साथ राम का मिलन तथा राज्याभिषेक 'फलागम' है ।

मालतीमाधवम् के दसवें अङ्क में निर्वहणसन्धि है, सौदामिनी की सहायता से माधव द्वारा मालती का प्रत्यानयन तथा मदयन्तिका और मकरन्द का मिलन, मालती और माधव तथा मदयन्तिका और मकरन्द के विवाहों की राजा द्वारा स्वीकृति तथा नन्दन द्वारा उसका अनुमोदन । कामन्दकी भूरिवसु आदि द्वारा किया गया प्राण त्याग का प्रयत्न तथा उनके प्राणों की रक्षा के विविध उपाय इस अङ्क की अमुख्य घटनायें हैं । जब सभी बाधायें नष्ट हो जायँ और नई बाधाओं के लिए कोई अवकाश न हो, वहाँ फलागम की अवस्था होती है । मालती और माधव का विवाह निश्चित हो जाने तथा 'फलागम' राजा द्वारा माधव को जामाता स्वीकार कर लेना[१] और नन्दन द्वारा उस स्वीकृति का अनुमोदन[२] तथा मालती और माधव का मिलन ही इस प्रकरण का 'कार्य' है । इस प्रकार फलागम और कार्य का योग हाने से इस अङ्क में निर्वहणसन्धि है।

उत्तररामचरितम् में सातवें अङ्क के आरम्भ से अन्त तक निर्वहणसन्धि का विस्तार है। गर्भनाटक की जो योजना की गई है वह सीता-परित्याग की घटना से आरम्भ होती है । परित्यक्ता सीता अत्यन्त दुःखी होकर अपने को गङ्गा के प्रवाह में डाल देती हैं । गङ्गा उन्हें सम्भालती हैं । दो बालकों का जन्म होता है और साथ ही उन दोनों को जृम्भकास्त्र की प्राप्ति होती है । स्तन्य-त्याग के पश्चात् ये दोनों बालक भागीरथी द्वारा महर्षि वाल्मीकि के संरक्षण में रख दिये जाते हैं जो उनकी शिक्षा-दीक्षा आदि का प्रबन्ध करते हैं । सीता, गङ्गा और पृथ्वी द्वारा अरुन्धती को अर्पित की जाती हैं । अरुन्धती सीता के चरित्र की पवित्रता के अनेक प्रमाण

---

१. *मालतीमाधवम्* -- पृष्ठ - १०/२३ ।

२. *मालतीमाधवम्* -- पृष्ठ - २/५ ।

प्रस्तुत करती हुई उनको ग्रहण करने के सम्बन्ध में जनता की सम्मति जानना चाहती है । तब अरुन्धती हिरण्मयी मूर्ति के स्थान पर स्वयं सीता को यज्ञ में नियोजित करने का आदेश राम को देती है । इसी अवसर पर महर्षि वाल्मीकि कुश और लव को लाते हैं । महर्षि वाल्मीकि ने गर्भनाटक के अभिनय द्वारा तथा अरुन्धती ने सीता के चरित्र की पवित्रता के विभिन्न प्रमाणों द्वारा 'कार्य' का सम्पादन किया है । कुश और लव सहित सीता से राम का पुनर्मिलन जिसका अनुमोदन सभी नागरिकों द्वारा किया जा चुका है, 'फलागम' है । अतः यहाँ कार्य और फलागम का योग होने से 'निर्वहणसन्धि' है ।

कथानक का आधार तथा मूलकथा में परिवर्तन

उत्तररामचरितम् के कथानक का आधार 'वाल्मीकिरामायण' है, नाट्यशिल्प की दृष्टि से उत्तररामचरितम् की असाधारण सफलता के पीछे ये परिवर्तन ही हैं जो भवभूति ने मूलकथा में किये हैं । चित्र-दर्शन का दृश्य भवभूति की अपनी कल्पना है । इसकी योजना द्वारा राम और सीता के दाम्पत्य-जीवन में प्रेम की गम्भीरता अङ्कित कर कवि ने भावी विरह की असहनीय वेदना को अत्यन्त तीव्र बना दिया है । द्वादश-वर्षीय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये गुरुजनों का ऋष्यशृङ्ग के आश्रम की ओर प्रस्थान राम को सीता-परित्याग के कठोर निर्णय के लिये स्वतन्त्र कर देता है तथा अष्टावक्र द्वारा लाया गया गुरु का सन्देश 'नूतन-राजा' को प्रजानुरञ्जन के लिये सब कुछ त्याग देने के लिये प्रेरित करता है । कठोरगर्भा सीता के दोहद की तत्काल पूर्ति के लिये दिया गया अरुन्धती तथा राजमाताओं का आदेश; गम्भीर वनराजियों में भ्रमण करने तथा भागीरथी के पवित्र, निर्मल, शीतल जल में 'अवगाहन' करने का दोहद भवभूति की कल्पना से प्रसूत अपूर्व संयोग है । लवणासुर की कथा तो इतिहास-प्रसिद्ध है, परन्तु ऐसे समय में राम, सीता-त्याग का निर्णय ले चुकने पर उनके विरह की कल्पना से अत्यन्त व्यथित हो रहे हैं । उन्हें

राक्षस-त्रास की सूचना द्वारा प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य का स्मरण कराकर, प्रसुप्ता सीता के पास से उन्हें हटा देना भवभूति के नाट्य-कौशल का वैशिष्ट्य है।

ऐतिहासिक घटनाओं का समुचित स्थल पर प्रभावोत्पादक रीति से गुम्फन ही नाटककार की प्रतिभा एवं मौलिकता का द्योतक है। शम्बूक-वध की प्रसिद्ध घटना का आश्रय लेकर भवभूति ने राम को पञ्चवटी के पूर्व परिचित स्थानों में लाकर उपस्थित कर दिया है, जहाँ वे सीता के सहवास की स्मृतियों से विह्वल होकर अपनी वेदना की अभिव्यक्ति निःसंकोच कर सकें। राम की उस मनोव्यथा को प्रत्यक्ष देखने के लिये सीता को अदृश्य रूप में लाकर उपस्थित कर देना भवभूति की अनूठी कल्पना है। ऐतिहासिक पात्रों के अतिरिक्त कवि ने इस नाटक में अनेक कल्पित पात्रों की योजना भी की है, जिसमें वासन्ती, आत्रेयी, तमसा, मुरला के कल्पित शिष्यों, दाण्डायन और सौधातकि की सृष्टि भी कवि ने विशेष उद्देश्य से की है। वाल्मीकि-आश्रम में राम के आगमन के पूर्व वशिष्ठ, अरुन्धती, जनक तथा राजमाताओं को एकत्र करना, लव के साथ चन्द्रकेतु का युद्ध दिखा कर राम को एक अप्रिय प्रसङ्ग से बचा लेना तथा वाल्मीकि के आदेश से लक्ष्मण द्वारा गर्भ-नाटक की योजना कराना महाकवि भवभूति की मौलिक कल्पनायें हैं। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन जो भवभूति ने मूलकथा में किया है, वह है अन्त में राम और सीता का मिलन कराना। नायक-नायिका का मिलन दिखाकर भवभूति ने भरतमुनि के आदेश का पालन तो किया ही। साथ ही साथ यह भी सिद्ध कर दिया कि पति-पत्नी का पवित्र और गम्भीर प्रेम सभी बाधाओं को हटाकर अन्ततः सफल होता है। इस नाटक के माध्यम से भवभूति ने मानवीय मूल्यों की स्थापना की है।

महावीरचरितम् की कथावस्तु का आधार 'वाल्मीकिरामायण' है, इस नाटक में राम के विवाह के पूर्व से लेकर उनके राज्याभिषेक तक लगभग चौदह वर्षों की घटनाओं का वर्णन किया गया है। भवभूति से पूर्व भी राम-कथा को आधार बनाकर नाटकों की रचना की गई थी, परन्तु

उनमें राम के जीवन की विविध घटनाओं को पृथक्-पृथक् नाटकों का वर्ण्य-विषय बनाया गया था। महाकवि भास के प्रतिमानाटक, अभिषेकनाटक आदि इसी प्रकार की रचनायें हैं । भवभूति ने महावीरचरितम् में राम के जीवन की अनेक घटनाओं-विश्वामित्र के आश्रम में राम-लक्ष्मण का आगमन,ताटका,सुबाहु आदि राक्षसों का वध, रामविवाह, परशुराम-प्रसङ्ग, वनगमन, खर-दूषण आदि राक्षसों का वध, सीताहरण, बालिवध, राम-रावण युद्ध, रावणवध, राम का अयोध्या में पुनरागमन तथा राज्याभिषेक आदि का समावेश कर दिया है । ये सभी घटनाएँ परस्पर सम्बद्ध नहीं थीं और उनका वर्णन-मात्र कर देने से उत्तम नाटक की सृष्टि नहीं हो जाती है ।

नाटक की विविध घटनाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध आवश्यक है । अच्छे नाटकों में परवर्ती घटनाएँ पूर्ववर्ती घटनाओं का अनिवार्य परिणाम लगती हैं । भवभूति द्वारा किये गये परिवर्तनों से महावीरचरितम् में मौलिकता आ गई है । नाटकीयता की दृष्टि से ये परिवर्तन आवश्यक हैं । राम के जीवन की बिखरी हुई अनेक घटनाओं में उपयुक्त सम्बन्ध स्थापित कर महाकवि की प्रतिभा ने नाटक की कथावस्तु में अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर दिया है । राम-सीता तथा लक्ष्मण-उर्मिला का प्रथम मिलन विश्वामित्र के आश्रम में कराया गया है । यहीं सर्वमाय नामक दूत रावण का सन्देश लेकर आता है जिसमें रावण ने सीता के साथ विवाह करने की इच्छा व्यक्त की है । उसकी उपस्थिति में ही राम ताटका-वध तथा जृम्भकास्त्र की प्राप्ति करते हैं और यहीं विश्वामित्र के ध्यान द्वारा आहूत शिव-धनुष को भङ्ग किया जाता है । महावीरचरितम् में इतिहास-प्रसिद्ध घटनाओं के देश-काल में परिवर्तन कर कवि ने उन्हें एक सूत्र में पिरो दिया है । राक्षस-दूत की सृष्टि कवि-कल्पनाजन्य है, जिससे न केवल प्रथम अङ्क के नाटकीय चमत्कार में वृद्धि हुई है, अपितु आगामी अङ्कों के कथानक से प्रथम अङ्क की घटनाओं का तार्किक सम्बन्ध भी स्थापित हो गया है ।

ऐतिहासिक पात्र माल्यवान् जिसकी असाधारण कूटनीति, समस्त घटनाओं को प्रभावित करती है, भवभूति की निजी कल्पना है। परशुराम को राम के विरुद्ध उत्तेजित करना तथा बालि को राम के शत्रु के रूप में प्रस्तुत करना माल्यवान् की इसी कूटनीति के परिणाम हैं । परशुराम के मिथिला आगमन की तथा राम द्वारा बालि के वध की अनिवार्यता सिद्ध करने के लिए ऐसी कल्पना भवभूति से पूर्व किसी कवि ने नहीं की थी । राम और बालि का परस्पर युद्ध होने के कारण बालि-सुग्रीव के युद्ध का अप्रिय प्रसङ्ग बच गया है और राम भी आत्मरक्षा के लिए बालि का वध करने के कारण दोष-मुक्त हो गये हैं । मन्थरा के रूप में शूर्पणखा द्वारा कैकेयी के वरों की याचना भी भवभूति के मस्तिष्क की उपज है । इससे कैकेयी के चरित्र की रक्षा भी हो गयी है ।

मालतीमाधवम् का कथानक कवि-कल्पित है । यद्यपि कथासरित्सागर की कथा से इसके कथानक का साम्य है, परन्तु कवि ने मूलकथा में इतने अधिक परिवर्तन कर दिये हैं कि मालतीमाधवम् का कथानक नवीन लगता है । प्रकरण के पात्र, उनका पारस्परिक सम्बन्ध, घटनाओं का क्रम, नवीन घटनाओं की योजना, कार्य-स्थल आदि में इतनी भिन्नता है कि केवल कुछ घटनाओं में साम्य देखकर ही प्रकरण के कथानक को कथासरित्सागर पर आधारित मान लेना उचित नहीं प्रतीत होता है। कथासरित्सागर में वर्णित मदिरावती की कथा[१] के उन स्थलों में, जहाँ समानता का आभास होता है, कवि ने अपनी प्रतिभा से अनेक परिवर्तन कर दिये हैं- मालतीमाधवम् का नायक एक मंत्री का पुत्र है, किसी अकाल-पीड़ित ब्राह्मण का बालक नहीं । मालतीमाधवम् में मालती और माधव के प्रेम का प्रादुर्भाव एक योजना के अनुसार होता है, कथासरित्सागर में मदिरावती गुरु के घर जाकर ब्राह्मण-युवक पर मोहित होती है । मालतीमाधवम् में माला, माधव द्वारा गूँथी गयी है और मालती को प्रिय होने के कारण उसके

---

१. *कथासरित्सागर* - १३/१ ।

पास भेजी गयी है, कथा में मदिरावती अपनी ओर से ही सखी द्वारा माला युवक को भेंट कराती है । कथा में उज्जैन का एक युवक मदिरावती के पिता से विवाह का वचन लेता है । परन्तु भवभूति ने नन्दन को राजा का नर्म-सुहृद बना कर मालती के पिता को इस प्रकार का वचन देने के लिए बाध्य कर दिया है । कथा में ब्राह्मण-युवक को आत्महत्या से बचाने के लिये अकस्मात् एक पथिक आ जाता है जो उसका मित्र बनकर उसका सहायता करता है, जबकि प्रकरण में माधव और मकरन्द बाल-सखा हैं । कथा के पागल हाथी का स्थान प्रकरण में सिंह ने ले लिया है । इस प्रकार भवभूति में अपनी कल्पना से मालतीमाधवम् में चमत्कार उत्पन्न कर दिया है ।

भवभूति ने मालती और माधव के विवाह को उनके जन्म से पूर्व ही निश्चित कर दिया है । मदयन्तिका को नन्दन की बहन बनाने से जहाँ एक ओर नाटकीय प्रभाव में वृद्धि की है, वहीं दूसरी ओर नन्दन द्वारा नयी बाधायें उपस्थित करने की सम्भावना भी समाप्त हो गयी है । इसके अतिरिक्त कथानक में अनेक नवीन घटनाओं की कल्पना कवि की अपनी मौलिक सूझ है। कामन्दकी को मध्यस्थ बनाने की कल्पना चाहे दण्डी के 'दशकुमारचरितम्' से प्राप्त हुई हो, परन्तु कामन्दकी की समस्त नीति की योजनायें भवभूति की प्रतिभाजन्य मौलिकता का परिचय देती है ।

आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक कथावस्तु

उत्तररामचरितम् के प्रथम अङ्क में राम जनक आदि अथितियों के जाने से उदास सीता को सान्त्वना देते हैं, अष्टावक्र उन्हें गुरुजनों का सन्देश सुनाते हैं, चित्र-दर्शन से परिश्रान्त होकर सीता राम की भुजा का आश्रय लेकर सो जाती हैं, दुर्मुख के मुख से अपवाद की बात सुनकर राम सीता-त्याग कर निर्णय कर लेते हैं, राक्षस-त्रास का समाचार पाते ही लवणासुर का वध करने के लिये वे शत्रुघ्न को आदेश देते हैं तथा अन्त में सीता को साथ लेकर लक्ष्मण भागीरथी की ओर प्रस्थान करते हैं द्वितीय अङ्क में राम शम्बूक का वध कर उसे शाप-मुक्त

करते हैं और अगस्त्य के आमन्त्रण पर उनके आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं । तृतीय अङ्क में वे पञ्चवटी के पूर्व-परिचित दृश्यों को देखकर सीता के विरह में अत्यन्त व्यथित होते हैं तथा बार-बार मूर्च्छित होते हैं । अदृश्या सीता के स्पर्श द्वारा उन्हें चेतना प्राप्त होती है और सीता अपने पति के प्रेम की गम्भीरता तथा उनकी विरह-वेदना का प्रत्यक्ष अनुभव करती हैं । चतुर्थ अङ्क में जनक, अरुन्धती और कौशल्या की वाल्मीकि आश्रम में लव से भेंट होती है तथा उसे पहचान न पाने पर भी उनके मन में उसके प्रति स्वाभाविक आकर्षण उत्पन्न होता है । राम द्वारा किये जा रहे अश्वमेध के घोड़े के आगमन की सूचना इसी समय मिलती है तथा सैनिकों की घोषणा को सुनकर लव उत्तेजित हो जाते हैं । पञ्चम अङ्क में लव और चन्द्रकेतु के बीच वीरोचित वार्तालाप होता है और वे युद्ध करने के लिये आगे बढ़ते हैं । षष्ठ अङ्क में राम के आगमन से युद्ध बन्द हो जाता है और चन्द्रकेतु उनसे अपने मित्र लव का परिचय कराता है। इसी समय कुश प्रवेश करता है । कुश और लव की आकृति में सीता की कुछ समानताएँ देखकर राम विस्मित होते हैं । बालकों के युद्ध को रोकने के लिये वाल्मीकि आदि गुरुजनों के आगमन की सूचना पाकर उनसे मिलने के लिये कुश और लव के साथ राम प्रस्थान करते हैं । सप्तम अङ्क में वे वाल्मीकि द्वारा लिखित तथा अप्सराओं द्वारा अभिनीत नाटक का अवलोकन करते हैं, जिसमें सीता निर्वासन के बाद की घटनाओं का अभिनय किया जा रहा है । इस अभिनय की समाप्ति पर वाल्मीकि कुश और लव का परिचय कराते हैं ।

प्रथम अङ्क में लवणासुर के उत्पात की कथा, अन्तिम अङ्क में शत्रुघ्न के विजय की सूचना, शम्बूक वध की घटना का आश्रय लेकर कवि द्वारा राम को पञ्चवटी में पहुँचाना 'प्रासङ्गिक कथा' है, जो आधिकारिक की सहायक है । इसी प्रकार गुरुजनों को वाल्मीकि के आश्रम में एकत्र करने, लव और चन्द्रकेतु का युद्ध कराने तथा वाल्मीकि-प्रणीत नाटक के अभिनय में 'आधिकारिक कथा' है ।

महावीरचरितम् के नायक राम हैं तथा उनसे सम्बन्धित घटनाएँ-विश्वामित्र के आश्रम में आगमन, ताटका-वध, जृम्भकास्त्र की प्राप्ति, धनुर्भङ्ग, सुबाहु और मारीच के वध के लिये राम का प्रस्थान, मिथिला में कुद्ध परशुराम से भेंट तथा राम को अपना धनुष और दण्डकारण्य के मुनियों की रक्षा का भार सौंपकर परशुराम का प्रस्थान, सीता और लक्ष्मण के साथ राम का वनगमन, खर-दूषण राक्षसों का वध, सीता के विरह में विलाप, बालिवध, रावण के साथ युद्ध और राम की विजय, पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या में पुनरागमन तथा राम का राज्याभिषेक इस नाटक की 'आधिकारिक कथावस्तु' है ।

इसी प्रकार राक्षस दूत का विश्वामित्र के आश्रम में आगमन,माल्यवान् और शूर्पणखा द्वारा राम के पराजय की योजनाओं का निर्माण,वसिष्ठ आदि द्वारा उद्विग्न परशुराम को शान्त करने का प्रयास,मन्थरा के वेष में शूर्पणखा का मिथिला में प्रवेश,सुग्रीव-हनुमान आदि के साथ विभीषण की मित्रता, हनुमान द्वारा लङ्का-दहन, विभीषण का राज्याभिषेक आदि महावीरचरितम् की प्रासङ्गिक कथावस्तु है, जो आधिकारिक घटनाओं की सहायक हैं ।

मालतीमाधवम् की आधिकारिक कथावस्तु के अन्तर्गत नायक से सम्बन्धित घटनाएँ हैं - मालती द्वारा मार्ग पर निकलते हुए माधव के अनेक बार दर्शन, मालती द्वारा माधव के चित्र का निर्माण, मदनोद्यान में मालती और माधव का मिलन, माधव द्वारा बकुलमाला की भेंट तथा चित्रफलक पर अपने चित्र के समीप मालती के चित्र का निर्माण, मदयन्तिका द्वारा चित्रफलक का मालती तक पहुँचाया जाना, कामन्दकी द्वारा मालती को गांधर्व-विवाह के लिये प्रोत्साहित किया जाना, कुसुमाकर उद्यान में मालती और माधव का मिलन, नन्दन के साथ मालती के विवाह का उपक्रम, माधव द्वारा शमशान में नरमांस-विक्रय, चामुण्डा को मालती की बलि देने के लिये तत्पर अघोरघण्ट का माधव द्वारा वध तथा मालती की रक्षा, नगरदेवता के मन्दिर में मालती और माधव का मिलन तथा कामन्दकी के निर्देशानुसार दोनों का वहाँ से पलायन, उपवन में मालती

को अकेली छोड़ कर नगर-रक्षकों से युद्ध करते हुए मकरन्द की सहायता के लिये माधव का प्रस्थान, कपालकुण्डला द्वारा मालती का अपहरण तथा विरहाकुल माधव का विलाप, सौदामिनी के साथ माधव का श्रीपर्वत पर गमन, मालती के साथ माधव का आगमन तथा दोनों के विवाह की राजा द्वारा स्वीकृति प्राप्त होना । इसी प्रकार बुद्धरक्षिता द्वारा मदयन्तिका के हृदय में मकरन्द के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना, मकरन्द द्वारा कुसुमाकरोद्यान में सिंह के आक्रमण से मदयन्तिका की रक्षा, मालती के वेश में मकरन्द का नन्दन के साथ विवाह तथा मकरन्द की उपस्थिति में मदयन्तिका द्वारा सखियों के समक्ष अपनी विरह वेदना का वर्णन, मदयन्तिका का मकरन्द के साथ पलायन, नगर रक्षकों द्वारा मार्ग में पकड़ा जाना तथा उनके साथ मकरन्द का युद्ध और अन्त में राजा की इच्छानुसार मकरन्द और मदयन्तिका का विवाह 'प्रासङ्गिक कथा' है, जो आधिकारिक की सहायक है ।

अर्थोपक्षेपक

अर्थोपक्षेपक का अर्थ है - कथानक का सूचक तत्त्व । महाकवि भवभूति ने कथानक की प्रस्तुति के लिए विभिन्न नाट्य प्रयोगों का सहारा लिया है जिससे उनका नाटक सामाजिक को रसानुभूति के धरातल पर ले जाता है । सूच्य वस्त्वंशों की सूचना पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेपकों के द्वारा दी जाती है । ये हैं - *विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अङ्कास्य तथा अङ्कावतार ।*

१. *विष्कम्भक*

नाटक में घटित या भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की सूचना जब मध्यम पात्रों के द्वारा संक्षेप में दी जाय तो वहाँ ***विष्कम्भक*** नामक अर्थोपक्षेपक होता है ।

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।

संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ।।[1]

---

१. *दशरूपकम्*-धनञ्जय - १/५९ ।

इस प्रकार विष्कम्भक वह सूच्य अर्थोपक्षेपक है जो अतीत या भावी कथांशों की सूचना एक या दो मध्यम पात्रों के वार्तालाप के द्वारा देता है । यह विष्कम्भक शुद्ध तथा संकीर्ण दो तरह का होता है । एक या दो मध्यम श्रेणी के पात्रों वाला विष्कम्भ ***शुद्ध*** कहलाता है तथा मध्यम व अधम श्रेणी के पात्रों द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक ***संकीर्ण*** कहलाता है । *

महावीरचरितम् के द्वितीय अङ्क के विष्कम्भक में माल्यवान् राम द्वारा ताटका, सुबाहु आदि राक्षसों के वध, जृम्भकास्त्र की प्राप्ति तथा सीता के पाणिग्रहण की सूचना देता है यहीं शूर्पणखा के साथ वार्तालाप में वह परशुराम को राम के विरूद्ध उत्तेजित कर राम के वध की योजना बनाता है । माल्यवान् मध्यम पात्र तथा शूर्पणखा नीच पात्र होने के कारण इस विष्कम्भक में संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है, अतः यहाँ 'मिश्र' विष्कम्भक है ।

मालतीमाधवम् के पञ्चम अङ्क का आरम्भ *शुद्ध विष्कम्भक* से होता है । केवल एक ही मध्यम पात्र है जिसके द्वारा संस्कृत का प्रयोग किया गया है । इसमें सूच्य विषय यही है कि अघोरघण्ट श्मशान भूमि में स्थित देवी कराला को एक स्त्री-रत्न उपहार में देने वाला है और वह स्त्री-रत्न इसी नगर में प्राप्य है ।

उत्तररामचरितम् के प्रथम अङ्क में नट और सूत्रधार के वार्तालाप द्वारा विष्कम्भक का कार्य सम्पादित किया गया है। तृतीय अङ्क का आरम्भ शुद्ध विष्कम्भक से होता है जिसमें तमसा, मुरला के संवाद द्वारा दो सूचनायें मिलती हैं-१. प्रसव वेदना की असहनीयता के कारण वहाँ उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। पृथ्वी देवी सीता को पाताल में ले गई और भगवती ने स्तन्य-त्याग

---

१. ***एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः ।*** - दशरूपकम् - १/६० ।

** ध्यातव्य है कि विष्कम्भक में मध्यम श्रेणी के पात्रों का होना आवश्यक है । मिश्र विष्कम्भक में कम से कम एक मध्यम श्रेणी के पात्र का होना इसे विष्कम्भक बनाता है । यदि दोनों ही पात्र अधम होगें, तो वह विष्कम्भक न होकर प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपक हो जायगा ।*

के उपरान्त दोनों बालकों को महर्षि वाल्मीकि के संरक्षण में छोड़ दिया । २. भगवती भागीरथी यह कहकर सीता को पञ्चवटी में ले आयी हैं कि आज कुश और लव और की बारहवीं वर्षगाँठ है । अतः तुम स्वयं अपने हाथ से फूल चुनकर भगवान सूर्य की पूजा करो । उन्होंने सीता को, जब तक वे पञ्चवटी में रहे, अदृश्य बना दिया है तथा तमसा को उनके साथ रहने का आदेश दिया है । इस विष्कम्भक के वृत्त में कवि ने कुश और लव के जन्म का रहस्योद्घाटन किया है तथा वर्तिष्यमाण कथांश में सीता को पञ्चवटी में लाने की योजना बना दी है । जिससे वह स्वयं राम की मर्मभेदिनी विरहव्यथा का साक्षात्कार कर सके ।

२. प्रवेशक

विष्कम्भक की तरह प्रवेशक में अतीत व भावी कथांओं की सूचना होती है । इसमें प्रयुक्त युक्ति उदात्त नहीं होती (इसकी भाषा सदैव प्राकृत होती है, तथा यह प्राकृत भी शिष्ट अर्थात् शौरसेनी न होकर मागधी, शकारी आदि अशिष्ट प्राकृत होती है); तथा इसमें नीच पात्रों का प्रयोग होता है । प्रवेशक की योजना दो अङ्कों के बीच ही की जाती है ।[१]

मालतीमाधवम् के आरम्भ में प्रवेशक का प्रयोग किया गया है जिसमें दो चेटियाँ शौरसेनी प्राकृत में वार्तालाप करती हैं । प्रवेशक में चार वृत्त घटनाओं की तथा एक वर्तिष्यमाण घटना की सूचना मिलती है । वृत्त घटनायें हैं – मदनोद्यान में मालती और माधव के मिलन का पूर्ण वृत्तान्त कामन्दकी ने मकरन्द द्वारा जान लिया है, मालती प्रेम की वेदना के कारण अस्वस्थ हो गई है, लवङ्गिका से माधव के विषय में और अधिक जानने को उत्सुक है, मालती के पिता ने राजा से कह दिया है कि उनकी कन्या पर महाराज का अधिकार है ।

---

१. *तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ॥*

प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ।-दशरूपकम् १/६० ।

अस्वस्थ मालती को देखने के लिए भगवती कामन्दकी मालती के भवन में आ रही है। ऐसा कहकर वर्तिष्यमाण घटना की सूचना दे दी गयी है । प्रवेशक के अन्त में कामन्दकी द्वारा किये जाने वाले प्रयत्नों की ओर भी सङ्केत कर दिया गया है ।

३. *चूलिका*

जहाँ कथावस्तु की सूचना जवनिका के उस ओर बैठे हुए पात्रों के द्वारा दी जाय वहाँ ***चूलिका*** नामक अर्थोपक्षेपक होता है ।

१. ***अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना***[1]

उत्तररामचरितम् के द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में आत्रेयी के आगमन पर वनदेवी नेपथ्य से उसका स्वागत करती है - *'(नेपथ्ये) स्वागतं तपोधनायाः (ततः प्रविशति तपोधना) ।'*

महावीरचरितम् के चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में नेपथ्य स्थित देवता इस बात की सूचना देते हैं कि दाशरथि राम ने परशुराम को जीत लिया है - *'(नेपथ्ये) भो भो वैमानिकाः, प्रवर्तन्तां मङ्गलानि ।'*[2]

मालतीमाधवम् के तृतीय अङ्क में मठ से निकलकर भागते हुए सिंह की सूचना *चूलिका* द्वारा दी गयी है । यह चूलिका प्राकृत में हैं जिसमें व्याघ्र-वर्णन का विस्तार आवश्यकता से अधिक हो गया है । चतुर्थ अङ्क में चूलिका द्वारा मालती को लेकर जल्दी आने के लिए कामन्दकी से निवेदन किया गया है ।

४. *अङ्कास्य*

जहाँ एक अङ्क की समाप्ति के समय उस अङ्क में प्रयुक्त पात्रों के द्वारा किसी छूटे हुए अर्थ की सूचना दी जाय, वहाँ ***अङ्कास्य*** नामक अर्थोपक्षेपक होता है ।[3]

---

१. *दशरूपकम्* - १/६१ ।

२. *महावीरचरितम्* - ४/१ ।

अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात् ।[1]

अङ्क के अन्त के पात्र अङ्कान्तपात्र कहलाते हैं, जहाँ इस प्रकार के पात्र के द्वारा विश्लिष्ट कथावस्तु की सूचना दी जाय, वहाँ उत्तराङ्कावतार अङ्कास्य होता है, जैसे महावीरचरितम् के द्वितीय अङ्क के अन्त में सुमन्त्र आकर शतानन्द तथा जनक की कथा का विच्छेद कर भावी अङ्क के कथा कथानक की सूचना देते हैं ।

(प्रविश्य) सुमन्त्रः -- भगवन्तौ वशिष्ठविश्वामित्रौ भवतः सभार्गवानाह् यतः ।

इतरे--क्व भगवन्तौ । सुमन्त्रः -- महाराजदशरथस्यान्तिके । इतरे -- गुरुवचनाद् गच्छामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)[2] ।

प्राचीन आचार्यों ने अङ्कमुख और अङ्कास्य को पृथक् नहीं माना है परन्तु परवर्ती शास्त्रकारों ने इन दोनों में भेद माना है । साहित्यदर्पणकार के अनुसार[3] प्रथम अङ्क के आरम्भ में कामन्दकी और अवलोकिता का वार्तालाप 'अङ्कमुख' माना जायगा क्योंकि उसमें भूरिवसु आदि की भूमिका का सङ्केत करते हुए आगामी अङ्कों की कथावस्तु का भी निर्देश कर दिया गया है ।

५. *अङ्कावतार*

जहाँ प्रथम अङ्क की कथावस्तु का विच्छेद किये बिना दूसरे अङ्क की कथावस्तु चले, वहाँ ***अङ्कावतार*** नामक अर्थोपक्षेपक होता है ।[4]

अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः ।

---

१. ***दशरूपकम्*** - १/६२ ।

२. ***महावीरचरितम्***, द्वितीय अङ्क की समाप्ति ।

३. ***साहित्यदर्पण*** - ६/५९, *विमर्श*, पृष्ठ - ३९४ ।

४. ***दशरूपकम्***, १/६२ ।

इस प्रकार जब प्रथम अङ्क के पात्र किसी बात की सूचना दें, तथा वे ही पात्र उसी कथावस्तु को लेकर उसे विच्छिन्न किये बिना ही दूसरे अङ्क में प्रवेश करें तो वहाँ अङ्कावतार नामक अर्थोपक्षेपक होता है ।[१]

भरत* के अनुसार *अङ्कमुख* वहाँ होता है जहाँ किसी स्त्री या पुरुष के द्वारा अङ्क की कथा का संक्षेप आरम्भ में ही कर दिया जाय - *'विश्लिष्टमुखमङ्कस्य स्त्रिया वा पुरुषेण वा। यत्र संक्षिप्यते पूर्वे तदङ्कमुखमिष्यते ॥'*[२] जबकि साहित्यदर्पणकार के मतानुसार, जहाँ एक ही अङ्क में दूसरे अङ्कों की सारी कथा की सूचना दी गयी हो, वहाँ *अङ्कमुख* होता है - *'यत्र स्यादङ्क एकस्मिन्नङ्गानां सूचनाऽखिला । तदङ्कमुखमित्याहुर्बीजार्थख्यापकं च तत् ॥'*[३] जैसें भवभूति के नाटक 'मालतीमाधवम्' के प्रथम अङ्क के आरम्भ में कामन्दकी व अवलोकिता, मालती तथा माधव के अनुराग की सूचना प्रसङ्गवश दे देती है -

'कामन्दकी - वत्से ! अवलोकिते !

अवलोकिता - आज्ञापयतु भगवती ।

कामन्दकी - अपि नामकल्याणिनोर्भूरिवसुदेवरातापत्ययोरनयोर्मालतीमाधवयोरभिमतं पाणिग्रहमङ्गलं स्यात् । (सहर्ष वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा)'[४] ।

---

१. ***हिन्दी दशरूपक*** - डॉ० भोला शङ्कर व्यास, पृष्ठ - ७१ ।

२. ***नाट्यशास्त्र*** - २१/११६ ।

३. ***साहित्य दर्पण*** - ३/५९ ।

४. ***मालतीमाधवम्*** - प्रथम अङ्क ।

* यहाँ यह सङ्केत करना आवश्यक है कि भरत और विश्वनाथ अङ्कमुख का वर्णन अङ्कावतार के बाद करते हैं। धनञ्जय ने पहले अङ्कास्य, बाद में अङ्कावतार का वर्णन किया है।

महावीरचरितम् के तृतीय अङ्क का आरम्भ *अङ्कावतार* नामक अर्थोपक्षेपक द्वारा किया गया है । इस अङ्क में वे ही पात्र-वशिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम और शतानन्द-जो द्वितीय अङ्क में थे, प्रवेश करते हैं ।

मालतीमाधवम् के प्रथम अङ्क के अन्त में प्रयुक्त मकरन्द का वाक्य - *'तदत्र भगवती कामन्दकी नः शरणम्'* आगामी अङ्क की कथावस्तु की सूचना देता है । द्वितीय अङ्क के अन्तिम वाक्य में मालती और माधव में परिचय कराने की बात कामन्दकी कहती है और आगामी अङ्क में दोनों को मिलाकर यह काम पूरा करती है ।

सामान्यतः *अङ्कावतार* का प्रयोग अङ्क के अन्त में किया जाता है, परन्तु भवभूति ने कहीं-कहीं आगामी अङ्क के कथांश की सूचना अङ्क के अन्त में न देकर बीच में ही दे दी हैं। छठें अङ्क में मालती-वेशधारी मकरन्द के प्रति माधव की उपहास पूर्ण उक्ति -

माधवः - (गाढं मकरन्दं परिष्वज्य)

'कृतपुण्य एव नन्दनः यतः प्रियवयस्यमीदृशं मनसा मुहूर्तमपि कामयिष्यति'[1] तथा सप्तम अङ्क में मदयन्तिका द्वारा पूछे जाने पर-*'क्व पुनरिदानीमस्माभिर्गन्तव्यम्'* बुद्धरक्षिता उत्तर देती है - *'यत्रैव मालतीगताः'* इत्यादि अङ्क के मध्य में प्रयुक्त अङ्कावतार के उदाहरण हैं ।

---

१. ***मालतीमाधवम्*** - षष्ठ अङ्क ।

अध्याय - ४

चरित्राङ्कन

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक या रूपक के वस्तु, नेता तथा रस ये तीन तत्त्व माने गये हैं । इन्हीं के आधार पर किसी रूपक की पर्यालोचना की जाती है । यद्यपि पाश्चात्य पद्धति कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देश-काल, शैली तथा उद्देश्य इन छः तत्त्वों को रूपक का अङ्ग मानती है तथा उसके साथ सातवें तत्त्व के रूप में रङ्गमञ्च (अभिनेयता) का भी समावेश करती है, फिर भी भारतीय पद्धति के इन तीनों तत्त्वों में पाश्चात्य पद्धति के ये सभी तत्त्व अन्तर्भूत हो जाते हैं ।[१] नाटक लोक की अनुकृति है, इसलिए उसमें समाज के प्रत्येक वर्ग का स्थान अपेक्षित है । नेता या पात्र रूपकों का दूसरा भेदक तत्त्व है जिसमें नायक के साथ नायिका, नायक के साथी, नायिका की सखियाँ, प्रतिनायक आदि आ जाते हैं । भवभूति ने अपने नाटकों में इन सभी पात्रों का समावेश किया है । महावीरचरितम् और उत्तररामचरितम् में उन्होंने मुख्य पात्रों से हटकर कुछ नये पात्रों की भी कल्पना की है ।

उत्तररामचरितम् में भवभूति ने पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों की संख्या न्यून रखी है। चरित्राङ्कन की दृष्टि से उत्तररामचरितम् नाटक अन्य नाटकों की अपेक्षा निर्विवाद रूप से उत्कृष्ट है । यद्यपि इस नाटक में भी महावीरचरितम् के वही प्रमुख पात्र - राम, लक्ष्मण, जनक और सुमन्त्र आदि हैं, फिर भी समय और परिस्थितियों के कारण उनकी चरित्रगत विशेषतायें तद्भिन्न हैं । जिस राम का चरित महावीरचरितम् में 'महावीर' के रूप में स्पष्ट किया गया है, वे उत्तररामचरितम् में 'प्रजानुरञ्जक राजा' और 'शोक-विह्वल पति' के रूप में है । सामान्य कवि में एक ही पात्र के व्यक्तित्त्व में दो भिन्न-भिन्न प्रकार की चरित्रगत विशेषतायें स्थापित करने की सामर्थ्य नहीं दिखती । इसी प्रकार से सीता के व्यक्तित्त्व में भी असाधारण परिवर्तन किया गया है । वे महावीरचरितम् की सीता से सर्वथा भिन्न है । यहाँ वे समस्त विश्व के लिये वन्दनीय हो गयी हैं । देवी अरुन्धती के मन में भी उनके प्रति भक्ति उत्पन्न हो गयी है ।

---

१. ***हिन्दी दशरूपक*** - डॉ० भोला शङ्कर व्यास, पृष्ट ७५ ।

महावीरचरितम् में देव, मनुष्य और राक्षस तीनों प्रकार के पात्रों समावेश किया है । साथ ही साथ बालि, सुग्रीव, हनूमान् और अङ्गद आदि बन्दरों और जटायु तथा सम्पाति जैसे पक्षियों को भी स्थान दिया है । वासव और चित्ररथ, देव हैं । मनुष्यों में ऋषि, राजा, मन्त्री, पुरोहित आदि अनेक वर्गों के पात्र हैं, फिर भी उनके बीच भवभूति ने अन्तर स्पष्ट करने में विशेष ध्यान दिया है । वशिष्ठ, विश्वामित्र, शतानन्द और परशुराम एक ही श्रेणी के होने पर भी वे अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण एक-दूसरे से अलग हैं । इसी प्रकार दशरथ, जनक और राम, लक्ष्मण तथा भरत के व्यक्तित्व में अन्तर भी भवभूति ने स्पष्ट कर दिया है । राक्षसों में रावण और विभीषण एक ही परिवार के होने पर भी गुणों में एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं ।

मालतीमाधवम् में स्त्री पात्रों की संख्या पुरुष पात्रों से अधिक है । इसमें भवभूति ने केवल मनुष्य जाति के पात्रों का ही चयन किया है, परन्तु यहाँ प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग-अलग चारित्रिक विशेषता है । माधव और मकरन्द प्रेमी, मालती और मदयन्तिका प्रेमिका, भूरिवसु और नन्दन मन्त्री, मन्दारिका और कलहंस परिचारक, कामन्दकी और अघोरघण्ट गुरु हैं जबकि सौदामिनी, बुद्धरक्षिता, अवलोकिता तथा कपालकुण्डला आदि शिष्याएं हैं । यहाँ न तो कामन्दकी की तुलना अघोरघण्ट से की जा सकती हैं और न सौदामिनी की कपालकुण्डला से । माधव और मकरन्द के स्वभाव में भेद है । इसी प्रकार मालती और मदयन्तिका की अपनी-अपनी पृथक् विशेषतायें हैं ।

इस तरह भवभूति के तीनों नाटकों में प्रत्येक पात्रों में व्यक्ति-वैचित्र्य है । उनकी अपनी अलग चारित्रिक विशेषतायें हैं । उत्तररामचरितम् नाटक अन्य दो नाटकों के अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठित हुआ । इसलिए अब क्रमशः उत्तररामचरितम्, महावीरचरितम् तथा मालतीमाधवम् के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण किया जा रहा है ।

उत्तररामचरितम् के प्रमुख पात्रों का चरित्राङ्कन

श्री रामभद्र

उत्तररामचरितम् नाटक में श्री रामभद्र धीरोदात्त[1] कोटि के नायक हैं । इस नाटक में राम को एक प्रजानुरञ्जक राजा के रूप में चित्रित किया गया है । यहाँ वे पुरुषोत्तम राम हैं । उनका चरित्र लोकोत्तर है । भवभूति ने उन्हें एक आदर्श पति की अपेक्षा आदर्श राजा के रूप में प्रस्तुत किया है । नाटक के प्रथम अङ्क में ही उनके चरित्र के अनेक विशेषतायें स्पष्ट हो जाती हैं । अङ्क के आरम्भ में वे धर्मासन से उठकर दुःखी सीता को सान्त्वना देने के लिये सीधे वासगृह में पहुँचते हैं । वे राजा हैं इसलिये धर्मासन पर बैठंना उनका प्रथम दायित्व है । वे पति हैं अतः दुःखी पत्नी को सान्त्वना देना उनका दूसरा कर्तव्य है । राम को दोनों ही कर्तव्यों का पालन करना ही है । वृद्धलोगों के प्रति उनके मन में अत्यधिक आदर है । जब कंचुकी अभ्यास के कारण उन्हें 'रामभद्र' कहकर सम्बोधित करता है और तुरन्त ही सम्हल कर 'महाराज' कहता है तब वे कंचुकी से कहते हैं[2]- *'ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य'* । 'आपको जैसा अभ्यास है वैसा ही कहिये' । जिस समय उन्हें वशिष्ठ का सन्देश[3] प्राप्त होता है। राम अपने कर्तव्य से अनभिज्ञ नहीं थे, फिर भी गुरु के आदेश से वे प्रतिज्ञा करते हैं कि लोकानुरञ्जन के लिये सर्वस्व अर्पित कर देने में मुझे तनिक भी दुःख नहीं होगा -

'स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।

आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ।।'

---

१. *महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।*

स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः । - दशरूपकम् - २/४-५ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - प्रथम अङ्क ।

३. *उत्तररामचरितम्* - १/११ ।

राम ने इस नाटक में एक आदर्श उपस्थित किया है कि राजा के लिए जनहित और प्रजानुरञ्जन सर्वोत्तम कार्य है । स्वयं न चाहते हुए भी उन्होंने जनता के सन्तोष के लिए सीता का परित्याग किया और उसके कारण बारह वर्ष तक असह्य दुःख सहा । अन्त में प्रजा और ऋषि-मुनियों की स्वीकृति से ही सीता को स्वीकार करते हैं । एक आदर्श पति के रूप में उनका जीवन अनुकरणीय रहा है । उन्होंने सोने की सीता की मूर्ति बनाकर अश्वमेध यज्ञ किया- *'आत्रेयी-हिरण्यमयी सीताप्रतिकृतिर्गृहिणीकृता ।'*

वासन्ती ने राम के विषय में कहा कि महापुरुषों का हृदय वज्र से भी अधिक कठोर तथा फूल से भी अधिक कोमल होता है-

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।

लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ।।'

आदर्श राजा के रूप में उनकी कोई कमी दृष्टिगोचर नहीं होती, परन्तु आदर्श पति के रूप में अवश्य उन पर आपत्ति की गई है । वासन्ती राम को आड़े हाथों लेती है और कहती है कि तुमने अपने यश के लिए इतना बड़ा पाप किया है । क्या तुम्हें मालूम है कि स्त्री-परित्याग में कितना बड़ा अपयश होता है?'वन में सीता का क्या हुआ, इसके उत्तर में राम मौन हो जाते हैं । वे कहते हैं कि सीता को अवश्य ही जंगली जानवरों ने खा लिया होगा । राम बारह वर्ष अत्यन्त दयनीय अवस्था में शोकाकुल रहे । वे यह मानते हैं कि सीता निरपराध थी और उसका पातिव्रतधर्म सर्वथा निर्मल था, किन्तु सीता के विषय में फैला लोकापवाद उनको विवश करता है कि वे सीता का परित्याग करें । इसके लिए उन्होंने दुःख के अवसरों पर जनता को दोषी बताया है ।[२]

---

१. ***उत्तररामचरितम्*** - ३/२७ ।

२. ***उत्तररामचरितम्*** - ३/३२ ।

राम सीता के वियोग के कारण साक्षात् करुणा की मूर्ति हो गये हैं । उनका दुःख अति गम्भीर, घना व पुटपाक के समान है -

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः ।

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥

वे कहते हैं कि दुःख भोगने के लिए मेरे जीवन में चेतना शेष है । राम ऐसी कोई बात नहीं सुनना चाहते जो सीता के मन को ठेस पहुंचाती हो । लक्ष्मण के मुख से 'अग्नि-शुद्धि' की बात सुनकर वे सीता से क्षमा-याचना करते हैं । उन्हें सीता की पवित्रता पर अखण्ड विश्वास है। उनकी दृष्टि में सीता गङ्गाजल तथा अग्नि के समान पवित्र है ।[१] सीता को पाकर वे स्वयं को अत्यन्त भाग्यशाली मानते हैं । परन्तु सीता का वियोग होने पर असह्य वेदना के कारण राम की जो अवस्था हुई थी । उसे देखकर पत्थर भी रोने लगे और वज्र का हृदय भी फट गया । आज भी उस वियोग की स्मृति राम को व्यथित कर देती है । दुर्मुख के वाग्वज्र के तीव्र प्रहार से वे मूर्च्छित हो गये, आश्वस्त होकर वे सोचते हैं - 'अब मैं क्या करूँ?' परन्तु शीघ्र ही वे अपने कर्तव्य का निर्णय कर लेते हैं - '*सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्* ।' लोकाराधन का व्रत, पिता का आदर्श, गुरु का सन्देश, कुल की प्रतिष्ठा का गौरव - सभी ने मिलकर उन्हें कठोर निर्णय की प्रेरणा दी ।

जिस समय राम सीता-निर्वासन का कठोर निर्णय लेते हैं उस समय सीता राम की गोद में सिर रखकर सोयी हुई हैं, वह सीता जिसका सम्पूर्ण जीवन ही राममय है । राम सोचने लगे- 'कैसा वीभत्स कर्म कर रहा हूँ मैं, कितना नृशंस हो गया हूँ । जिसको बचपन से पोषित किया, जिसका अन्य कोई आश्रय नहीं, उसी प्रिया को मैं धोखा देकर मृत्यु के मुख में छोड़ रहा हूँ । मैं पापी हूँ, अस्पृश्य हूँ । अपने स्पर्श से देवी को क्यों दूषित करूँ ।' वे धीरे से सीता का सिर

---

१. *तीर्थोदकञ्च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः* -- उत्तररामचरितम्, १/१३ ।

ऊँचा कर अपना हाथ खींच लेते हैं और उठकर खड़े हो जाते हैं । अनेक प्रकार से विलाप करते हुए सीता के चरणों में सिर रख कर रोने लगते हैं । राम का यह विलाप मानवीय संवेदनाओं की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है ।

ऐसी मनःस्थिति में भी वे तत्परता के साथ प्रजा के प्रति कर्तव्यपालन करने के लिये तत्पर हैं, और सीता को उसी अवस्था में छोड़कर लवणासुर के उन्मूलन हेतु शत्रुघ्न को आदेश देने के लिये चले जाते हैं । परन्तु जाते हुए एक बार फिर लौटकर सीता के पास आते हैं - 'हा देवि! ऐसी दशा में तुम्हारा क्या होगा ।' कहकर अपनी चिन्ता व्यक्त करते हैं और सीता को सम्भालने के लिये भगवती वसुन्धरा से प्रार्थना करते हैं । यहाँ यदि एक ओर महान् राजा है तो दूसरी ओर आदर्श पति भी ।

सीता परित्याग के बाद सीतारहित पञ्चवटी को देखकर राम-'हा प्रिये जानकि! तुम कहाँ हो' - कहते हुए रोने लगते हैं । उन्होंने सीता का स्वयं परित्याग किया है इसलिये वहाँ विलाप कर वे अपनी वेदना को कम नहीं कर सकते ।[1] पुनः राम अपनी पत्नी के वियोग में इतने दुःख का अनुभव करते हुए भी प्रजा को नहीं भूलते । पञ्चवटी से ही वे अपने अयोध्यावासी नागरिकों को सम्बोधित कर कहते हैं-'***आप लोगों को देवी का घर में रहना रुचिकर नहीं था, अतः उसे शून्य वन में तृण के समान त्याग दिया और उस पर शोक भी नहीं किया, परन्तु आज यहाँ अनेक चिरपरिचित भाव मेरे हृदय को पिघला रहे हैं, इसलिये मैं विवश होकर रो रहा हूँ । आप लोग कृपया मुझे क्षमा करें।***' ऐसी मनःस्थिति में अन्य कोई राजा इस प्रकार प्रजा का ध्यान नहीं रख सकता । सीता के असह्य विरह को सहन कर राम ने असाधारण धैर्य का परिचय दिया है ।

राम अपने महान् दुःख को सदा हृदय में छिपाये रहते हैं, गुरुजनों (वसिष्ठ, अरुन्धती,

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ३/११ ।

राजमाताएँ और जनक) के सम्मुख उपस्थित होना अनिवार्य हो गया तो उनकी आत्मग्लानि चरम सीमा पर पहुँच गयी । वे जानते हैं कि उन्होंने सीता का परित्याग कर बड़ा अपराध किया है। अतः उन्हें गुरुजनों के स्नेह का अधिकार नहीं रहा । गर्भनाटक में सीता की विपत्ति को देखकर वे मूर्च्छित हो जाते हैं । भगवती भागीरथी और वसुन्धरा ने आपत्ति में सीता की जो सहायता की है उसके लिये वे उन दोनों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं । यही है उनके चरित्र की असाधारणता, जिसके कारण उन्हें ऋषियों से सहानुभूति, देवियों से सहायता, और प्रजा से सम्मान प्राप्त हुआ ।

सीता

सीता 'उत्तररामचरितम्' नाटक की नायिका हैं । नायिका भेद से वे स्वकीया नायिका[1] हैं। वे सूर्य-कुल की वधू हैं । यद्यपि इस नाटक में सीता का चित्रण विशेष रूप से पतिपरायण सती के रूप में किया गया है, फिर भी प्रसङ्गवश उनके चरित्र के अनेक गुणों की अभिव्यक्ति स्वतः ही हो गयी है । गुरुजनों के प्रति उनके मन में असीम श्रद्धा है । राम के राज्याभिषेक के पश्चात् अयोध्या से गुरुजनों के चले जाने पर वे दुःखी हो जाती हैं और ऋष्यशृङ्ग के आश्रम से आये हुए अष्टावक्र से पूछती हैं-*'भगवन् ! जामाता सहित गुरुजन और आर्या शान्ता कुशलपूर्वक तो हैं?'* सीता का हृदय अत्यन्त उदार है । महर्षि वसिष्ठ के सन्देश के उत्तर में की गयी राम की प्रतिज्ञा को सुनकर वे अपने पति की प्रशंसा करती हैं-*'अतएव राघवकुलधुरन्धर आर्यपुत्रः ।'*

अन्तिम अङ्क में जब लक्ष्मण आत्मग्लानि के कारण उनके समक्ष उपस्थित होने में लज्जा का अनुभव करते हैं तब वे उन्हें स्नेहपूर्वक आशीर्वाद देती हैं-*'वत्स सदृशस्त्वं चिरञ्जीव ।'* सीता का स्वभाव गम्भीर है, फिर भी वे अपने मनोविनोद का परिचय एक स्थान पर दे ही देती हैं । प्रथम अङ्क में चित्र दिखाते हुए जब लक्ष्मण कहते हैं -*'इयमार्या । इयमप्यार्या माण्डवी।*

---

१. *मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक् ।*- दशरूपकम् - २/१५ ।

इयमपि वधूः श्रुतकीर्तिः ।' तब वे उर्मिला की ओर सङ्केत करके पूछती हैं -*'वत्स, इयमप्यपरा का?'*लक्ष्मण लज्जित होकर मुस्कुराने लगते हैं । पुनःलक्ष्मण के मुख से सीता की अग्नि-शुद्धि की बात सुनकर राम दुःखी होते हैं और यह सोचकर कि सीता को इस बात से दुःख होगा । इस पर वे राम का ध्यान उधर से हटाने के लिये कहती हैं-*'भवत्वार्यपुत्र भवतु । एहि। प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम् ।'* उन्हें चित्र देखने की उत्सुकता यदि है तो वह इसलिये कि उन चित्रों में राम का चरित अङ्कित किया गया है । अपने पति के स्थायी प्रेम पर उन्हें अखण्ड विश्वास है । इसी विश्वास के साथ वे (चित्रदर्शन से थक जाने पर) अपना सिर राम के गोद में रखकर सो जाती हैं । राम के विरह का भय स्वप्न में भी व्याकुल कर देता है । जागने पर जब पता चलता है कि उनके पति उन्हें अकेले छोड़कर चले गये हैं । तब वे सोचती हैं-*'किमिदानीमेतत् । भवतु तस्मै कोपिष्यामि'* परन्तु वे जानती हैं ऐसा सम्भव नहीं है । राम को देख लेने पर उनके मन में कोप भला कैसे ठहर सकता है ।

इसी प्रकार अपने पुत्रों को दिव्यास्त्र प्राप्त होने पर वे अपने पति को सम्बोधित करती हैं-*'हा आर्यपुत्र! अब भी आप के प्रसाद प्रतिफलित हो रहे हैं ।'* पञ्चवटी के करिकलभ को देखकर उन्हें अपने पुत्रों का स्मरण हो जाता है-*'न जाने अब वे कितने बड़े हो गये होगें ।'* उन्हें अपने पर ग्लानि होने लगती है-*'कैसी मन्दभागिनी हूँ मैं । न केवल पति का विरह, अपितु पुत्रों का विरह भी सहन कर रही हूँ ।'* फिर वे सोचती हैं-'क्या लाभ है पुत्रों को जन्म देने से, यदि उनके मुख का चुम्बन आर्यपुत्र ने नहीं किया ।' पुत्रों के स्मरण तथा पति के सामीप्य के कारण सीता एक क्षण के लिये संसारी बन गयी हैं । अपनी प्रिय सखी वासन्ती पर वे इसीलिये क्रोधित होती हैं कि वह बार-बार परिचित स्थानों को दिखाकर उनके पति की वेदना को बढ़ा रही है । जब राम उनके विरह में व्याकुल होकर अत्यन्त विलाप करने लगते हैं तब वे कहती है-'मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ । कि पुनः आर्यपुत्र के दुःख का कारण बनी ।' राम के दुःख को देखकर वे

अपना दुःख भूल जाती हैं । अपने विरह से उत्पन्न राम की मूर्च्छा को दूर करती हैं । वे उनके पास से शीघ्र नहीं हट पातीं । कुछ समय बाद उनकी समझ में आता है-'आर्यपुत्र के स्पर्श से मोहित होने के कारण उन्हें प्रमाद हो गया ।' उन्हें तमसा की उपस्थिति का स्मरण आता है और वे विचार करती हैं कि -'यह क्या सोचेगी मन में; यह परित्याग और यह आसक्ति!' जब राम उन्हें *'अकरुण वैदेहि'* कहकर पुकारते हैं तब वे कहती हैं- 'वास्तव में मैं निष्ठुर हूँ जो तुम्हें इस अवस्था में देखकर भी जीवित हूँ ।'

उन्हें जब यह पता चलता है कि अश्वमेघ यज्ञ में उनके पति ने पत्नी के स्थान पर उन्हीं की सुवर्ण प्रतिमा को स्थापित किया है तब उनका (अकारण निष्कासन का) दुःख दूर हो जाता है और यह जानकर सन्तोष होता है कि वह प्रतिमा उनके पति के दुःख को कम करने में समर्थ है । अपने पति की सुख की कल्पना में वे अपने को भूलकर उस प्रतिमा की प्रशंसा करने लगती हैं । उनका सम्पूर्ण जीवन राममय है । सुख और दुःख में वे केवल राम का स्मरण करती है । उनकी असाधारण पति-भक्ति से भगवती अरुन्धती[१] उन्हें वन्दनीया मानती हैं ।

लव और कुश

लव सीता का पुत्र और कुश का छोटा भाई है । माँ का दूध छोड़ने के बाद उसका पालन-पोषण तथा क्षत्रियोचित संस्कार महर्षि वाल्मीकि ने किया है । उसने धनुर्विद्या का असाधारण अभ्यास किया है । जृम्भकास्त्र उसे जन्मसिद्ध हैं । वह अत्यन्त धीर-वीर और पराक्रमी है । उसमें स्वाभिमान उच्चकोटि का है । वह अपने समान किसी को वीर नहीं समझता । राम की वीरता को भी वह अपने से न्यून समझता है और उन्हें वृद्ध समझकर उनकी निन्दा से बचता है। वह अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़ लेता है और वीरता से पूरी सेना के साथ युद्ध करता है । चन्द्रकेतु से उसका प्रबल युद्ध होता है जिसमें आग्नेय, वायव्य, वारुण और जृम्भक अस्त्रों

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ४/११ ।

का प्रयोग होता है । राम के आगमन से युद्ध रुक जाता है । राम, लव और कुश को उनकी आकृति से अपना पुत्र होने का अनुमान करते हैं । लव अपने आप को वाल्मीकि का पुत्र बताता है, और कहता है कि उसके माता-पिता का नाम अज्ञात है । वह विनीत है,राम को सादर प्रणाम करता है । उसने चञ्चलता, वीरता, विनम्रता आदि गुणों से सबके मन को हर लिया है ।

कुश, लव का बड़ा भाई है । महर्षि वाल्मीकि ने ही शिक्षा-दीक्षा तथा संस्कार आदि किए हैं । वह भी लव के समान महापराक्रमी है । जृम्भक अस्त्र उसको भी जन्मसिद्ध है । वह लव और चन्द्रकेतु के युद्ध को सुनकर इतना उत्तेजित हो जाता है कि संसार से राजा शब्द का नाम ही मिटा देना चाहता है ।[१] लव के कहने पर वह शांत हो जाता है और राम को प्रणाम करता है । उसमें शौर्य, पराक्रम और विनय आदि गुणों का समन्वय है ।

चन्द्रकेतु

चन्द्रकेतु लक्ष्मण का पुत्र है । वह अश्वमेध के घोड़े की रक्षा के लिए सेना के साथ निकलता था । जब लव ने अश्वमेधीय घोड़े को पकड़ लिया और सैनिकों को पराजित कर दिया तो चन्द्रकेतु उनकी रक्षा के लिए पहुँचता है । वह लव के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और उसे रघुवंशी बालक समझता हैं । जब लव ने सैनिकों को हरा दिया तो वह उससे युद्ध करने के लिये तत्पर हो जाता है । लव और चन्द्रकेतु एक दूसरे को मित्र कहते हैं और प्रेम-भाव प्रकट करते हैं। वह राम के प्रति लव के निन्दापरक वचनों को सहन नहीं कर पाता है, अतः सुमन्त्र की स्वीकृति से माँगकर युद्ध के लिये रथ से उतर जाता है । उसे युद्ध मर्यादा का पूरा ध्यान है कि पैदल के साथ पैदल का ही युद्ध होता है । राम के आते ही युद्ध बन्द कर देता है और उन्हें प्रणाम करता है । लव को अपना मित्र बताकर राम से उसका परिचय कराता है । चन्द्रकेतु गंभीर, वीर और पराक्रमी होने के साथ ही अत्यन्त शिष्ट और विनीत है ।

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ६/१६ ।

जनक

जनक मिथिला के महाराज और सीता के पिता हैं । उन्होंने महर्षि याज्ञवल्क्य से ब्रह्मविद्या सीखी है ।[1] वे महाराज दशरथ के घनिष्ठ मित्र हैं । दशरथ उन्हें सदा पूजनीय समझते हैं । वे राम के द्वारा सीता के परित्याग के कारण दिन-रात दुःखी रहते हैं ।[2] वे सीता को अग्नि से भी अधिक पवित्र मानते हैं- ***जनकः- (सरोषम्) आः, कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने ? कष्टमेवंवादिना जनेन रामभद्रपरिभूता अपि पुनः परिभूयामहे ॥*** वे राम और प्रजा को शाप देना चाहते हैं, परन्तु अरुन्धती की प्रार्थना पर वे अपने क्रोध को रोक लेते हैं ।[3] वे लव में सीता के सभी गुणों को देखते हैं और आकृष्ट हो जाते हैं ।

लक्ष्मण

लक्ष्मण, राम के छोटे भाई और उनके सेवक हैं । प्रथम अङ्क में वह राम और सीता के विनोदार्थ चित्रवीथी के चित्र दिखाते हैं । वे राम के यह पूँछने पर ये चित्र कहाँ तक बने हैं ? उन्होंने अग्निशुद्धि तक बताकर राम और सीता की मनोव्यथा को उद्‌बुद्ध किया है । वे राम की प्राचीन घटनाओं पर प्रकाश डालते हैं और जब राम दुःखी होते हैं तब उन्हें धैर्य बँधाते हैं । राम के आदेशानुसार वे ही सीता को वन में छोड़ने जाते हैं । सप्तम अङ्क में वाल्मीकि के आश्रम में जब राम मूर्च्छित होते हैं तो वे ही राम को धैर्य बँधाते हैं । लक्ष्मण ही अन्त में निवेदन करते हैं कि सारा संसार सीता को निर्दोष मानता है और प्रणाम करता है । लक्ष्मण एक आदर्श भाई हैं । वे वीर, पराक्रमी और विनम्रता आदि गुणों से विभूषित हैं ।

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ४/९ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - ४/२ ।

३. *उत्तररामचरितम्* - ४/२४-२५ ।

कौशल्या

कौशल्या राम की माँ हैं । राम ने उनकी अनुपस्थिति में सीता का परित्याग किया है, अतः ऋष्यशृङ्ग के यज्ञ से लौटने पर वे कुद्ध होकर अयोध्या न जाकर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में जाती हैं । वहीं पर उनकी राजर्षि जनक से भेंट होती है । वे जनक के सामने जाने में संकोच करती हैं । वे सीता-परित्याग की घटना से अत्यन्त दुःखी हैं । वे लव को देखकर उसे सीता का पुत्र होने का अनुमान करती हैं । वे आदर्श और पतिव्रता नारी हैं ।

वासन्ती

वासन्ती दण्डकारण्य की वनदेवता है । वह राम को कठोर उलाहना देती है कि तुम्हें यश प्रिय है, परन्तु इससे घोर अपयश क्या हो सकता है? -

अयि कठोर! यशः किल ते प्रियं किमयशो ननु घोर मतः परम् ।

किमभवद् विपिने हरिणीदृशः कथय नाथ! कथं बत मन्यसे ? ॥

वह राम को दण्डकारण्य के विभिन्न दृश्यों को दिखाती है । वह दुःखी राम को धैर्य बँधाती है । इस प्रकार वह व्यवहार-कुशल, वाक्पटु और सहानुभूतिपूर्ण नारी है ।

तमसा

तमसा एक नदी देवी के रूप में रङ्गमञ्च पर आती है । अदृश्य सीता के साथ वह प्रारम्भ से अन्त तक रहती है । वही सीता से वार्तालाप करती है । और उनका मनोविनोद करती है । उसके कहने पर ही सीता मूर्च्छित राम को हाथों के स्पर्श से होश में लाती हैं । उसे मनोभावों का अतिसूक्ष्म ज्ञान है । उसने राम को देखने से उत्पन्न सीता के मनोभावों का मनोहारी चित्र उपस्थित किया है।[१] उत्तररामचरितम् का आधार श्लोक[२] उसके मुख से ही कहलाया है ।

---

१. ***तटस्थं नैराश्यादपि*** - उत्तररामचरितम्, ३-१३ ।

२. ***एको रसः करुण एव*** - वही, ३/४७ ।

अरुन्धती

अरुन्धती महर्षि वसिष्ठ की पत्नी हैं । वे शील, सदाचार, तपस्या एवं गुणों की प्रतिमूर्ति हैं । चतुर्थ अङ्क में वे कौशल्या के साथ राजर्षि जनक के पास जाती हैं । जहाँ जनक ने उषा-देवी से उनकी उपमा देकर उन्हें जगद्वन्द्या कहा है ।[१] वे ही सीता की पवित्रता और पूज्यता को घोषित करती हैं-

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा

विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्ति द्रढयति ।

शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ॥ ४/११ ।

वह नारी के गौरव को समझती हैं । उन्होंने ही कौशल्या आदि को सङ्केत किया है कि नाटक का अन्त सुखद होगा ।[२]

वाल्मीकि

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि रामायण के रचयिता हैं । उन्होंने ही माँ का दूध छोड़ने के बाद से कुश और लव का पालन-पोषण किया है । उन्होंने कुश-लव का यज्ञोपवीत संस्कार किया है और उन्हें वेद, शास्त्र, धनुर्वेद आदि की उच्चकोटि की शिक्षा दी है । वें बहुश्रुत, बहुविद्यापारंगत एवं अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि हैं । वे ब्रह्मज्ञ महर्षि हैं । *'मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः'*-इत्यादि श्लोक उनकी पहिचान का प्रतीक बन गया है ।

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ४/१० ।

२. *अरुन्धती-आश्वसिहि राज्ञि, बाष्पविश्रामोऽप्यन्तरेषु कर्तव्य एव। अन्यच्च किं न स्मरसि यदवोचदृष्यश्रृङ्गाश्रमे युष्माकं कुलगुरुर्भवितव्यं तथेत्युपजातमेव, किंतु कल्याणोदर्क भविष्यतीति ?*

- उत्तररामचरितम्- चतुर्थ अङ्क - वाक्य ५१ ।

महावीरचरितम् के प्रमुख पात्रों का चरित्राङ्कन

श्रीराम

महावीरचरितम् के श्रीराम धीरोदात्त[1] नायक हैं। उनके रूप में एक आकर्षण है,जो भी देखता है, उनकी ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता। उन्हें दूर से देखकर ही कुशध्वज उनके स्वाभाविक एवं पवित्र सौन्दर्य से प्रभावित हो गये थे। सीता भी प्रथम दर्शन में ही उनकी सौम्य आकृति पर मुग्ध हो गयी थीं। यहाँ तक कि शत्रु-पक्ष के परशुराम और बालि भी उनके रूप से प्रभावित होकर उन पर प्रहार करने में हिचकते हैं।[2] शूर्पणखा की हास्यास्पद दुर्दशा का कारण भी राम का असाधारण रूप-सौन्दर्य ही था। अप्रतिम रूप के समान ही उनके प्रभाव भी अलौकिक हैं जिसके तेज से ही अहिल्या का उद्धार हो गया। ब्राह्मणों के समूह पर आक्रमण करने वाली भयङ्कर राक्षसी ताटका का तथा यज्ञों में विघ्न डालने वाले सुबाहु का उन्होंने वध किया।

परशुराम द्वारा समस्त क्षत्रिय जाति के प्रति अपशब्दों का प्रयोग किये जाने पर भी उनका सहज सौजन्य उन्हें उनके चरण-स्पर्श के लिए प्रेरित करता है । अपने ही द्वारा परास्त किये गये जामदग्न्य से वे हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करते हैं क्योंकि उन्होंने *'वन्दनीय तपस्वी'* के विरुद्ध शस्त्र उठाने की धृष्टता की उनका यह कार्य उनके व्यक्तित्व की महानता को प्रकट करता है । जब परशुराम उनसे आलिङ्गन की इच्छा प्रकट करते हैं तब वे कहते हैं-'भगवन्! आलिङ्गन तो इस समय परिस्थिति के विरुद्ध होगा!' जामदग्न्य की दृष्टि राम के सौजन्य में छिपे हुए स्वाभिमान को परख लेती है । अपने स्वाभिमान को आघात पहुँचाने वाली कोई भी

---

१. *महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।*

स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः । - दशरूपकम् - २/४-५ ।

२. *महावीरचरितम्* - २/३७, ३८; तथा ५/४९ ।

बात राम को सहन नहीं । जब परशुराम उन्हें अपना दीप्त परशु दिखाते हैं तब वे बड़े धैर्य के साथ उस परशु का उपहास करते हैं, जिससे उनकी निर्भीकता, स्वाभिमान, दृढ़ता तथा आत्मविश्वास का परिचय मिलता है । जब वे परशुराम की आत्मश्लाघा का (जिसमें वे क्षत्रियों का संहार करने तथा गर्भस्थ बालकों को निकाल-निकाल कर काटने के पराक्रम का वर्णन करते हैं) यह कह कर उत्तर देते हैं-'नृशंसता तो पुरूष का दोष है; इसमें प्रशंसा की क्या बात है ?'[1]

राम सच्चे अर्थ में शूर हैं और स्त्री पर प्रहार करना शूरता नहीं । ताटका-वध के प्रस्ताव को सुनकर विश्वामित्र से कहते हैं - ***'भगवन्! स्त्री खल्वियम् ।'*** गुरु के प्रति राम के मन में असीम श्रद्धा है । लंका से अयोध्या लौटते समय गुरुवर कौशिक की चरण-रज से पवित्र तपोभूमि में वे विमान पर बैठकर जाना उचित नहीं समझते; गुरु का आदेश पाकर ही वे विमान द्वारा आगे बढ़ते हैं । अयोध्या पहुँचने पर भगवान् वशिष्ठ के दर्शन से उनका हृदय उल्लास से भर जाता है । उनकी मातृभक्ति भी असाधारण है । याचक के रूप में महाराज दशरथ के सम्मुख उपस्थित होकर वे अपनी माता कैकेयी के वरदानों की पूर्ति के लिए प्रार्थना करते हैं । उनका भ्रातृ-प्रेम भी कुछ कम नहीं है । युद्ध में लक्ष्मण के साथ तथा अयोध्या लौटने पर भरत के पुनर्मिलन की कल्पना से उनका हृदय आनन्द से भर गया और जब उन्होंने चरणों में गिरते हुए भरत को उठाकर आलिङ्गन किया । इस प्रकार महावीरचरितम् के राम उदात्त, धीर, गम्भीर आदि गुणों से युक्त हैं ।

दशरथ

दशरथ अयोध्या नरेश, राम के पिता हैं । उनमें असाधारण उदारता है । राम का अमङ्गल करने के लिए उद्यत परशुराम के प्राणों की रक्षा करने के लिए वे शतानन्द से उस समय प्रार्थना करते हैं जब शतानन्द शापोदक लेकर परशुराम को भस्म करने ही वाले थे । क्रोध

---

१. *राम:-'नृशंसता हि नाम पुरुष दोष: । तत्र का विकत्थना ।'*- महावीरचरितम्-भवभूति - ५७।

होने पर जब परशुराम प्रायश्चित करना चाहते हैं तब दशरथ कहते हैं - *'आप तो स्वभाव से ही पवित्र हैं, आपको अन्य शुद्धियों की आवश्यकता नहीं है । तीर्थों के जल और अग्नि की शुद्धि अन्य वस्तुओं से नही की जाती ।'* वाणी की उदारता के साथ ही उनकी शालीनता और विनम्रता भी सराहनीय है । वे परशुराम से कहते हैं-*'हमारे पुण्यों के परिपाक से आज आपके साथ हमारा समागम हुआ, जिसकी हम बहुत समय से उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे । हम आपकी क्या स्तुति करें, आपका तेज स्तुति का विषय नही बन सकता; आप को हम क्या दे सकते हैं, आप सम्पूर्ण पृथ्वी का दान कर चुके हैं; आप शान्त मुनि हैं, आपको परिजनों की भी आवश्यकता नही है, फिर भी आज अपने पुत्रों सहित यह दशरथ आपका दास है ।'*

शतानन्द

शतानन्द जनक के पुरोहित हैं । परशुराम उनके पूज्य अतिथि हैं और वे उनका सत्कार करना चाहते हैं, परन्तु परशुराम वहाँ आतिथ्य स्वीकार करने के लिए नहीं आये हैं अतः शतानन्द उनसे कहते हैं-*'तुमने हमारे कन्यान्तःपुर में सहसा प्रवेश कर मर्यादा का उल्लङ् घन किया है।'* परशुराम जब क्रोधावेश में राम का संहार करने की बात करते हैं तब शतानन्द अत्यन्त क्रुद्ध होकर गर्जना करते हैं-*'आः किसमें शक्ति है जो मेरे यजमान राजर्षि जनक की छाया भी छू सके, फिर जमाता के विषय में तो कहना ही क्या है ।'* शतानन्द चाहते है कि अपराधी को दण्ड मिलना ही चाहिए, परशुराम को ललकराते हुए कहते हैं-*'अरे दुष्ट, दुर्मुख, भृगुकुलकलङ्क! ये राजा लोग और ये गुरूजन, क्षमाशील होने के कारण, चाहे तुम्हें क्षमा कर दें परन्तु शतानन्द इस प्रकार तुम्हें क्षमा नही करेगा ।'* वे परशुराम को भस्म करने के लिए शापोदक अपने हाथ में ले लेते हैं, परन्तु ऐसी आवेगपूर्ण मनःस्थिति में भी वे महर्षि वशिष्ठ के आदेश का पालन करते हैं और चुपचाप वहाँ से चले जाते हैं । विश्वामित्र ने ठीक ही कहा है कि *'शतानन्द जैसा पुरोहित पाकर जनक कृतार्थ हुए हैं । वह राज्य कभी व्यवस्थित नहीं होता,*

उस पर कोई आपत्ति नहीं आती और न कभी वह जीर्ण होता है, जहाँ राष्ट्र की रक्षा करने वाला शतानन्द जैसा पुरोहित हो ।'

लक्ष्मण

लक्ष्मण के चरित्र-चित्रण का विस्तार इस नाटक में नहीं है परन्तु उनके दोषों का परिहार अवश्य कर दिया गया है । यहाँ न तो वे परशुराम के साथ वाद-विवाद में उलझते हैं और न भरत के लिए कटु उक्तियों का प्रयोग करते हैं । वे अत्यन्त साहसी और परमवीर हैं । उन्होंने अपने पराक्रम से असुरों पर सदैव विजय प्राप्त की है और राक्षसों का संहार करने में सदा राम का साथ दिया है । तापसी श्रमणा की रक्षा के लिए उन्होंने एक क्षण में ही कबन्ध राक्षस का वध कर डाला ।

लक्ष्मण की भ्रातृ-भक्ति असाधारण है । वे छाया के समान राम का अनुगमन करते हैं । सभी स्थानों पर वे राम के साथ हैं । राम के सुख में वे सुखी हैं और राम के दुःख में वे दुःखी। जृम्भकास्त्र की प्राप्ति और धनुर्भङ्ग के अवसरों पर वे अत्यन्त प्रसन्न हैं, परन्तु सीता-हरण के पश्चात् राम की दशा देखकर उन्हें अत्यन्त कष्ट होता है । वन-गमन के समय मिथिला में दशरथ और जनक को मूर्च्छित होते देखकर वे शीघ्र ही प्रस्थान करने के लिए राम से आग्रह करते हैं, जिससे उनकी कर्तव्यनिष्ठा के साथ ही व्यवहार-कुशलता भी व्यक्त होती है।

विश्वामित्र

महर्षि विश्वामित्र का स्थान, इस नाटक में अपेक्षाकृत अन्य ऋषियों से विशेष महत्त्व रखता है। राम और सीता का परिणय, राम को दिव्यास्त्रों का दान उन्हीं की महिमा है । वे तप और तेज के निधान हैं । वे शान्ति के निधान हैं ।

तदस्मिन् ब्रह्माद्यैस्त्रिदशगुरुभिर्नाथितशमे ।
तपस्तेजोधाम्नि स्वयमुपनतब्रह्मणिगुरौ ।। - १/११

महर्षि विश्वामित्र शम और दम के प्रतीक हैं । जिस समय परशुराम और दशरथ में उक्ति-प्रत्युक्ति हो रही है उस समय विश्वामित्र दशरथ के पक्ष का समर्थन करते हैं, और कहते है कि जानकर जो कुमार्गगामी होता है उसका दमयिता राजा है । लङ्का से लौटते समय जिस समय राम विश्वामित्र के आश्रम के पास पुष्पक विमान से उतरना चाहते हैं उस समय विश्वामित्र उनको विमान से उतरने के लिये इस कारण से रोकते हैं जिससे वे शीघ्र अयोध्या पहुंच जाय ।

राम के प्रति विश्वामित्र का हृदय इतना वात्सल्यपूर्ण है कि तपः स्वाध्याय में अत्यधिक व्यस्त होने पर वे राज्याभिषेक के अवसर पर स्वयं अयोध्या पहुँचते हैं और वशिष्ठ की अनुमति प्राप्त कर राम के अभिषेक का आदेश देते हैं । राम को अभिषिक्त देखकर उनका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया ।

जनक

जनक राजा होते हुए भी ऋषि हैं । वे उच्च कोटि के ब्रह्मज्ञ हैं । याज्ञवल्क्य से उन्होंने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है । परशुराम उनके ब्रह्मज्ञान की प्रशंसा करते हैं -

'स एव राजा जनको मनीषी

पुरोहितेनाङ्गिरसेन गुप्तः ।

आदित्यशिष्यः किल याज्ञवल्क्यो

यस्मै मुनिर्ब्रह्म परं विवव्रे ।।' - २/४३

क्रोध के आवेग में जब परशुराम अत्यन्त अशोभनीय अपशब्दों का प्रयोग लगातार करते रहते हैं तो जनक क्षमा और सहनशीलता को त्यागकर क्रुद्ध होकर धनुष चढ़ा लेते है । परशुराम उनका अपमान करें तो भी कोई बात नहीं; ब्राह्मण के कटु वचन भी उनके हृदय में क्रोध नहीं उत्पन्न कर सकते, परन्तु राम के अमङ्गल की बात वे कैसे सहन कर सकते हैं । जनक का यह क्रोध जो उस दशा में अनिवार्य था, उनका स्वभाव का अंश नहीं है । जैसे ही

परिस्थितियों में परिवर्तन होता है वे परशुराम के साथ विनम्रतापूर्वक व्यवहार करने लगते हैं । उनका यह आग्रह कि 'भगवन् ; यदि आप प्रसन्न हैं तो आसन ग्रहण कर हम लोगों को कृतार्थ करें ।

वशिष्ठ

महर्षि वशिष्ठ शान्त तथा तपस्वी हैं । जहाँ परशुराम के प्रति सभी लोग अपना रोष प्रकट करते हैं वहीं वशिष्ठ बिल्कुल शान्त रहते हैं । शतानन्द के द्वारा शापोदक लिये जाने पर वे उन्हें रोकते हैं । महर्षि वशिष्ठ का स्थान इस नाटक में सर्वोपरि है । वे ऋषि, राजा और प्रजा के पूज्य हैं । विश्वामित्र के हृदय में उनके लिए बड़ा सम्मान है । गौरवशाली सूर्यवंश का गौरव इसलिए और बढ़ गया है कि उसके गुरु वशिष्ठ हैं ।

रावण

महावीरचरितम् नाटक का ***प्रतिनायक***[1] रावण है । इस नाटक में उसे चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इसे उतना महत्व नहीं दिया गया है । उसके द्वारा किया गया सीता हरण भी उसकी स्वतंत्र बुद्धि का कार्य नहीं, बल्कि माल्यवान् की योजना का ही एक अङ्ग है । रावण की मदान्धता से उद्भूत स्वर और निरर्गल आचरण माल्यवान् की चिन्ता का विषय और उसके दुष्कर्म ही समस्त योजनाओं की विफलता का कारण हैं । रावण का स्वरूप सर्वथा निष्प्रभ और निस्तेज है । लङ्का को शत्रुओं ने घेर लिया है, अक्षयकुमार का वध हो चुका है, चारों ओर आग की लपटें फैल रही हैं और रावण कल्पना प्रासाद पर चढ़ कर अशोक-वाटिका की ओर दृष्टि लगाये हुए सीता के मुख की सुन्दरता की कल्पना में मग्न हैं । उसे अपनी शक्ति पर इतना विश्वास है कि वह एक नये ब्रह्माण्ड की रचना तथा अपने यश और प्रताप से सूर्य-चन्द्र को वश में रखने की क्षमता रखता है, परन्तु आलस्य वश वह ऐसा नहीं कर पाता है ।

---

१. *लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः* - दशरूपकम्, २/९ ।

सङ्कटापन्न स्थिति में विश्वविजयी महाराज रावण की असावधानता देखकर आश्चर्य होता है। मन्दोदरी द्वारा सचेत किये जाने पर भी उनकी बातों पर विचार करने को तैयार नहीं होता, अपितु उस विषय को हँसी में टाल देना चाहता है-*'हमारे शत्रु और उनका पक्ष और फिर उनका अभियोग ! यह तो कुछ नयी सी बात सुना रही हो तुम !'* इतना कहकर वह प्राचीन युद्धों में दिखाए गये अपने पराक्रम का अहङ्कार-पूर्ण वर्णन करने लगता है। राम और लक्ष्मण को वह केवल तपस्वी मानता है और यह कल्पना करता है कि उसके प्रताप का वर्णन सुनकर वे लौट गये होंगे । *'सागर पर सेतु का निर्माण किया जा रहा है'*, इस बात पर उसे विश्वास नहीं होता; उसे तो विश्वास है-अपने ही आत्मज्ञान, धैर्य, यश, बल और साहस पर । भयभीत होकर मन्दोदरी जब रावण से कहती है - *'महाराज ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए'*, तब यह *'देवि! डरो मत'* कहकर उसे समझा देता है और सेनापति से, जो सङ्कटकालीन स्थिति में महाराज से उचित निर्देश प्राप्त करने के लिए उपस्थित हुआ है, पूछता है - *'सेनापति! यह कलकल क्यों हो रहा है?'* कितनी विस्मयकारिणी है रावण की यह अनभिज्ञता ।

माल्यवान्

माल्यवान् प्रतिनायक के सहायक के रूप में आता है । नायक के विरोधी पात्रों में माल्यवान् का चरित्र विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है । यद्यपि उसे अपनी इच्छानुसार सभी षड्यन्त्रों में सफलता नहीं मिलती और अनेक बार उसे अपनी योजनाओं के विपरीत परिणाम देखने पड़ते है; फिर भी वह निराश नहीं होता और नयी-नयी योजनाओं का सृजन करता रहता है । ताटका और सुबाहु के साथ अनेक राक्षसों का वध, मुनि द्वारा दिव्यास्त्र-दान तथा देवताओं की राम के प्रति आसक्ति आदि समाचार उसके चिन्ता को बढ़ा देते हैं । वह राम को जन्म से ही अद्भुत प्राणी मानता है । धर्मद्रोही राक्षसों के साथ धर्म के रक्षक राम का विरोध स्वाभाविक है, अतः माल्यवान् को अब एक सशक्त शत्रु का सामना करना है ।

परशुराम शिव के परम प्रिय शिष्य हैं और राम ने शिव-धनुष तोड़कर उनके गुरु का अनादर किया है- इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए माल्यवान् तुरन्त एक युक्ति सोच लेता है। वह परशुराम को राम के विरुद्ध उत्तेजित करने का निश्चय करता है, और यह काम दूत भेज कर नहीं किया जा सकता । अतः परशुराम से मिलने के लिए वह स्वयं महेन्द्र द्वीप की ओर प्रस्थान करता है तथा उन्हें इतना उत्तेजित कर देता है कि वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर राम को खोजते हुए जनक के कन्यान्तःपुर में पहुँच जाते हैं । माल्यवान् की योजना विफल हो गयी, परशुराम पराजित हुए । परन्तु माल्यवान् निराश नहीं हुआ, उसे अभी दूतों ने बताया है कि अयोध्या से मन्थरा कैकेयी का सन्देश लेकर मिथिला पहुँच रही है । वह शूर्पणखा को मन्थरा के शरीर में प्रविष्ट होने का आदेश देता है और यह भी बता देता है कि रानी की ओर से राजा दशरथ को क्या सन्देश देना है ।

एक कुशल राजनीतिज्ञ के समान चारों उपायों पर पूर्णतया विचार करने के पश्चात् हीं माल्यवान् ने सीताहरण की छद्म योजना बनायी है । परन्तु वह यहीं तक सोचकर नहीं रह जाता, वह दूरदर्शी है, बहुत आगे तक की बातों को सोच लेता है । यदि खर, दूषण आदि राम को न मार सके तब भी स्त्री-हरण के दुःख से व्याकुल होकर वह लज्जा के कारण आत्म-हत्या कर लेंगे ।

माल्यवान् के चरित्र का दूसरा पक्ष उस समय सामने आता है जब वह रावण के हित में खर-दूषणादि के संहार को भी वह अभीष्ट मानता है क्योंकि वह रावण का अमात्य है । रावणवध के बाद, जीवन के अन्तिम क्षणों में वह अनुज, पुत्र तथा अन्य सहयोगियों को राम की सेवा में नियुक्त कर अपने पाप का प्रायश्चित कर लेता है ।

---

१ *महावीरचरितम्* - ४/३ ।

मालतीमाधवम् के प्रमुख पात्रों का चरित्राङ्कन

माधव

मालतीमाधवम् भवभूति का एक प्रकरण है । 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार प्रकरण का नायक धीरप्रशान्त[1] होता है । माधव में उन सभी गुणों का समावेश है जो धीरप्रशान्त नायक में आवश्यक है । वह विदर्भराज के मन्त्री देवरात का पुत्र है । उसमें कामदेव के समान अद्वितीय आकर्षण विद्यमान है । यही कारण है कि मालती नगर के राजमार्ग पर पर्यटन करते हुए माधव के प्रति आकृष्ट हो जाती है । स्वयं कामन्दकी ने भी माधव के सौन्दर्य की प्रशंसा की है ।[2] माधव रूपवान् होने के साथ-साथ गुणवान् भी है । मालती की सखी लवङ्गिका माधव के गुणों की प्रशंसा अनेक बार मालती के सम्मुख करती है । न्यायशास्त्र के अध्ययन हेतु कुण्डिनपुर से पद्मावती आये हुए माधव ने इन्हीं गुणों के कारण कामन्दकी का भी विशेष वात्सल्यपूर्ण स्नेह अर्जित किया है ।

'सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतन' मालती को देखकर माधव आकर्षित हो जाता है । वह अपने अन्तरङ्ग मित्र मकरन्द के सम्मुख मालती के सौन्दर्य का भावपूर्ण वर्णन करता है । यहाँ माधव की भावुकता अतिशय उदार होकर कल्पना के सहयोग से मालती के अनुपम सौन्दर्य में निमग्न हो जाती है । माधव चित्रकला में प्रवीण है । मालती द्वारा निर्मित अपना चित्र देखकर वह भी मालती के असीम सौन्दर्य को रेखाओं में बाँध लेता है और अपने हृदय की अनिर्वचनीय भावना को एक पद्य में अभिव्यक्ति कर, चित्र के नीचे लिख देता है । हृदय की तीव्रतम

---

१. *सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः* - दशरूपकम् - २/४ ।

२. *मालतीमाधवम्* -३/४ ।

अनुभूतियाँ ही वाग्वैदग्ध्य का सृजन करती हैं । माधव का हृदय एक सच्चे प्रेमी का हृदय है जिसमें मालती के प्रति एकनिष्ठ प्रेम की भावना विद्यमान है । जहाँ एक ओर माधव का अन्तःकरण कामन्दकी के प्रति विश्वास की छाया में प्रफुल्लित हो जाता है, वहीं दूसरी ओर वह एक निराश प्रेमी के रूप में नियतिवादी होकर कामोन्माद की स्थिति में प्रविष्ट हो जाता है । अतः वह कामाचार के अनुसार श्मशान में पिशाचों को महामांस के विक्रय में अपनी आशा पूर्ण होने की सम्भावना को दृढ़तापूर्वक ग्रहण कर उसी के अनुसार कार्य करने लगता है । और अन्त में नगर-रक्षकों के साथ हुए विकट युद्ध में माधव की शूरता से अत्यन्त प्रभावित होकर पद्मावती नरेश ने उसके समस्त अपराधों को क्षमा करते हुए अभय-दान दे दिया । इस प्रकार माधव धीरप्रशान्त नायक के गुणों से युक्त हैं ।

मालती

मालती मुग्धा नायिका[1] हैं । वह पद्मावतीनरेश के मंत्री भूरिवसु की कन्या है । उच्चकुल में उत्पन्न होने के कारण शील और सौजन्य उसके स्वाभाविक गुण हैं । अपने माता-पिता के गौरव की रक्षा हेतु वह प्रेम तथा प्राणों की बलि देने के लिए तत्पर है । इस आदर्श-कन्या का सौन्दर्य भी अनुपमेय है । *'सरसकदलीगर्भसुभगा'* मालती के अनिन्द्य सौन्दर्य का वर्णन माधव ने ही नहीं, कामन्दकी ने भी अत्यन्त रुचि से अनेक बार किया है ।

रूप और यौवन से सम्पन्न मालती का सुकुमार हृदय कामदेव के समान प्रतीत होने वाले माधव को देखकर उसके प्रति अनुरक्त हो गया है । प्रगाढ़ उत्कण्ठा ने मालती के हृदय को आन्दोलित कर दिया और उसकी अङ्गलतिका *'परिमृदितमृणाली'* के सदृश म्लान हो गयी। मदनोद्यान में माधव को समीप देखने का अवसर उसे प्राप्त हुआ । अपनी स्वाभाविक लज्जाशीलता के कारण वह हृदय के भावों को शब्दों से व्यक्त नहीं कर सकती थी, अतः

---

१. *मुग्धा नववयःकामा रतौ वामा मृदुः क्रुद्धि* - दशरूपकम्, २/१६ ।

केवल नेत्रों द्वारा ही अपने प्रेम को अभिव्यक्त कर दिया । मालती की यह प्रेम पूर्ण दृष्टि माधव के हृदय पर गहरा प्रभाव छोड़ने के लिए पर्याप्त थी ।

माधव की वियोगव्यथा से मालती अस्वस्थ हो जाती है । अपने मनोविनोद के लिए वह माधव का चित्र बनाती है । प्रियतम द्वारा निर्मित अपने चित्र को देखकर तथा उसके नीचे लिखा हुआ सन्देश पढ़कर उसे असीम आनन्द प्राप्त होता है । जब लवङ्गिका कहती है - *'जिसके लिए तुम इतनी व्यथित हो रही हो उसको भी भगवान् कामदेव ने सन्ताप की असह्यता का अनुभव करा दिया है'*, तब वह उत्तर देती है - *'सखि! वे कुशलपूर्वक रहें । मुझे तो अब आश्वासन दुर्लभ है । क्योंकि मेरा मनोराग तीव्र विष के समान फैला जा रहा है । मेरे सभी अङ्ग अग्नि में जल रहे हैं । मेरी रक्षा करने में न माता समर्थ है, न पिता और न तुम ।'*

तीव्र अनुराग से उत्पन्न असह्य वेदना को मालती स्पष्ट कर देती है कि उसे अपने माता-पिता तथा कुल की प्रतिष्ठा अपने प्रियतम तथा अपने प्राणों से अधिक प्रिय है । यही कारण है कि वह अपने प्रेम को लवङ्गिका के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति के सम्मुख प्रकट नहीं होने देना चाहती । कामन्दकी के आगमन का समाचार सुनकर वह माधव के चित्र को छिपा लेती है । कामन्दकी स्वयं भी जानती है कि मालती किसी भी दशा में कुल-कन्या के आदर्श के विरुद्ध किसी प्रकार का आचरण करने के लिए तैयार नहीं होगी । इसीलिए वह *'कपटनाटक'* का आश्रय लेकर मालती के हृदय में नन्दन के प्रति घृणा तथा भूरिवसु के प्रति रोष उत्पन्न करने का प्रयास करती है; और शकुन्तला, उर्वशी एवं वासवदत्ता के आख्यानों की ओर संकेत कर मालती को साहसपूर्ण कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है । वह माधव का परिचय पाने के लिए मालती के मन में उत्सुकता जागृत कर उसका विस्तारपूर्वक परिचय देती है जिससे मालती के हृदय में माधव को पुनः देखने की तीव्र इच्छा होती है । माधव के प्रति कामन्दकी के अतिशय स्नेह का ज्ञान होने पर मालती को उसके सान्निध्य में अधिक आनन्द का अनुभव होने

लगता है । एकान्त में कामन्दकी की बातें सुनकर उसे प्रसन्नता होती है। जब वह जाने लगती है तब मालती उसे रोकती है और बार-बार शपथ देकर शीघ्र ही लौटने का अनुरोध करती है ।

मालती का चरित्र जहाँ एक ओर भारतीय कन्या का आदर्शरूप प्रस्तुत करता है, वही दूसरी ओर वह मुग्धा प्रेमिका के रूप में भी आदर्श है । प्रेम की तीव्रता के कारण प्रियतम का वियोग उसे असह्य हो गया है । चन्द्रमा की शीतल किरणें उसे ज्वालाओं के समान प्रतीत होती है । कामदेव उसे जला रहा है । इस प्रकार वियोग की असह्य वेदनाओं को सहन करते हुए भी वह सदा अपने प्रियतम के सुख की कामना करती है । जब कामन्दकी विरह-व्यथा की तीव्रता के कारण माधव के जीवन के प्रति आशङ्का व्यक्त करती है तब मालती भयभीत हो उठती है । माधव द्वारा महामांस विक्रय का कारण बताये जाने पर उसे यह सोचकर खेद होता है कि उसी के कारण उसके प्रियतम को इस प्रकार अपने जीवन से निरपेक्ष होकर श्मशान के भयावह वातावरण में परिभ्रमण करना पड़ रहा है । नगर-देवता के मन्दिर में वह लवङ्गिका से आग्रहपूर्वक निवेदन करती है - *'प्रिय सखि ! मेरे मरण के उपरान्त तुम सदैव ऐसा प्रयत्न करती रहना जिससे मेरे प्रियतम मेरा स्मरण कर व्यथित न हों और मेरे कारण अपनी लोक यात्रा को शिथिल न कर दें ।'*

माधव के प्रति मालती का अतिशय प्रेम किसी भी अवस्था में शालीनता की सीमा का उल्लङ्घन नहीं करता । नगर-देवता के मन्दिर में वह लवङ्गिका के धोखे से माधव का आलिङ्गन कर लेती है परन्तु जैसे ही उसे सही स्थिति का ज्ञान होता है वह सहसा पीछे हट जाती है और भय से काँपने लगती है ।

कामन्दकी

कामन्दकी 'मालतीमाधवम्' की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र है । वह चीरचीवरधारिणी परिव्राजिका होते हुए भी अपने मित्र भूरिवसु तथा देवरात की पूर्व-प्रतिज्ञा को कार्यान्वित करने के

लिए कटिबद्ध है । मित्रों की इच्छा को पूर्ण करने के उद्देश्य से वह अपने धर्म के विरुद्ध आचरण करने को तत्पर हो जाती है और दूती का कार्यभार कुशलता पूर्वक वहन करती है । मालती और माधव को प्रेम-सूत्र में बाँधने के लिए वह अनेक प्रकार की योजनाओं का निर्माण करती है । मालती के भवन के समीप से माधव का बार-बार निकलना तथा मदनोद्यान में माधव और मालती के प्रथम मिलन की परिस्थिति का निर्माण कामन्दकी की योजना के ही अङ्ग हैं । वह उचित अवसर पर मालती के सम्मुख माधव का श्लाघात्मक परिचय देती है तथा उर्वशी, शकुन्तलादि के आख्यान द्वारा मालती को पिता की अनुमति के बिना माधव के साथ विवाह करने का साहसिक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है । वह अपनी वाणी के प्रभाव से मालती के हृदय में अपने पिता के प्रति (जिन्होंने नन्दन जैसे अयोग्य वर के साथ उसका विवाह करना स्वीकार कर लिया था) विरक्ति का भाव उत्पन्न कर देती है ।

कामन्दकी की सबसे बड़ी नीतिगत सफलता है-मालतीवेशधारी मकरन्द का नन्दन से विवाह । इस साहसपूर्ण योजना द्वारा वह न केवल मालती को नन्दन के जाल से मुक्त कर माधव के साथ उसके विवाह के लिए वातावरण तैयार करती है, अपितु मकरन्द के साथ मदयन्तिका के पलायन की परिस्थिति का भी निर्माण कर देती है । कामन्दकी में शास्त्रीय ज्ञान तथा व्यवहारकुशलता का समुचित समन्वय होने के कारण उसकी युक्तियाँ कभी विफल नहीं होती है । वह सभी परिस्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन कर लेने के पश्चात् बुद्धिपूर्वक विचारकर अपना मार्ग निर्धारित करती है और समस्त बाधाओं को नष्ट करने के लिए चारों ओर से प्रबन्ध कर लेती है । मालती का अपहरण होने पर वह अनुमान कर लेती है कि यह दुष्कर्म अघोरघण्ट द्वारा किया गया है । इसलिए वह कराला के मन्दिर के चारों ओर से घेर लेने का आदेश देती है । संन्यासिनी होते हुए भी कामन्दकी के हृदय में मालती के प्रति माता से अधिक स्नेह है। इसी वात्सल्य के कारण वह मालती के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए सतत् प्रयत्नशील है।

नन्दन के साथ मालती के विवाह की बात निश्चित हो जाने पर जब मालती और माधव हताश हो जाते हैं तब वह उन्हें स्नेहपूर्वक सान्त्वना देती है । वह स्वयं अपने विहार में मालती और माधव के विवाह का प्रबन्ध करती है । जब कपालकुण्डला द्वारा मालती का हरण होने पर उसका कहीं पता नहीं चलता तब वह मालती के वियोग में अपने प्राणों का परित्याग करने के लिए उद्यत हो जाती है ।

अमात्य भूरिवसु, इच्छा होते हुए भी जिस कार्य को पूर्ण करने में असमर्थ रहे उसी को कामन्दकी ने अपनी कार्य-कुशलता द्वारा इतने अच्छे ढङ्ग से सम्पादित किया कि राजा और नन्दन, जो कार्य में बाधक बनकर सामने आये थे, अन्त में उसी का अनुमोदन करने लगे । इस प्रकार सभी घटनाओं का सफलतापूर्ण सञ्चालन करके अपने उदात्त चरित्र का परिचय देती है।

मकरन्द

मकरन्द माधव का मित्र और मालतीमाधवम् प्रकरण का पताकानायक[१] है । वह माधव के साथ अध्ययन के लिए पद्मावती आया है । वह सुख-दुःख में सच्चे हृदय से माधव का साथ देता है । उसका शारीरिक गठन सुन्दर तथा व्यक्तित्व आकर्षक है । विद्वान् और बुद्धिमान् होने के साथ ही वह व्यवहारकुशल भी है ।

मकरन्द साहसी और पराक्रमी है । व्याघ्र द्वारा मदयन्तिका की रक्षा के लिए वह अपने प्राणों की चिन्ता न करते हुए साहस के साथ उससे युद्ध करता है, जिसमें वह स्वयं क्षत-विक्षत हो जाता है परन्तु मदयन्तिका पर सिंह का आक्रमण नहीं होने देता । उस समय तक वह मदयन्तिका को पहचानता भी नहीं था । उसकी परोपकार-वृत्ति तथा परदुःखकातरता ने ही उसे ऐसे साहसिक कृत्य के लिए प्रेरित किया था । नन्दन के भवन से कामन्दकी के विहार की ओर

---

१. *पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः ।*

तस्यैवानुचरो भक्तः किञ्चिदूनश्च तद्गुणैः ॥ - दशरूपकम्, २/८ ।

जाते समय जब रात्रि के अन्धकार में नगर-रक्षकों का दल उसे घेर लेता है तब वह निर्भयतापूर्वक उन सब सशत्र सैनिकों के साथ अकेले ही युद्ध करने लगता है । माधव भी मकरन्द के पराक्रम और सामर्थ्य से पूर्णतया परिचित है, इसीलिए वह मदयन्तिका को आश्वस्त करते हुए कहता है- *'यदि वह अकेला ही इतने लोगों के साथ युद्ध कर रहा है तो यह उसके लिए साधारण सी बात है ।'* मकरन्द आदर्श मित्र है । माधव के हित में अत्यन्त दुष्कर कार्य भी वह प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेता है । मालती के वेश में मकरन्द ने असाधारण साहस, बुद्धिमता एवं कार्य - कुशलता का परिचय दिया है । मदयन्तिका तथा उसकी सखियों के बीच भी एक कुशल अभिनेता के समान वह मालती की भूमिका का निर्वाह करता है । जब मालती के वियोग में माधव विक्षिप्त-सा होकर वनों में विचरण करता है तब छाया की भाँति उसके साथ मकरन्द हमेशा रहता है और उसे अनेक प्रकार से सान्त्वना देने का प्रयास करता है ।

सौदामिनी

सौदामिनी कामन्दकी की शिष्या है । उसने मन्त्रसिद्धि द्वारा आश्चर्यजनक प्रभाव अर्जित कर लिया है परन्तु रङ्गमञ्च पर उसका प्रवेश अन्त में होता है । यद्यपि वह बहुत थोड़े समय के लिए प्रकरण में उपस्थित होती है, फिर भी उसका कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है । कपालकुण्डला द्वारा अपहृत होने पर जब मालती कामन्दकी की पहुँच से बाहर हो जाती है तब सौदामिनी ही अपनी अद्भुत शक्ति से उसकी रक्षा करती है और माधव के साथ उसका मिलन कराती है । इस प्रकार उसका चरित्र अन्य सहायक पात्रों की तुलना में अधिक सराहनीय है ।

मदयन्तिका

मदयन्तिका अमात्य नन्दन की बहन तथा प्रकरण की नायिका मालती की प्रिय सखी है। वह रूप और यौवन से सम्पन्न है । कामन्दकी द्वारा नियुक्त बुद्धरक्षिता समय-समय पर मदयन्तिका के सम्मुख मकरन्द के गुणों की प्रशंसा करती है जिसे सुनकर मकरन्द के प्रति उसके

मन में अनुराग उत्पन्न हो जाता है और उसे देखने की तीव्र इच्छा जागृत हो जाती है । उस पर आक्रमण करते हुए सिंह को रोकने के प्रयास में जब मकरन्द क्षत-विक्षत होकर मूर्च्छित हो जाता है तब मदयन्तिका अपने अञ्चल से हवा करके उसकी मूर्च्छा को दूर करती है । उसी समय उसके साथ माधव को देखकर बुद्धरक्षिता बताती है कि *'यह वही है !'* इस अवसर पर ही मदयन्तिका माधव को पहली बार देखती है और उसके प्रति मालती के अनुराग पर सन्तोष व्यक्त करती है । कुछ ही क्षणों में उसे विदित होता है कि महाराज की कृपा से मालती का विवाह उसके भाई नन्दन के साथ निश्चित हो गया है । इस समाचार से उसे प्रसन्नता होती है । यह जानते हुए भी कि मालती माधव को प्रेम करती है, नन्दन के साथ उसके विवाह की कल्पना से मदयन्तिका सम्भवतः इसलिए प्रसन्न हो रही है कि उसे जीवन भर अपनी प्रियसखी के साथ रहने का अवसर प्राप्त होगा । इस प्रकार उसके प्रति मदयन्तिका का यह प्रेम अति सराहनीय है।

नन्दन

मालतीमाधवम् में नन्दन प्रतिनायक के रूप में अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण प्रकरण में आदि से अन्त तक बना रहता है । प्रथम अङ्क से ही मालूम हो जाता है कि नन्दन मालती से विवाह करने में राजा की सहायता ले रहा है । यही कारण है कि भूरिवसु और देवरात की इच्छा होने पर भी मालती और माधव का विवाह सामान्य रीति से सम्भव नहीं है । वह जानता है कि अमात्य भूरिवसु राजा की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकेंगे । उसे अपनी अयोग्यता से भय है कि भूरिवसु से मालती के विषय में स्वयं बात करने पर उसे केवल भर्त्सना ही प्राप्त होगी । नन्दन की कूटनीति से राजा की इच्छानुसार भूरिवसु को अपनी कन्या का विवाह उसके साथ करने के लिए बाध्य होना पड़ता है । पुनः वह मालती वेश में मकरन्द का [illegible] करता है तथा उसके दुर्व्यवहार से रुष्ट होकर जीवन भर उसके साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखने की

प्रतिज्ञा करता है । अन्ततः परिस्थिति विपरीत होने पर वह मालती और मदयन्तिका के विवाह माधव और मकरन्द के साथ करने के लिए दी गयी राजा की अनुमति का अनुमोदन करता है ।

अन्य पात्रों में अवलोकिता कामन्दकी की शिष्या है । लवङ्गिका मालती की प्रियसखी है और बुद्धरक्षिता मदयन्तिका की प्रियसखी । कापालिकों में अघोरघण्ट और उसकी शिष्या कपालकुण्डला है । अघोरघण्ट को प्रतिनायक का पद प्राप्त नहीं होता क्योंकि उसका उद्देश्य मालती के उपहार द्वारा देवी कराला को प्रसन्न करना है । वह नायक की फलप्राप्ति में बाधक होता है अतः उसकी गणना नायक के विरोधी पात्रों में की जा सकती है । विरोधी पात्रों में कपालकुण्डला का स्थान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि उसने राजा की स्वीकृति मिल जाने पर भी मालती का अपहरण कर माधव की फल-प्राप्ति में बाधा उपस्थित कर दी थी । इस प्रकार भवभूति ने मूलपात्रों के अतिरिक्त काल्पनिक पात्रों के द्वारा अपने रूपकत्रय में स्वतन्त्र चरित्र की विशिष्टता दर्शायी है ।

अध्याय - ५

रसाभिव्यक्ति

रस - स्वरूप और सिद्धान्त

दृश्यकाव्य के तीन भेदकों में अन्तिम भेद रस है । रस की व्यञ्जना करना, सामाजिकों के हृदय में रसोद्वेग उत्पन्न करना दृश्यकाव्य का प्रमुख लक्ष्य है । 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता आचार्य भरत के अनुसार विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है – *विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।*[१]

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट के अनुसार, लोक में रत्यादि आदि रूप स्थायिभाव के जो कारण, कार्य एवं सहकारी होते हैं, वे यदि नाटक या काव्य में प्रयुक्त होते हैं तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव कहलाते हैं विभाव आदि से व्यक्त वह रत्यादि स्थायी भाव 'रस' कहलाता है ।[२] इनमें से रति आदि के कारण का नाम 'विभाव' है । रति आदि के कारण दो प्रकार के होते हैं - एक आलम्बन रूप और दूसरा उद्दीपन रूप । सीता, राम आदि एक दूसरे की प्रीति के आलम्बन रूप कारण होते हैं, क्योंकि सीता को देखकर राम के मन में और राम को देखकर सीता के मन में रति की उत्पत्ति होती है । इस रति को उत्पन्न करने वाले तत्त्व चाँदनी, उद्यान, नदीतीर आदि उद्दीपन विभाव कहलाते हैं, क्योंकि वे पूर्वोत्पन्न रति आदि को उद्दीप्त करने वाले हैं । इस प्रकार आलम्बन और उद्दीपन दोनों मिलकर स्थायिभाव को व्यक्त करते हैं ।

रस की प्रक्रिया में विभाव के दो भेद - आलम्बन और उद्दीपन रस के बाह्य कारण है। रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण ***स्थायिभाव*** है । स्थायिभाव मन के अन्दर रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री को प्राप्त कर

---

१. *नाट्यशास्त्र* - आचार्य भरत ।

२. *काव्यप्रकाश* - आचार्यमम्मट ।

अभिव्यक्त हो उठता है और हृदय में एक अपूर्व आनन्द का सञ्चार कर देता है । इस स्थायिभाव की अभिव्यक्ति ही रसास्वादजनक होने से रस शब्द से व्यक्त होती है । इसलिए *'व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः'* कहा गया है । अर्थात् इन विभाव, अनुभाव तथा व्याभिचारिभावों के संयोग से व्यक्त होने वाले स्थायिभाव रस कहलाता है।[१] व्यावहारिक दशा में मनुष्य को जिस-जिस प्रकार की अनुभूति होती है वे आठ प्रकार के स्थायिभाव साहित्यशास्त्र में माने गये हैं । काव्यप्रकाशकार ने उनकी गणना इस प्रकार की है -

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।

जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः ॥[२]

अर्थात् रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा या घृणा और विस्मय, ये आठ स्थायिभाव कहलाते हैं । इसके अतिरिक्त निर्वेद भी नौवाँ स्थायिभाव माना गया है-

निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः[३]

इस प्रकार नौ स्थायिभाव और उनके अनुसार ही शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ रस माने गये हैं ।

रसानुभूति के कारणों को ***विभाव*** कहते हैं । वे दो प्रकार होते हैं - आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव । जिसको आलम्बन करके रस की उत्पत्ति होती है, उसे आलम्बन विभाव कहते हैं । जैसे-सीता को देखकर राम के मन में और राम को देखकर सीता के मन में रति की उत्पत्ति होती है । और उन दोनों को देखकर सामाजिक को रसानुभूति होती है । ये सीता, राम आदि शृङ्गार रस के 'आलम्बन विभाव' कहलाते हैं । चाँदनी, उद्यान, एकान्त स्थान आदि के

---

१. ***काव्यप्रकाश*** - आचार्य विश्वेश्वर टीका, पृष्ठ - ९५ ।

२. ***काव्यप्रकाश*** - सूत्र ४५/३० ।

३. ***काव्यप्रकाश*** - सूत्र ४६ ।

द्वारा उस रति का उद्दीपन होता है, अतः ये उद्दीपन विभाव कहलाते हैं । प्रत्येक रस के आलम्बन तथा उद्दीपन-विभाव अलग-अलग होते हैं ।

'स्थायिभाव' रसानुभूति का प्रयोजक अन्तरङ्ग या आभ्यन्तर कारण है । आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव उसके बाह्य कारण हैं, अनुभाव तथा व्याभिचारी भाव उस आन्तर रसानुभूति से उत्पन्न, उसकी बाह्यभिव्यक्ति के प्रयोजक शारीरिक तथा मानसिक व्यापार हैं । इनको रस का कारण, कार्य तथा सहकारी कहा जाता है । अपने-अपने आलम्बन या उद्दीपन कारणों से, सीता-राम के भीतर उद्बुध रति आदि रूप स्थायिभाव को बाह्य रूप में जो प्रकाशित करता है । वह रत्यादि का कार्यरूप काव्य और नाट्य में ***अनुभाव*** के नाम से कहा जाता है ।[१] जो वाचिक या आङ्गिक अभिनय के द्वारा रत्यादि स्थायिभाव की आन्तर अभिव्यक्ति रूप अर्थ का बाह्य रूप में अनुभव कराता है उसको 'अनुभाव' कहते हैं ।[२]

उद्बुद्ध हुए इन स्थायिभावों की पुष्टि तथा उपचय में जो उनके सहकारी होते हैं । अर्थात् जो रसों में नानारूप से विचरण करते हैं और रसों को पुष्ट कर अस्वाद के योग्य बनाते हैं उनको ***व्यभिचारिभाव*** कहते हैं ।[३]

रस निष्पत्ति का सर्वप्रथम उल्लेख भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है – विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है ।[४] भरतमुनि के रस सूत्र में आये हुए 'निष्पत्ति' तथा 'संयोग' पदों को लेकर उत्तरवर्ती आचार्यो ने इसके चार अर्थ किये हैं - 'भट्टलोल्लट' निष्पत्ति का अर्थ 'उत्पत्ति' तथा संयोग पद का अर्थ 'उत्पाद्य-उत्पादक भाव' करते

१. ***साहित्यदर्पण*** - आचार्य विश्वनाथ, ३/१३२ ।

२. ***नाट्यशास्त्र*** - आचार्य भरत, ७,५ ।

३. ***काव्यप्रकाश*** - आचार्य विश्वेश्वर टीका - पृष्ठ ९९ ।

४. *विभानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः* - नाट्यशास्त्र ।

हैं । 'श्रीशङ्कुक' 'निष्पत्ति' का अर्थ अनुमिति तथा 'संयोग' पद का अर्थ अनुमेय-अनुमापक भाव करते हैं । 'भट्टनायक' 'निष्पत्ति' का अर्थ 'भुक्ति' तथा 'संयोग' के अर्थ 'भाव्य-भावक भाव' कहते हैं । इसी प्रकार 'आचार्य अभिनवगुप्त' 'निष्पत्ति' का अर्थ 'अभिव्यक्ति' तथा 'संयोग' पद का अर्थ 'व्यङ्ग्य-व्यञ्जक भाव' लेते हैं ।

भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद

भरतसूत्र के व्याख्याकारों में मीमांसक भट्टलोल्लट 'उत्पत्तिवाद' के समर्थक हैं । उनके मत में विभाव, अनुभाव आदि के संयोग से अनुकार्य राम आदि में इसकी उत्पत्ति होती है। अतः स्थायिभाव के साथ विभावों का संयोग होने पर उत्पाद्य-उत्पादकभाव, अनुभावों के साथ संयोग होने पर गम्य-गमकभाव और व्यभिचारी भावों के साथ संयोग होने पर पोष्य-पोषकभाव सम्बन्ध होता है । इसीलिए इन्होंने जनितः, प्रतीतियोग्यः कृतः तथा उपचितः शब्दों का प्रयोग किया -

'विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः, अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः। व्यभिचारिभिर्निर्वेदादिभिः सहकारिभिरुपचितो मुख्यया वृत्त्या रामादावनुकार्ये, तद्रूपतानुसन्धानान्नर्त्तकेऽपि प्रतीयमानो रस इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः ।'

भट्टलोल्लट की इस व्याख्या में सबसे बड़ी कमी यह प्रतीत होती है कि उसमें मुख्यरूप से अनुकार्य तथा गौणरूप से नट में तो रस की उत्पत्ति, अभिव्यक्ति और पुष्टि आदि मानी गयी है, परन्तु सामाजिक को रसानुभूति क्यों होती है, इस समस्या पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है । दूसरी बात यह है कि अनुकार्य सीता-राम आदि तो अब इस जगत् में हैं नहीं । अतः इस समय किये जाने वाले अभिनय से उनमें रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती है । यही इस व्याख्या के दो मुख्य दोष हैं ।[1]

---

१. *काव्यप्रकाश* - आचार्य विश्वेश्वर टीका - पृष्ठ १०२ ।

श्रीशङ्कुक का अनुमितिवाद

न्याय-मतानुयायी श्रीशङ्कुक ने सामाजिक के साथ रस का सम्बन्ध दिखलाने का प्रयत्न किया है । इसमें नट कृत्रिमरूप से अनुभाव आदि का प्रकाशन करता है परन्तु उनके सौन्दर्य के बल से उनमें वास्तविकता-सी प्रतीत होती है । उन कृत्रिम अनुभाव आदि को देखकर सामाजिक नट में वस्तुतः विद्यमान न होने पर भी, उसमें रस का अनुमान कर लेता है और अपनी वासना के वशीभूत होकर उस अनुमीयमान रस का आस्वादन करता है ।

श्रीशङ्कुक ने नट में रस को अनुमेय माना है । नट में चित्रतुरग-न्याय से रस की अनुमिति होती है । जैसे घोड़े के चित्र को देखकर 'यह घोड़ा है' इस प्रकार का व्यवहार होता है, परन्तु इस प्रतीति को न सत्य, न मिथ्या, न संशय और न ही सादृश्य प्रतीति रूप ही माना जा सकता है । चित्रस्थ-तुरग में होने वाली बुद्धि इन चारों प्रकार की कोटियों से भिन्न होती है । इसी प्रकार जो नट में राम बुद्धि होती है वह सम्यक्, मिथ्या, संशय तथा सादृश्य इन चारों प्रकार की प्रतीतियों से विलक्षण होती है ।

भट्टनायक का भुक्तिवाद

रस की 'निष्पत्ति' न अनुकार्य राम आदि में होती है और न अनुकर्ता नट आदि में । अनुकार्य और अनुकर्ता दोनों तटस्थ हैं, उदासीन हैं । उनको रसानुभूति नहीं होती है । वास्तविक रसानुभूति सामाजिक को होती है । भट्टलोल्लट ने मुख्यरूप से 'तटस्थ' राम आदि में और गौण रूप से 'तटस्थ' नट में रस की उत्पत्ति मानी है । परन्तु इसमें सामाजिक का स्थान कहीं नहीं आया है । इसप्रकार भट्टलोलट का सिद्धान्त समीचीन नहीं है । श्रीशंकुक ने 'तटस्थ' नट में रस की 'अनुमिति' मानी है और उसके द्वारा संस्कारवश सामाजिक की रस-चर्वणा का उपपादन करने का प्रयत्न किया है । परन्तु 'अनुमिति' तो केवल परोक्ष-ज्ञानरूप होती है । साक्षात्कारात्मक रसानुभूति की समस्या उसके द्वारा हल नहीं हो सकती है । इसलिए यह सिद्धान्त भी ठीक नहीं

लगता है । आचार्य अभिनवगुप्त के मतानुसार सामाजिक में रस की 'अभिव्यक्ति' होती हैं । उन्होंने रस की स्थिति 'तटस्थ' राम या नट आदि में 'आत्मगत' अर्थात् सामाजिकगत मानी है । सामाजिक में भी रस की 'उत्पत्ति' या 'अनुमिति' न मानकर उसकी अभिव्यक्ति मानी जाती है । परन्तु भट्टनायक के मत में यह 'अभिव्यक्तिवाद' भी ठीक नहीं है क्योंकि अभिव्यक्ति सदा पूर्व से विद्यमान पदार्थों की ही होती है । रस अनुभूतिस्वरूप है । अनुभूति काल से पहले या बाद में उसकी सत्ता नहीं रहती । 'अभिव्यक्त' होने वाली वस्तु का अस्तित्व अभिव्यक्ति के पहले भी रहता है बाद में भी परन्तु रस की यह स्थिति नहीं है । इस प्रकार भट्टनायक ने 'उत्पत्तिवाद' 'अनुमितिवाद' और 'अभिव्यक्तिवाद' तीनों का खण्डन करके अपने भुक्तिवाद की स्थापना की ।

भट्टनायक ने अपने 'भुक्तिवाद' की स्थापना करने के लिए शब्द में स्वीकृत अभिधा और लक्षणा से काव्य का जो अर्थ उपस्थित होता है, उसको शब्द का 'भावकत्व' व्यापार परिष्कृत कर सामाजिक के उपभोग के योग्य बना देता है । काव्य से जो अर्थ अभिधा द्वारा उपस्थित होता है, वह एक विशेष नायक और विशेष नायिका की प्रेमकथा के रूप में व्यक्तिविशेष से सम्बद्ध होता है । शब्द का 'भावकत्व' व्यापार इस कथा में परिष्कार कर उसका 'साधारणीकरण' कर देता है । साधारणीकरण की स्थिति में सामाजिक उस कथा के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है । अपनी रूचि या संस्कार के अनुरूप वह उस कथा का पात्र स्वयं बन जाता है । इस प्रकार असली नायक-नायिका की जो स्थिति उस कथा में थी । 'साधारणीकरण' व्यापार के द्वारा सामाजिक को भी लगभग वही स्थान मिल जाता है ।

भट्टनायक के अनुसार इस 'भावकत्व' व्यापार से काव्यार्थ का 'साधारणीकरण' हो जाता है तब शब्द का 'भोजकत्व' नामक तीसरा व्यापार सामाजिक को रस का साक्षात्कारात्मक भोग करवाता है । यही भट्टनायक का 'भोजकत्व' सिद्धान्त है, जो 'भुक्तिवाद' कहलाता है । इस

प्रकार भट्टनायक ने शब्द में अभिधा, लक्षणा आदि के अतिरिक्त 'भावकत्व' तथा 'भोजकत्व' रूप दो नवीन व्यापारों की कल्पना कर सामाजिक को रसानुभूति प्राप्त कराने का प्रयत्न किया है-

न ताटस्थ्येन नात्मगततत्वेन रसः प्रतीयते, नोत्पद्यते, नाभिव्यज्यते अपितु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणीकरणात्मना भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानः स्थायी, सत्त्वोद्रेकप्रकाशानन्दमयसंविद्विश्रान्तिसतत्त्वेन भोगेन भुज्यते' इति भट्टनायकः ।

भट्टनायक ने अपनी इस प्रक्रिया के द्वारा सामाजिकगत रसानुभूति का निरूपण अच्छी तरह से किया है, परन्तु 'भावकत्व' तथा 'भोजकत्व' नामक जिन दो नवीन व्यापारों की कल्पना की है वे अनुभवसिद्ध नहीं हैं और जिस स्थायिभाव का 'भोग' बतलाया है वह राम-सीतादिगत स्थायिभाव है या नटगत अथवा सामाजिकगत, इसका भी स्पष्टीकरण नहीं हुआ है ।[१]

अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

आचार्य अभिनवगुप्त ने 'अभिव्यक्तिवाद' की स्थापना की । उन्होंने सामाजिकगत स्थायिभाव को ही रसानुभूति का निमित्त माना है । मूल मनः संवेग अर्थात् वासना या संस्कार रूप में रति आदि स्थायिभाव सामाजिक की आत्मा में स्थित रहता है । वह साधारणीकृत रूप से उपस्थित विभावादि-सामग्री से अभिव्यक्त या उद्बुध हो जाता है तथा तन्मयीभाव के कारण वेद्यान्तर सम्पर्क से शून्य ब्रह्मास्वाद के सदृश परमानन्द रूप में अनुभूत होता है । यहाँ अभिनवगुप्त ने भट्टनायक की तरह 'भावकत्व' तथा 'भोजकत्व' रूप दो व्यापारों की कल्पना नहीं की है परन्तु 'भावकत्व' व्यापार के स्थान पर 'साधारणीकरण' व्यापार, अभिधा तथा लक्षणा के साथ शब्द की 'व्यञ्जना' नामक तृतीय वृत्ति अवश्य मानी है । इनके अनुसार भट्टनायक ने जो 'भावकत्व' तथा 'भोजकत्व' रूप दो व्यापारों की कल्पना की गयी है वह प्रामाणिक नहीं है इसलिए उसका भी निराकरण कर अभिनवगुप्त ने अपने 'अभिव्यक्तिवाद' में की है ।

---

१. ***काव्यप्रकाश*** - आचार्य विश्वेश्वर टीका - पृष्ठ १०७ ।

रस अलौकिकता की सिद्धि

अभिनवगुप्त ने रस को अलौकिक कहा है । लोक में पायी जाने वाली अनित्य वस्तुएं दो प्रकार की होती हैं । एक 'कार्य' रूप और दूसरी 'ज्ञाप्य' रूप । घट पट आदि 'कार्य' पदार्थ है । ये किसी न किसी कारण से उत्पन्न होते हैं इसलिए 'कार्य' कहलाते हैं और इनका जनक 'कारण' या कारक कहलाता है । दूसरे प्रकार से ये पदार्थ ज्ञान के 'विषय' या 'ज्ञाप्य' होते हैं । जैसे दीपक के प्रकाश में घट का ज्ञान होता है इसलिए दीपक के द्वारा घट 'ज्ञाप्य' है। और जो पदार्थ पूर्व सिद्ध नहीं है, कारण के व्यापार के बाद उसकी उत्पत्ति होती है वह 'कार्य' कहलाता है । संसार के सारे अनित्य पदार्थ 'कार्य' और 'ज्ञाप्य' दो वर्गो में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं । परन्तु रस को न 'कार्य' कहा जा सकता है और न 'ज्ञाप्य' । 'कार्य' तो इसलिए नहीं हो सकता है कि 'कार्य' अपने निमित्त का नाश हो जाने पर भी बना रहता हैं; जैसे कुम्हार का बनाया हुआ घड़ा कुम्हार के मर जाने के बाद के बना रहता है । यदि रस को 'कार्य' माना जाय तो उसके निमित्तकारण विभावादि ही होंगे । इसलिए विभावादिका नाश हो जाने के बाद भी उसकी प्रतीति होनी चाहिए । परन्तु विभावादि के नाश के बाद रस की प्रतीति नहीं होती है । इसी अभिप्राय से आचार्य मम्मट ने रस को ***विभावादिजीवितावधिः*** कहा है, इसलिए रस को 'कार्य' नहीं माना जा सकता है । यह 'ज्ञाप्य' भी नहीं है, क्योंकि 'ज्ञाप्य' पदार्थ ज्ञान होने के पहले भी विद्यमान रहता है और बाद में भी । परन्तु रस की सत्ता न अनुभव से पूर्वकाल में रहती है और अनुभव के बाद । जब तक रस की अनुभूति होती है, तब तक ही उसकी सत्ता रहती है । इसलिए वह 'कार्य' तथा 'ज्ञाप्य' दोनों प्रकार के लौकिक पदार्थो से भिन्न है, अतः रस 'अलौकिक' है ।[१]

प्रश्न उठता है कि जब रस न 'कार्य' है और न 'ज्ञाप्य' तो फिर वह विभावादि से

---

१. *काव्यप्रकाश* - आचार्य विश्वेश्वर - पृष्ठ १०९-१० ।

व्यञ्जित होकर चर्वणीय कैसे हो सकता है । संसार में दो ही प्रकार के कारण होते हैं, एक 'कारक' दूसरे 'ज्ञापक' । जब रस 'कार्य' नहीं है तो उसका कोई 'कारक' हेतु नहीं हो सकता है। रस 'ज्ञाप्य' भी नहीं है इसलिये उसका 'ज्ञापक' हेतु भी नहीं हो सकता है । इन 'कारक' तथा 'ज्ञापक' हेतुओं के अतिरिक्त और तीसरा हेतु होता ही नहीं है, तो विभावादि रस के 'व्यञ्जक' कैसे हो सकते हैं । इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं कि इसीलिए तो हम रस को 'अलौकिक' कहते हैं । लोक में जो 'कारक' तथा 'ज्ञापक' दो प्रकार के हेतु पाये जाते हैं, उनमें रस के 'व्यञ्जक' हेतु विभावादि, उन दोनों से विलक्षण अतएव 'अलौकिक' हैं । इसलिए यह अलौकिकत्वसिद्धि रस का भूषण है, दूषण नहीं ।

रस का ग्रहण न 'सविकल्पक-ज्ञान' से हो सकता है और न निर्विकल्पक-ज्ञान से, इसलिए वह अलौकिक है । 'सविकल्पक-ज्ञान' उसको कहते हैं, जिसमें पदार्थ के स्वरूप के अतिरिक्त उसके नाम, उस जाति आदि का ज्ञान होता है - ***नामजात्यादियोजनासहितं ज्ञानं सविकल्पम्*** , जैसे घट-पट इत्यादि पदार्थों के ज्ञान में उनके स्वरूप के साथ वस्तु के नाम, जाति आदि का भी ज्ञान होता रहता है । इसलिए इसे 'सविकल्पक-ज्ञान' कहते हैं । वह शब्द व्यवहार का विषय होता है, परन्तु रसानुभूति तो स्वसंवेद्य होती है, शब्द व्यवहार का विषय नहीं है । इसलिए उसमें नामजात्यादि के ज्ञान का कोई अवसर नहीं है । अतः रस को सविकल्पक ज्ञान से ग्रहण नहीं कर सकते हैं । 'सविकल्पक-ज्ञान' के अतिरिक्त दूसरा 'निर्विकल्पक-ज्ञान' होता है । नाम, जाति, विशेषण-विशेष्यभाव आदि से रहित केवल वस्तु मात्र का अवगाहन करने वाला ज्ञान 'निर्विकल्पक-ज्ञान' कहलाता है ।[1]

---

१. *'तद्ग्राहकं च न निर्विकल्पकं विभावादिपरामर्शप्रधानत्वात् । नापि सविकल्पकं चर्व्यमाणस्यालौकिकानन्दमयस्य स्वसंवेदनसिद्धत्वात् । उभयाभावास्वरूपस्य चोभयात्मकत्वमपि पूर्ववल्लोकोत्तरतामेव गमयति न तु विरोधमिति श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तपादाः* - काव्यप्रकाश - कारिका २७/२८, सूत्र ४३ ।

रस की प्रतीति में विभावादि की प्रतीति भी होती रहती है इसलिए समूहालम्बनात्मक ज्ञान होने से निर्विकल्पक-ज्ञान भी उसका ग्राहक नहीं हो सकता है और न वह सविकल्पक का विषय होता है ।[१] इसलिए रस इन दोनों से भिन्न अतएव अलौकिक है ।

मनुष्य की विभिन्न अनुभूति के अनुसार नाट्य में रस के आठ भेद माने गये हैं -

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।

वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ।[२]

इनके स्थायिभाव क्रमशः रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा या घृणा और विस्मय हैं । रति या काम न केवल मनुष्य जाति में अपितु सभी जातियों में मुख्य प्रवृत्ति के रूप में पाया जाता है और सबको उसके प्रति आकर्षण होता है । इसलिए सबसे पहले शृङ्गार को स्थान दिया गया है । सम्भोग शृङ्गार में नायक-नायिका का मिलन होता है इसमें एक दूसरे की अपेक्षा रहती है, जबकि विप्रलम्भ शृङ्गार में भी दोनों को मिलन की आशा रहती है । हास्य शृङ्गार का अनुगामी है, इसलिए शृङ्गार के बाद हास्य रस का स्थान दिया गया है । हास्य से विपरीत स्थिति करुण रस की है । इसलिए हास्य के बाद करुण रस को स्थान दिया गया है । अपने प्रियतम बन्धु के वास्तविक विनाश या भ्रमवश ही उसके विनाश का निश्चय हो जाने के बाद करुण रस की सीमा प्रारम्भ होती है, उसमें पुनर्मिलन की आशा नहीं रहती है । अतएव करुणरस नैराश्यमय होने से निरपेक्ष रस माना जाता है । भवभूति ने 'तटस्थं नैराश्यात्' कहकर करुणरस से निराशात्मक स्वरूप को सूचित किया है ।[३]

---

१. ***काव्यप्रकाश*** - आचार्य विश्वेश्वर, पृष्ठ ११२ ।

२. ***वही*** - आचार्य मम्मट , कारिका २९ - सूत्र ४४ ।

३. ***वही*** - आचार्य विश्वेश्वर, पृष्ठ ११३ ।

उत्तरामचरितम्-रसाभिव्यक्ति

उत्तरामचरितम् भवभूति का अन्तिम नाटक है । जिसमें करुण रस का उत्कर्ष है। इस नाटक के अङ्गीरस के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग करुण को नाटक का प्रधान रस मानते हैं और कुछ 'विप्रलम्भ शृङ्गार' को। इसकी चर्चा इस शोध-प्रबन्ध के मूल्याङ्कन में की जायगी। महाकवि ने प्रस्तावना में करुण रस का बीज बो दिया है। अयोध्या में उत्सव समाप्त हो गया है । गुरुजन वहाँ से चले हैं । सीता उदास हैं । दुःखी सीता को सान्त्वना देने के लिए राम धर्मासन से उठकर वासगृह में जाते हैं । सीता के अपवाद तथा उसके कारण उत्पन्न होने वाले भावी अनिष्ट की आशङ्का की ओर भी कवि ने प्रस्तावना में ही सङ्केत कर दिया है ।[1]

राम का प्रथम वाक्य - 'देवि वैदेहि! धैर्य धारण करो । कर्तव्य पालन की भावना मनुष्य की स्वतन्त्रता को छीन लेती है ।' तथा सीता का उत्तर – 'जानती हूँ आर्य पुत्र! जानती हूँ । परन्तु बन्धुजन का विप्रयोग सन्तापदायक होता ही है ।' नायक-नायिका के प्रथम वाक्यों में ही करुणा का सञ्चार महाकवि भवभूति की चमत्कारिणी प्रतिभा का परिचायक है । भगवती अरुन्धती, शान्ता तथा राजमाताओं का सन्देश - *'यः कश्चिद्गर्भदोहदो भवत्यस्याः सोऽवश्यमचिरात्सम्पादयितव्यः'* भगवान् वशिष्ठ का आदेश - *'जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम् । युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यातस्माद्यशो यत् परमं धनं वः ॥'* तथा राम की प्रतिज्ञा -

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा[2] ॥

---

१. *यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति स्यन्देत ततः कष्टं स्यात्* - उत्तररामचरितम् - पृष्ठ-७

२. *उत्तररामचरितम्* - १/१२ ।

सीता-परित्याग की प्रेरणा का कारण बन जाती है । और सीता परित्याग से उत्पन्न शोक सम्पूर्ण नाटक को करुण रस में डुबो देता है । 'चित्र-दर्शन' जो दुःखी सीता के मनोविनोद का साधन बनाया गया है-राम और सीता के सुखी दाम्पत्य जीवन की झाँकी प्रस्तुत कर भविष्य में आने वाले विरह की वेदना को तीव्रकर करने में सहायक होता है । चित्र-दर्शन के पूर्व राम के प्रश्न का लक्ष्मण द्वारा दिया गया स्वाभाविक उत्तर - *'यावदार्याया हुताशनविशुद्धिः'* भी नाटकीय कौशल से करुणोत्पादक बन जाता है । सीता के प्रवाद के स्मरण मात्र से राम के हृदय में असह्य वेदना उत्पन्न हो जाती है ।[1] इस प्रकार एक सुदृढ़ पृष्ठभूमि का निर्माण कर भवभूति ने करुणरस का उद्भव दुर्मुख के उस 'वाग्वज्र' से कराया है जिसे सुनते ही राम मूर्च्छित हो जाते हैं । वे शीघ्र ही अपने कर्तव्य का निर्णय कर लेते हैं । वे सीता की पवित्रता और पातिव्रत का स्मरण कर विलाप करने लगते हैं ।[2] जिस सीता के कारण संसार पवित्र हुआ उसी के सम्बन्ध में लोग अपवित्र उक्तियाँ कर रहे हैं ।

आत्मग्लानि से उनका हृदय पीड़ित हो जाता है । अपने वीभत्स कर्म और नृशंसता पर विचार कर वे व्याकुल हो उठते हैं ।[3] उनका हृदय अब उनको स्वीकार नहीं करता । अपने स्पर्श से देवी सीता को दूषित करना उचित नहीं है, यह सोचकर अपना हाथ प्रसुप्ता सीता के मस्तक के नीचे से खींच लेते हैं और अनेक प्रकार से अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति करते हैं ।[3]

द्वितीय अङ्क में जनस्थान की वनदेवी वासन्ती, जो अभी तक अयोध्या की घटनाओं से अनभिज्ञ थी, आत्रेयी के मुख से अपनी प्रिय सखी सीता के लोकापवाद से आहत होकर मूर्च्छित

---

१. *उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः ।*
तीर्थोदकञ्च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हत : ॥- उत्तररामचरितम् - भवभूति - १/१३

२. उत्तररामचरितम् - भवभूति - १/४५-४९ ।

३. उत्तररामचरितम् - भवभूति - १/४६,४७,४८ ।

हो जाती है और आत्रेयी जब उसे आश्वस्त करती है तो वह सीता को सम्बोधित कर विलाप करने लगती है । राम के कठोर कृत्य पर खेद प्रकट करती है और लक्ष्मण के लौट जाने पर सीता की क्या दशा हुई होगी, यह सोचकर चिन्तित हो उठती है ।

द्वितीय अङ्क में ही राम प्रजानुरञ्जन के लिये वे गर्भिणी सीता के परित्याग जैसा कठोर कार्य कर चुके हैं । अब वे प्रजा के कल्याण के लिए तपस्या कर रहे शूद्र-शम्बूक का वध करने के लिये तत्पर होते हैं । उनका सरल हृदय इस कार्य का भी समर्थन नहीं करता । अत्यन्त दुःख के साथ वध करते हुए कहते हैं - 'राम के सदृश कर्म कर दिया ।' राम के इन शब्दों में उनके हृदय की वेदना पूर्णतया व्यक्त हो जाती है। जनस्थान के पूर्व परिचित स्थलों को देखकर उनका हृदय व्यथित हो उठता है । वे स्मृतियाँ उनके मस्तिष्क को आक्रान्त कर देती है और वे पागल से होकर कहते है-*'क्या हो गया है आज राम को ।'* उनका शोक फिर नया रूप धारण कर उनके हृदय को व्याकुल करने लगता है । जिस पञ्चवटी में अपनी प्रिया के साथ वनवास के वे दिन अत्यन्त आनन्दपूर्वक व्यतीत किये थे; तथा अयोध्या से लौट आने पर भी जिसके सम्बन्ध में वे बहुत देर तक सीता के साथ वार्तालाप करते रहते थे, उसी पञ्चवटी को आज राम - जिन्होंने स्वयं अपनी प्रियतमा का परित्याग कर दिया है-अकेले कैसे देखें । परन्तु उसका अनादर कर लौट जाना क्या सम्भव है? राम के इस अन्तर्द्वन्द्व से भी उनकी तीव्र मनोव्यथा की ही अभिव्यक्ति होती है। उनका यह स्मृतिजन्य विषाद अत्यन्त करुण है ।

तृतीय अङ्क में के आरम्भ में ही मुरला द्वारा गोदावरी के पास भेजे गये लोपामुद्रा के सन्देश से स्पष्ट होता है कि सीता परित्याग के पश्चात् राम की वेदना, जिसे गम्भीरता के कारण वे व्यक्त नहीं कर पाते, घनीभूत होकर पुटपाक के समान उन्हें भीतर ही भीतर जला रही है ।[1]

---

१. *अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः ।*

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥ - उत्तररामचरितम् - भवभूति - ३/१

दीर्घ शोक में सन्तप्त होकर वे अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं । प्रजा के अभ्युदय के अनेक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण सीता के वियोग की पीड़ा नहीं रहती थी, परन्तु पञ्चवटी में शोक ही उनका एकमात्र साथी है । पञ्चवटी के बान्धव तुल्य वृक्षों और मृगों को तथा निर्झरों, कन्दराओं और गोदावरी के निकटवर्ती पर्वत तटों को देखकर राम को उन दिनों का स्मरण हो जाता है जब उन्होंने अपनी प्रिया के साथ वहाँ निवास किया था । पञ्चवटी के दर्शन से उनकी दुःखाग्नि, जो अभी तक उनके अन्तःकरण में छिपी हुई थी, आज उद्दीप्त होकर जलने लगी है और मोह ने उन्हें आवृत्त कर लिया । वे सीता का स्मरण कर मूर्च्छित हो जाते हैं ।

जब सीता के स्पर्श से राम की मूर्च्छा दूर हो जाती है तो वे सीता को इधर-उधर खोजने लगते हैं । चारों ओर देखकर वे दुःख के साथ कहते हैं -- *'हा न किञ्चिदत्र' सीता का शीतल स्पर्श अब भी उन्हें आनन्दित कर रहा है, परन्तु सीता कही दिखाई नही देती - खोजने पर भी नहीं मिलती । यह तो सीताविषयक सङ्कल्पों से उत्पन्न मेरा भ्रम मात्र है ।'* ऐसा सोचकर वे अपने मन को समझाने का प्रयत्न करते हैं ।

वासन्ती ने नेपथ्य से ही राम का ध्यान आपद्ग्रस्त करिकलभ की ओर आकर्षित कर उसकी रक्षा के लिए प्रार्थना की । यही वह अवसर था जब राम का मन शोक से हटकर कुछ समय के लिए किसी अन्य भाव का आधार लेता है । परन्तु महाकवि भवभूति की चमत्कारिणी प्रतिभा ने इस स्थिति में भी राम की स्मृति को उद्वेलित करने की युक्ति निकाल ही ली । वासन्ती कहती है -- ***'देव! त्वर्यतां त्वर्यताम् । इतो जटायुशिखरस्य दाक्षिणेन सीतातीर्थेन गोदावरीमवतीर्य सम्भावयतु देव्याः पुत्रकं देवः ।'*** वास्तव में ये प्रसङ्ग राम के हृदय के मर्म को छेदने वाले हैं ।[१] वासन्ती जानती है कि सीता के वियोग में राम अत्यन्त व्यथित हैं - ***'विकलकरणः पाण्डुच्छायः शुचा परिदुर्बलः कथमपि स इत्युन्नेतव्यः'*** कहकर वह उनकी

---

१. *भवभूति के नाटक* - डॉ० ब्रजवल्लभ शर्मा, पृष्ठ १७५ ।

अवस्था का वर्णन करती है । फिर भी जाने-अनजाने वह पञ्चवटी के जिन दृश्यों को दिखाती है अथवा जिन घटनाओं का स्मरण राम को कराती है, वे स्थल उनकी वेदना को तीव्रकर करने में सहायक होते हैं । *'इधर देखिये देव !* वह कहती है *–'यह वही मयूर है जिसे आपकी प्रिया ने प्रतिदिन पोषित किया था ।'* राम को उन दिनों का स्मरण हो जाता है जब सीता उस मयूर को तालियाँ बजाकर नचाया करती थीं । वह कदम्ब भी, जिस पर यह मयूर बैठा है, सीता द्वारा परिवर्धित किया गया था ।

वासन्ती आँखों में आँसू भरकर राम से लक्ष्मण का कुशल क्षेम पूछती है, परन्तु राम सीता की स्मृति के कारण 'जड़ता' से आक्रान्त है, अतः वासन्ती का प्रश्न नहीं सुन पाते । राम की पीड़ा असीम है । उन्हें यह विश्वास हो गया है कि सीता की अङ्गलतिका वन के हिंसक पशुओं द्वारा नष्ट कर दी गयी है । सीता की दशा का स्मरण कर उनकी वेदना चरम सीमा पर पहुँच जाती है और वे -*'हा प्रिये जानकि ! तुम कहाँ हो'* कहते हुए मुक्त कण्ठ से रोने लगते हैं । स्वयं सीता का त्याग किया था इसलिए अयोध्या में वे विलाप भी नहीं कर सकते थे ।

अपने प्रजाजनों को सम्बोधित कर वे कहते हैं – *'देवी का घर में रहना आप लोगों को अभीष्ट नहीं था अतः उसे शून्य वन में तृण के समान त्याग दिया और उस पर शोक भी नहीं किया, परन्तु यहाँ पञ्चवटी में चिर-परिचित अनेक भाव मेरे हृदय को द्रवित कर रहे हैं इसलिए मैं अकारण रो रहा हूँ, कृपया क्षमा करें ।'* कितनी करुण विवशता है महाराज राम की ।

वासन्ती उन्हें समझाने का प्रयत्न करती है – *'देव ! जो हुआ सो हुआ । अब धैर्य धारण कीजिए ।'* राम क्षुब्ध हो उठते हैं धैर्य की बात सुनकर । वे वासन्ती से कहते हैं – *'क्या कहती हो, धैर्य धारण करूँ ?' इस संसार को सीता से रहित हुए बारह वर्ष हो गये । उनका नाम भी अब लुप्तप्राय हो गया है, फिर भी राम जीवित हैं ।'*

तृतीय अङ्क में सीता की करुण दशा भी पूर्णतया अभिव्यक्त हो गयी है । उनके दुर्बल और पीले कपोल तथा बिखरे बालों से मुख को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों मूर्तिमयी करुणा हो अथवा विरह-व्यथा स्वयं शरीर धारण कर वन में आ गयी हो । करिकलभ को आपद्ग्रस्त देखकर वे सहसा कह उठती हैं – *'आर्यपुत्र ! रक्षा करो, मेरे पुत्र की रक्षा करो ।'* परन्तु यहाँ आर्यपुत्र कहाँ ? पञ्चवटी के दर्शन से अनायास ही उद्भ्रान्त अवस्था में ये चिर-परिचित शब्द निकल गए थे । वस्तुस्थिति का भान होते ही वे *'हा आर्यपुत्र'* कहकर मूर्च्छित हो जाती हैं । करिकलभ को देखकर उनके हृदय में वात्सल्य उमड़ता है । वे तमसा से कहती हैं – *'यह तो इतना बड़ा हो गया है ।'* उसी क्षण उनका ध्यान कुश-लव की ओर जाता है – *'न जाने इतने समय में वे दोनों कैसे हो गये होंगे । मैं कैसी मन्दभागिनी हूँ कि न केवल पति का असह्य विरह अपितु पुत्रों का विरह भी सहन कर रही हूँ ।'* अथवा, *'मुझे पुत्रवती होने से क्या लाभ यदि मेरे पुत्रों के मुखकमलों का चुम्बन आर्यपुत्र ने नहीं किया ।'* सीता का वात्सल्य पूर्णता को पहुँच गया है, परन्तु उसके साथ ही वे अपने पति-प्रेम को अभिव्यक्त करना नहीं भूल सकीं और भवभूति ने सीता के निर्वेद द्वारा इन दोनों का पर्यवसान करुण में कर दिया ।

करुण रस के इस सागर में सीता का एक-एक वाक्य एक-एक शब्द करुणा की छोटी बड़ी तरङ्गों को अग्रसर करता हुआ सा प्रतीत होता है – *'भगवति तमसे ! पुत्रों के स्मरण और दोनों बच्चों के पिता के सान्निध्य से मैं तो क्षण भर के लिए संसारिणी हो गयी हूँ ।'* जब वासन्ती कहती है–*'सखि सीते ! क्यों नहीं देखती तुम राम की इस अवस्था को,'* तब वे उत्तर देती हैं, देख रही हूँ सखि ! *'देख रही हूँ'*, और वे निर्निमेष, किन्तु अश्रुपूर्ण दृष्टि राम की ओर देखती हुई कहती हैं-*'हा देव ! ये मेरे बिना और मैं इनके बिना रह सकूँगी यह किसने सम्भावना की थी ! अब जिनके दर्शन जन्म-जन्मान्तर में भी दुर्लभ हैं ऐसे स्नेही आर्यपुत्र के दर्शन क्षण मात्र कर लूँ।'* इस प्रकार यहाँ वासन्ती के शोक की भी समुचित अभिव्यक्ति हो गयी है ।

चतुर्थ अङ्क में दाण्डायन और सौधातकि के हास्य-वार्तालाप में करुण रस के लिये कोई अवकाश नहीं था, परन्तु यहाँ भी कवि ने करुण को सर्वथा विस्मृत नहीं कर दिया है। जनक की चर्चा करते हुए दाण्डायन कहता है–*'स तदैव देव्याः सीतायास्तादृशं दैवदुर्विपाकमुपश्रुत्य वैखानसः संवृत्तः ।'* जनक के वैखानस बनने का कारण देवी सीता का दैवदुर्विपाक ही है । जनक के अन्तस्थल में व्याप्त शोकाग्नि की ओर भी दाण्डायन ने सङ्केत कर दिया है।[1] इतने वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उनका दुःख सीता की स्मृति के कारण नूतन प्रतीत होता है । *'अयि देवयजनसम्भवे सीते ! ईदृशस्ते निर्माणभागः परिणतः येन लज्जया स्वच्छदमाक्रन्दितुमपि न शक्यते'* में लज्जा की अपेक्षा दैन्य की ही अधिक अभिव्यक्ति हुई है ।

जनक और कौशल्या का मिलन करुणा से ओत-प्रोत है । कौशल्या के निर्वेद, स्मृति, ग्लानि, विषाद, मूर्च्छा आदि द्वारा करुण रस की सम्यक् अभिव्यञ्जना हुई है । जनक की प्रारम्भिक उक्तियों में कहीं-कहीं उपालम्भ अथवा अमर्ष की झलक मिलती है परन्तु उसके मूल में भी अपनी पुत्री के असामान्य दुःख से उद्भूत करुणा ही है । जनक ने सीता के उस समय के चित्र की जो कल्पना की है वह अत्यन्त करुण है ।

नूनं त्वया परिभवं च वनं च घोर तां च व्यथां प्रसवकालकृतामवाप्य ।
क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु सन्त्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽस्मि ॥[2]

पञ्चम अङ्क लव-चन्द्रकेतु प्रसङ्ग में वीर रस में भी करुण का दृश्य उपस्थित होता है । सुमन्त्र लव को ध्यानपूर्वक देखते है और न जाने क्या सोचकर उनकी आँखों में आँसू भर जाते हैं । वे अपने ही हृदय से बातें करने लगते हैं – ***'हृदय ! किमन्यथा परिप्लवसे ।'***

मनोरथस्य यद्बीजं तद्दैवेनादितो हतम् । लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्योद्गमः कुतः ॥

---

१. *उत्तररामचरितम्* - भवभूति, ४/२ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - भवभूति, ४/२३ ।

षष्ठ अङ्क में भी कवि ने कुशलतापूर्वक वात्सल्य का पर्यावरण करुण में कर दिया है। कुश और लव के मुखमण्डल पर राम को सीता की छाया दृष्टिगोचर होती है ।[1] सीता की स्मृति से उनके अश्रुपूर्ण हो जाते हैं । द्वादशवर्षीय बालक कुश राम के दुःख के कारण का अनुमान कर लेते हैं –

विना सीतादेव्याः किमिव हि न दुःखं रघुपते ।

प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति ।।[2]

राम अपने हृदय के आवेग को सँभाल न सके इसलिए उनकी आँखों में पानी आ गया, परन्तु उन्हें इस बात पर विषाद हुआ कि आज उनके असह्य दुःख ने उन्हें एक बालक का दया पात्र बना दिया ।

सातवें अङ्क में गर्भाङ्क की प्रस्तावना में सीता का विलाप जो नेपथ्य में सुनाई देता है, अत्यन्त करुण है । अपने सामने भागीरथी और वसुन्धरा द्वारा सम्भाली गयी मूर्च्छित सीता को देखकर ये स्वयं आँखों में आँसू भरकर लक्ष्मण का सहारा लेते हैं । पृथ्वी के प्रत्येक वाक्य से - चाहे उसमें सीता के प्रति वात्सल्य व्यक्त हुआ हो या राम के प्रति रोष, उनके हृदय में करुण वेदना उत्पन्न होती है । रुदन करती हुई सीता जब हाथ जोड़कर पृथ्वी से प्रार्थना करती हैं- *'माँ! मुझे अपनी गोद में लीन कर लो,* और अपने नवजात शिशुओं की ओर देखकर कहती हैं-*मैं अनाथ हूँ, मुझे पुत्रों से क्या ?'* तब राम का विषाद असह्य हो जाता है । सीता का प्रश्न- इन दोनों बालकों के क्षत्रियोजित संस्कार कौन करेगा, यह प्रश्न राम के अन्तःकरण में शूल सा चुभता है । और गङ्गा और पृथ्वी के साथ सीता चली जाती हैं तब राम ***'कथं वैदेह्याः विलय एव सम्पन्नः'*** कहते हुए मूर्च्छित हो जाते हैं । परन्तु इसी अङ्क में राम और सीता का मिलन होता है, इसलिए *'करुण'* इस नाटक का अङ्गी रस नहीं बन पाता । करुण में नायक और नायिका का आत्यन्तिक वियोग अनिवार्य है और तभी सम्भव है जब दोनों में से एक की मृत्यु

हो जाय और फिर कभी मिलन न सम्भव हो । उत्तररामचरितम् में आरम्भ से अन्त तक राम का करुण विलाप सार्थक है क्योंकि उन्हें विश्वास है सीता की अङ्गलतिका वन के हिंसक पशुओं द्वारा नष्ट कर दी गयी । अन्य पात्र जनक कौशल्या सुमन्त्र आदि भी इसी विश्वास के आधार पर करुण विलाप करते हैं । राम आदि चाहे यह भले ही यह मानते रहे कि उनका सीता से फिर मिलन कभी नहीं होगा परन्तु कवि ने सामाजिक को आशा में बाँध रखा है । तृतीय अङ्क में वह सीता के दर्शन भी कर लेता है । अब उसकी दृष्टि में राम का निरवधि विरह अस्थायी बन जाता है और उनका 'शोक' स्थायी भाव न रहकर 'विप्रलम्भ-शृङ्गार' का ही एक अङ्ग हो जाता है। शास्त्रीय भाषा में इसे 'करुण-विप्रलम्भ' कहते हैं ।[1]

इस प्रकार महाकवि ने उत्तररामचरितम् नाटक में 'करुण' को प्रधानता देते हुए भी अन्त में राम और सीता का मिलन दिखाकर (करुण का शृङ्गार में पर्यवसान कर) स्वयं को उस अपराध से मुक्त कर लिया है जो शास्त्रीय नियम - ***एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा*** के उल्लंघन से होता ।

उत्तररामचरितम् का 'शृङ्गार' उदात्त कोटि का शृङ्गार है । उसमें प्रेमी-प्रेमिका के पूर्वराग की मादकता का चित्रण नहीं है । राम और सीता प्रौढ़-दम्पति है । अतः नव-विवाहित पति-पत्नी के आनन्दोल्लास का वर्णन का भी वर्णन यहाँ नहीं किया गया है । महाकवि ने राम सीता के अतीत की अनेक स्मृतियों को अङ्कित कर उसमें प्रगाढ़ प्रेम का स्पष्ट एवं प्रभावोत्पादक चित्रण किया है । उत्तररामचरितम् का शृङ्गार वर्णन पति-पत्नी के मिलन के अतीन्द्रिय आनन्द तथा विरह वेदना की गहनतम अनुभूति द्वारा दाम्पत्य प्रेम का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करता है ।[2]

---

१. **साहित्यदर्पण** - ३/१०९ ।

२. ***भवभूति के नाटक*** - डॉ० ब्रजवल्लभ शर्मा, पृष्ठ १८३ ।

राम धर्मासन से उठकर सीधे वासगृह में प्रवेश करते हैं जहाँ सीता उदास बैठी हैं । उनका प्रथम वाक्य - ***'देवि वैदेहि ! समाश्वसिहि ...'*** सीता को सान्त्वना देने के लिए कहा गया है । सीता का उत्तर–***'जानामि आर्यपुत्र' ! जानामि ..*** भी उतना ही भाव-भीना है । प्रजानुरञ्जन के लिये जब राम जानकी तक का त्याग करने की बात कहते हैं। तब से गर्व के साथ उनकी प्रशंसा करती है-***'इसीलिए तो आप राघवकुल धुरन्धर हैं।'*** सीता की अग्निशुद्धि की बात जो अनायास लक्ष्मण के मुख से निकल आती है, सुनकर राम को दुःख होता है और वे सीता से क्षमा याचना करते हैं, परन्तु सीता लक्ष्मण के शब्दों पर ध्यान ही नहीं देतीं ।

'उत्तररामचरितम्' करुण रस के अतिरिक्त भी में अन्य रसों का सुन्दर परिपाक किया गया है जिसमें वीररस प्रमुख है । इसमें बारह वर्ष का बालक सोचता है-***'अश्वमेध विश्व-विजयी क्षत्रियों के शक्तिशाली उत्कर्ष की कसौटी है, जिससे सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति तिरस्कृत होती है ।'*** इतने में ही उसे 'वीर-घोषणा' सुनायी देती है, जिसका एक-एक अक्षर ठेस पहुँचाता है । वह गर्व के सथ कहता है-***'तो क्या पृथ्वी क्षत्रियविहीन हो गयी है जो इस प्रकार कहा जा रहा है -***

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिद्रंष्टमुद्गारिघोरघनघर्घरघोषमेतत् ।

ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ॥

इस प्रसङ्ग में वीररस की अभिव्यञ्जना के लिये आवश्यक सामग्री प्रस्तुत कर दी गयी है । लव 'उत्साह' का आश्रय है और अश्वमेघ का घोड़ा आलम्बन वीरघोषणा तथा ***'रे रे महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः'*** आदि वाक्य उद्दीपन विभाव है । लव की गर्वोक्तियाँ, धनुष चढ़ाना आदि अनुभाव तथा गर्व, उग्रता, आवेग अमर्ष, औत्सुक्य, धृति आदि व्याभिचारिभाव हैं। इसी प्रकार पञ्चम अङ्क में चन्द्रकेतु लव के वार्तालाप में भी ***अद्भुत रस*** है । लव और चन्द्रकेतु के भयङ्कर युद्ध में दोनों ओर दिव्यास्त्रों का प्रयोग होने से अनेक स्थलों पर अद्भुत

रस का सञ्चार होता है । इसके अलावा उत्तररामचरितम् में ***हास्य*** तथा ***वात्सल्य*** रस भी दिखलायी पड़ता है । जनस्थान में आवश्यकतानुसार हास्य रस की योजना कर दी है । उत्तररामचरितम् में कुश और लव को आलम्बन बनाकर सीता के वात्सल्य का[१] , सीता को आलम्बन बनाकर जनक के वात्सल्य का[२], लव को आलम्बन बनाकर अरुन्धती ,जनक और कौशल्या के वात्सल्य[३] का तथा चन्द्रकेतु[४], लव[५] और कुश[६] को आलम्बन बनाकर राम के वात्सल्य का अत्यन्त प्रभावोत्पादक चित्रण किया गया है। इस प्रकार रस-निरूपण की दृष्टि से उत्तररामचरितम् संस्कृत-साहित्य में अद्वितीय नाटक है ।

---

१. ***उत्तररामचरितम्*** - पृष्ठ ६३ ।

२. ***उत्तररामचरितम्*** - ४/४ ।

३. ***उत्तररामचरितम्*** - पृष्ठ ९७-१०२ ।

४. ***उत्तररामचरितम्*** - ६/८ ।

५. ***उत्तररामचरितम्*** - ६/१३ ।

६. ***उत्तररामचरितम्*** - ६/१७- २१-२२ ।

महावीरचरितम् - रसाभिव्यक्ति

भवभूति के नाटक महावीरचरितम् में ***वीररस*** की प्रधानता है । इस नाटक में विशिष्ट पात्रों को वीररस का आश्रय तथा आलम्बन बनाया है और इस रस की अनेक सूक्ष्म भेदों में अभिव्यक्ति हुई है । राम के वीरतापूर्ण कार्यों का शुभारम्भ प्रथम अङ्क में ही होता है । अत्यन्त भयावह रूप में ताटका महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में उपस्थित होती है ।[1] उसका वध करने के लिए विश्वामित्र राम को आदेश देते हैं, तो राम कहते हैं-***'भगवन्! स्त्री खल्वियम्।'*** राम की इस उदार भावना को विश्वामित्र समझ लेते हैं परन्तु ताटका साधारण स्त्री नहीं थी । वह तो आश्रम में उपस्थित समस्त ब्राह्मण समुदाय की मृत्यु बन कर आ रही थी, अतः उसका वध करना आवश्यक था । विश्वामित्र कहते हैं – ***'त्वरस्व वत्स, किं न पश्यसि ब्राह्मणजनस्य सङ्घातमृत्युमग्रतः ।'*** राम प्रस्थान करते हैं और अपने तीव्र वाणों के प्रहारों से ताटका का वध करते हैं । इस प्रसङ्ग में राम वीररस के स्थायी भाव 'उत्साह' के आश्रय हैं । ताटका 'आलम्बन' विभाव है । विश्वामित्र की उक्ति 'त्वरस्य वत्स...' आदि 'उद्दीपन' विभाव हैं, ताटका की ओर राम का प्रस्थान करना तथा उस पर दृढ़तापूर्वक बाणों का प्रहार करना 'अनुभाव' है और राम की निर्भीकता एवं धैर्य 'व्याभिचारिभाव' है ।

वीररस का विस्तार द्वितीय अङ्क से आरम्भ हो जाता है । अपने गुरु के धनुर्भङ्ग होने के कारण उत्तेजित होकर परशुराम, जिन्होंने रावण के मद को ध्वस्त करने वाले कार्तवीर्य की सहस्र भुजाओं को अपने कुठार से छिन्न-भिन्न कर दिया तथा इक्कीस बार सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति का संहार किया, जनक के कन्यान्तःपुर में राम को खोजते हुए चले आ रहे हैं । राम को इस बात की प्रसन्नता है कि आज उनकी भेंट जामदग्न्य जैसे पराक्रमी वीर से हो रही है - ***'कुमार!***

---

१. *महावीरचरितम्* - भवभूति, १/३५ ।

महावीरचरितम् - रसाभिव्यक्ति

भवभूति के नाटक महावीरचरितम् में ***वीररस*** की प्रधानता है । इस नाटक में विशिष्ट पात्रों को वीररस का आश्रय तथा आलम्बन बनाया है और इस रस की अनेक सूक्ष्म भेदों में अभिव्यक्ति हुई है । राम के वीरतापूर्ण कार्यों का शुभारम्भ प्रथम अङ्क में ही होता है । अत्यन्त भयावह रूप में ताटका महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में उपस्थित होती है ।[१] उसका वध करने के लिए विश्वामित्र राम को आदेश देते हैं, तो राम कहते हैं-***'भगवन्! स्त्री खल्वियम्।'*** राम की इस उदार भावना को विश्वामित्र समझ लेते हैं परन्तु ताटका साधारण स्त्री नहीं थी । वह तो आश्रम में उपस्थित समस्त ब्राह्मण समुदाय की मृत्यु बन कर आ रही थी, अतः उसका वध करना आवश्यक था । विश्वामित्र कहते हैं – ***'त्वरस्व वत्स, किं न पश्यसि ब्राह्मणजनस्य सङ्घातमृत्युमग्रत: ।'*** राम प्रस्थान करते हैं और अपने तीव्र वाणों के प्रहारों से ताटका का वध करते हैं । इस प्रसङ्ग में राम वीररस के स्थायी भाव 'उत्साह' के आश्रय हैं । ताटका 'आलम्बन' विभाव है । विश्वामित्र की उक्ति 'त्वरस्य वत्स. . .' आदि 'उद्दीपन' विभाव हैं, ताटका की ओर राम का प्रस्थान करना तथा उस पर दृढ़तापूर्वक बाणों का प्रहार करना 'अनुभाव' है और राम की निर्भीकता एवं धैर्य 'व्याभिचारिभाव' है ।

वीररस का विस्तार द्वितीय अङ्क से आरम्भ हो जाता है । अपने गुरु के धनुर्भङ्ग होने के कारण उत्तेजित होकर परशुराम, जिन्होंने रावण के मद को ध्वस्त करने वाले कार्तवीर्य की सहस्र भुजाओं को अपने कुठार से छिन्न-भिन्न कर दिया तथा इक्कीस बार सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति का संहार किया, जनक के कन्यान्तःपुर में राम को खोजते हुए चले आ रहे हैं । राम को इस बात की प्रसन्नता है कि आज उनकी भेंट जामदग्न्य जैसे पराक्रमी वीर से हो रही है - ***'कुमार!***

---

१. *महावीरचरितम्* - भवभूति, १/३५ ।

अलं तावत्त्वरया' कहकर जब सखियाँ उन्हें रोकने का प्रयास करती हैं तब राम का उत्तर – ***'नोत्सवा: परावधीरणावैरस्यमर्हन्ति'*** उनके अदम्य उत्साह को व्यक्त करता है । परशुराम के स्वभाव की उग्रता उनके गले में लटकते हुए कुठार, कन्धे पर रखे हुए तूणीर और हाथ में स्थित बाण से व्यक्त हो जाती है । राम का आत्म-विश्वास भी कम नहीं है । वे दोनों रूपों में परशुराम की सेवा करने में समर्थ हैं । उनका हाथ, जहाँ एक ओर तपस्वी मुनि के चरणस्पर्श के लिए आगे बढ़ना चाहता है वही दूसरी ओर वह अपने अभिनव धनुर्विद्या के प्रयोग के लिए भी आतुर है । वे राम को तीक्ष्ण परशु दिखाते हैं । राम धैर्यपूर्वक उस परशु को देखकर उसका उपहास करते हैं । जामदग्न्य के जीवन में इस प्रकार का यह प्रथम अवसर था । अद्भुत वीर को प्राप्त कर रोमाञ्चित हो उठे और वे राम को अपने हृदय से लगाने की इच्छा प्रकट करते हैं। राम का आत्म-गौरव परशुराम की इस इच्छा का अभिनन्दन नहीं करता । ***'भगवन्! परिरम्भणं प्रस्तुत प्रतीपमेतत्'*** कहकर वे सौजन्यपूर्वक अपनी भावना व्यक्त करते हैं ।

महावीर राम के शरीर को देखकर परशुराम अनुमान कर लेते हैं कि वह शरीर सातों भुवनों को अभयदान देने की क्षमता रखता है । उनके उस रूप को देखकर अनेक प्रकार की कल्पनायें परशुराम के मन में उत्पन्न होने लगती हैं, जो राम के वीरता को व्यक्त करती है ।[1] राम के साहसपूर्ण व्यङ्ग्य-***'भार्गव! ज्ञायते मामनुकम्पस इति'*** तथा ***'आ:, सत्यमेव करुणाया परिक्षिप्तोऽसि'*** जहाँ एक ओर उनके धैर्य को अभिव्यक्त करता हैं, वहीं दूसरी ओर जामदग्न्य को उत्तेजित भी करता है । उनको सुनकर परशुराम भी उसी आवेश में स्वयं अपनी प्रशंसा करने लगते हैं । उनके मुख से माता का सिर काटने, गर्भस्थ बालकों का वध करने तथा क्षत्रियों का सामूहिक संहार की बात सुनकर राम कहते हैं - ***'नृशंसता तो पुरुष का दोष है, इसमें प्रशंसा की क्या बात है ?'*** राम का यह वाक्य परशुराम को असह्य हो जाता है। उनके 'गर्व'

---

१. *महावीरचरितम्* - २/४१ ।

की उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्ति हुई है –

'आः निर्भय क्षत्रियबटो ! अति नाम प्रगल्भसे' -

प्रहर नमस्तु चापं प्राक्प्रहारप्रियोऽहं मयि तु कृतनिघाते किं विदध्यात्परेण ।

झटिति विततवह्न्युद्गारभास्वत्कुठारप्रविघटितकठोरस्कन्धबन्धः कबन्धः ।।[1]

इस पर जनक और शतानन्द इसी समय प्रवेश कर राम को धनुष उठाने से रोक देते हैं। जब तक गुरुजनों की आज्ञा न हो तब तक राम कैसे प्रहार कर सकते हैं । इसी बीच राम को कङ्कणमोचन की विधि सम्पन्न करने के लिए अन्तःपुर में बुलाया जाता है । राम कहते हैं- *'जामदग्न्य ! गुरुजनों का यह आदेश है'* परशुराम उन्हें जाने की अनुज्ञा प्रदान करते हुए कहते हैं-*'जाओ! लोक धर्म का पालन करो । तुम्हें ज्ञाति-जन देख लें । किंतु हम अरण्यवासी नगर में अधिक समय तक नहीं ठहरते। मुझे जाना है। समय नष्ट न करना।'* अन्तःपुर का कार्य समाप्त करने के पश्चात् गुरुजनों की उपस्थिति में राम पूर्ण विश्वास के साथ घोषणा करते हैं –

पौलस्त्यविजयोद्दामकार्तवीर्यार्जुनद्विषम् ।

जेतारं क्षत्रवीर्यस्य विजयेय नमोऽस्तु वः ।।[2]

राम की यह घोषणा वीररस के व्यभिचारिभाव 'गर्व' की अभिव्यक्ति करती है ।[3] राम की इस गर्वपूर्ण युक्ति को परशुराम कैसे सहन करते । वे उनका उपहास करते हुए कहते हैं – *'आओ; राजकुमार ! जामदग्न्य को जीतोगे'* । फिर वे मुस्कुराकर कहते हैं - *'नहीं जीत*

---

१. *महावीरचरितम्* - भवभूति, २/४९ ।

२. *महावीरचरितम्* - भवभूति, ३/४५ ।

३. *आत्मनो यो गरीयस्त्वभातो गर्वः स ईरितः* - भावप्रकाशन - शारदातनय, द्वितीय अधिकार ।

सकोगे'। दुर्दान्त परशुराम तुम्हारा काल है ।[1] इस प्रकार कहते हुए जब वे अपना धनुष उठाते हैं तब तृतीय अङ्क समाप्त हो जाता है । चतुर्थ अङ्क में वीररस की स्थिति उतनी नहीं दिखती । पञ्चम अङ्क में राम और बालि के मिलन में वीररस की अभिव्यञ्जना हुई है । बालि का सामर्थ्य असाधारण है ।[2] उसे इस बात का हर्ष कि परशुराम को पराजित करने वाले राम से मिलकर उसके युद्धाभिलाष की पूर्ति हो जायगी । राम से मिलने पर वह गर्वपूर्वक कहता है-***'अस्मिन्विश्रुतजामदग्न्यदमने पाणौ धनुर्जृम्भताम्'*** । परन्तु राम शस्त्रविहीन पर शस्त्र कैसे उठायें? बालि ने राम के भाव को समझ लिया । वह हँसकर कहता है-***'हे महाक्षत्रिय! हम लोग दया के पात्र नहीं है जो आप इस प्रकार दया दिखा रहें है । हम अपने पराक्रम से विश्व में विख्यात है, स्वयं अपने मुख से क्या कहें । युद्ध के लिए तैयार हो जाओ । फिर भी यदि तुम्हारा आग्रह है कि मै शस्त्र उठाऊँ तो ये पर्वत ही मेरे शस्त्र है ।'*** कितना विश्वास है बालि को अपने पराक्रम पर ! उसका यह 'गर्व' सर्वथा स्वाभाविक है । राम का भी आत्मविश्वास कम नहीं है । दोनों ही इस युद्ध के अवसर को प्राप्त कर प्रसन्न हैं और दोनों ही अपनी विजय में पूर्णतया आश्वस्त हैं । एक दूसरे को सम्बोधित कर वे कहते हैं -

कामं त्वया सह श्लाघ्यो वीरगोष्ठीमहोत्सवः ।

किन्त्विदानीमतिक्रान्ते त्वय्यवीरा वसुन्धरा ।।[3]

'महावीरचरितम्' में वीररस के अतिरिक्त अन्य रस भी प्राप्त होते हैं । तृतीय अङ्क में रौद्ररस की प्रधानता है । वशिष्ठ और विश्वामित्र द्वारा जामदग्न्य को शान्त करने का प्रयत्न

---

१. *जामदग्न्यः -- एहि मन्ये राजपुत्र! जामदग्न्यं विजेष्यते । (सस्मितम्), न हि विजेष्यसे ।*
दुर्दान्तो हि रेणुकातनयस्त्वदन्तकः - महावीरचरितम्, तृतीय अङ्क का अन्तिम भाग, पृष्ठ ७८ ।

२. *महावीरचरितम्* - ५/४५ ।

३. *महावीरचरितम्* - ५/५२ ।

सकोगे'। दुर्दान्त परशुराम तुम्हारा काल है ।[१] इस प्रकार कहते हुए जब वे अपना धनुष उठाते हैं तब तृतीय अङ्क समाप्त हो जाता है । चतुर्थ अङ्क में वीररस की स्थिति उतनी नहीं दिखती । पञ्चम अङ्क में राम और बालि के मिलन में वीररस की अभिव्यञ्जना हुई है । बालि का सामर्थ्य असाधारण है ।[२] उसे इस बात का हर्ष कि परशुराम को पराजित करने वाले राम से मिलकर उसके युद्धाभिलाष की पूर्ति हो जायगी । राम से मिलने पर वह गर्वपूर्वक कहता है-*'अस्मिन्विश्रुतजामदग्न्यदमने पाणौ धनुर्जृम्भताम्'* । परन्तु राम शस्त्रविहीन पर शस्त्र कैसे उठायें? बालि ने राम के भाव को समझ लिया । वह हँसकर कहता है-*'हे महाक्षत्रिय! हम लोग दया के पात्र नहीं है जो आप इस प्रकार दया दिखा रहें है । हम अपने पराक्रम से विश्व में विख्यात है, स्वयं अपने मुख से क्या कहें । युद्ध के लिए तैयार हो जाओ । फिर भी यदि तुम्हारा आग्रह है कि मै शस्त्र उठाऊँ तो ये पर्वत ही मेरे शस्त्र है ।'* कितना विश्वास है बालि को अपने पराक्रम पर ! उसका यह 'गर्व' सर्वथा स्वाभाविक है । राम का भी आत्मविश्वास कम नहीं है । दोनों ही इस युद्ध के अवसर को प्राप्त कर प्रसन्न हैं और दोनों ही अपनी विजय में पूर्णतया आश्वस्त हैं । एक दूसरे को सम्बोधित कर वे कहते हैं -

कामं त्वया सह श्लाघ्यो वीरगोष्ठीमहोत्सवः ।

किन्त्विदानीमतिक्रान्ते त्वय्यवीरा वसुन्धरा ॥[३]

'महावीरचरितम्' में वीररस के अतिरिक्त अन्य रस भी प्राप्त होते हैं । तृतीय अङ्क में रौद्ररस की प्रधानता है । वशिष्ठ और विश्वामित्र द्वारा जामदग्न्य को शान्त करने का प्रयत्न

---

१. *जामदग्न्यः -- एहि मन्ये राजपुत्र! जामदग्न्यं विजेष्यते । (सस्मितम्), न हि विजेष्यसे ।*
दुर्दान्तो हि रेणुकातनयस्त्वदन्तकः - महावीरचरितम्, तृतीय अङ्क का अन्तिम भाग, पृष्ठ ७८ ।

२. *महावीरचरितम्* - ५/४५ ।

३. *महावीरचरितम्* - ५/५२ ।

मालतीमाधवम् - रसाभिव्यक्ति

मालतीमाधवम् भवभूति का *'प्रकरण'* ग्रन्थ है । नाट्यशास्त्र के अनुसार 'प्रकरण' में केवल ***श्रृङ्गार*** को ही अङ्गीरस बनाया जा सकता है । इसलिये भवभूति ने 'मालतीमाधवम्' में *श्रृङ्गार रस* को ही प्रधानता दी है। इस प्रकरण में श्रृङ्गार रस की दो धाराएँ प्रवाहित होती हैं- एक मालती और माधव के प्रेम की तथा दूसरी मदयन्तिका और मकरन्द के प्रेम की । नाट्यसिद्धान्त के अनुसार[१] कवि ने पहले इस प्रकरण की नायिका मालती के हृदय में अनुराग का बीजारोपण किया है । प्रथम अङ्क में ही कामन्दकी सूचित करती है कि मालती ने अपने भवन की वलभी के वातायन से मार्ग पर घूमते हुए माधव को ऐसा देखा, जैसे रति साक्षात् कामदेव को देख रही हो । उत्कण्ठा के कारण उसके अङ्ग म्लान और मन व्यथित हो गया है। मालती के पूर्वराग के इस वर्णन में नयन-प्रीति, अभिलाष, उद्वेग आदि अनेक कामदशाओं की ओर भवभूति ने सङ्केत किया है, जिसमें माधव 'आलम्बन' विभाव तथा उसका बार-बार मालती के भवन के सामने से निकलना 'उद्दीपन' विभाव है । मालती के अङ्गों का म्लान होना, हृदय में वेदना होना आदि 'अनुभाव' तथा औत्सुक्य आदि व्यभिचारिभावों का भी अनुमान सहज ही किया जा सकता है ।

माधव के मन में अनुराग का उदय उस समय होता है जब मालती को मदनोद्योन में पहली बार देखता है । कामदेवायतन के समीप चारों ओर खिले हुए पुष्पों का मधुर सुगन्ध, फूलों पर मँडराते हुए भ्रमरों का मनोहर गुञ्जन, आदि 'उद्दीपन' विभाव है । ऐसे मादक वातावरण में माधव की दृष्टि ही 'आलम्बन' बनती है ।

---

१. *साहित्यदर्पण* - ६/२२४ ।

मालती, प्रथम दर्शन में ही माधव के नेत्रों में अतिशय आनन्द उत्पन्न कर उसके अन्तःकरण को आकर्षित कर लेती है । इस प्रसङ्ग में 'सम्भोग' शृङ्गार का वर्णन होने के कारण मालती और माधव दोनों ही 'रति' नामक स्थायी भाव के आश्रय हैं, इस प्रकार दोनों एक दूसरे के लिए 'आलम्बन' विभाव हैं, और एक के 'अनुभाव' दूसरे के लिए 'उद्दीपन' विभाव बन जाते हैं । माधव को देखने पर मालती के अनुभाव के रूप में व्यक्त हुए स्निग्ध दृष्टि के विविध रूप माधव के रति भाव को परिपुष्ट करने वाले उद्दीपन बन जाते हैं । भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में दृष्टि के छत्तीस प्रकार बताते हैं ।[1] उनमें से अद्भुत, कान्ता, मुकुलिता, स्निग्धा आदि अनेक दृष्टियों का प्रयोग मालती प्रथम मिलन में ही माधव पर कर देती है ।[2]

मालती न तो माधव के निकट आती है और न अपने मुख से एक भी शब्द कहती है । उसके पास वे भाव ही जिसे उसने कई दिनों से अपने हृदय में सँजोकर रखा था, माधव के समक्ष व्यक्त करने का एकमात्र साधन है । वह नयनों से ही अपने हृदय की बात कह सकती है और यही उसने किया भी । जाते समय मालती ने मुड़कर जो कटाक्ष किया था वह तो माधव के हृदय में बस गया था ।

भवभूति ने मालती की शृङ्गार-दृष्टियों का वर्णन करने के पूर्व ही उसके विचित्र विभ्रम, शृङ्गार-चेष्टाओं तथा सात्त्विक भावों का भी चित्रण कर दिया है । मालती माधव को पहले भी कई बार देख चुकी है । उसका मन्मथव्यथाविकार *'बहुदिवसोपचीयमान'* था, इसलिए उसके अङ्ग *'परिमृदितमृणाली'* के समान म्लान थे और उसके कपोल पाण्डु हो गये थे -

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा, सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा ।
तस्याः सखे नियतमिन्दुकलामृणालज्योत्स्नादिकारणमभून्मदनश्च वेधाः ॥[3]

---

१. *नाट्यशास्त्र* - आचार्य भरत - ८/३८-४२ ।

२. *भवभूति के नाटक* - डॉ० ब्रज वल्लभ शर्मा, पृष्ठ १५८ ।

३. *मालतीमाधवम्* - भवभूति, १/२२ ।

यहाँ मालती की कामदशाएँ-कृशता, विषय-निवृत्ति, पाण्डुता आदि ध्वनित होती है । हृदय जब प्रेम से अभिषिक्त होता है तो अनेकानेक भाव, जो पहले कभी अनुभव में नहीं आये थे, आविर्भूत होने लगते हैं। माधव के हृदय में प्रेम का बीजारोपण होने पर दो विरोधी भावों-जड़ता और ताप का सुन्दर समन्वय कवि ने किया है, जिसमें माधव की उन्मादावस्था की अभिव्यक्ति होती है ।[१]

मदनोद्यान में माधव और मालती के मिलन के प्रसङ्ग में अन्योन्यालम्बन श्रृङ्गार का वर्णन कर कवि ने मालती के चले जाने पर माधव की विरहावस्था का चित्रण किया है । वियोग में प्रिय व्यक्ति का चित्र बनाना मन बहलाने का अच्छा साधन माना गया है । मालती माधव का चित्र बना चुकी है, जिसे देखकर माधव का रतिभाव और अधिक उद्दीप्त होता है। उसी चित्र-फलक पर माधव मालती का चित्राङ्कन आरम्भ करता है परन्तु वह चित्र बना नहीं पाता । अनेक सात्त्विक भाव-अश्रु, जाड्य, स्तम्भ, स्वेद वेपथु आदि मिलकर उसे आक्रान्त कर देते हैं ।

जब मकरन्द माधव को घर की ओर ले जाने लगता है तब वह 'उन्माद' की अवस्था में पवन को सम्बोधित कर प्रलाप करने लगता है । चिन्ता द्वारा भी उसके रतिभाव का परिपोषण हुआ है । अपने चारों ओर उसे मालती ही मालती दिखाई दे रही है । कभी वह इस ओर आती है, तो कभी वह उस ओर, कभी सामने आकर खड़ी हो जाती है, कभी पीछे चली जाती है, कभी भीतर हृदय में प्रवेश करती है, कभी बाहर निकल कर दूर जाती हुई दिखाई देती है; कभी वह आसपास घूमती है और कभी वह तिरछी आँख से देखने लगती है -

अभिहन्ति हन्त कथमेष माधवं सुकुमारकायमनवग्रहः स्मरः ।
अचिरेण वैकृतविवर्तदारुणः कलभं कठोर इव कूटपाकलः ॥[२]

---

१. *मालतीमाधवम्* - १/३० ।

२. *मालतीमाधवम्* - १/३० ।

मालती की विरहावस्था भी माधव से किसी प्रकार कम नहीं है । वह अपनी प्रिय सखी लवङ्गिका के साथ एकान्त में बैठकर दायिताश्रयिणी कथा द्वारा अपने दुःख को कुछ कम करने का प्रयास करती है । उसके पास मन बहलाने के दो साधन हैं-एक तो माधव द्वारा प्रदत्त बकुलमाला और दूसरा माधव द्वारा निर्मित चित्र । परन्तु ये दोनों ही वस्तुएं मालती को माधव के प्रेम का विश्वास दिलाकर उसकी वेदना को उद्दीप्त कर देती हैं । उसे स्मरण हो जाती है मदनोद्यान की वह घटना जब उसने माधव को निकट से देखा था । इस समय कितना मनोहर था प्रिय का दर्शन । 'धन्य' हैं वें लड़कियां जो तुम्हें नहीं देखती हैं, अथवा देखकर भी जो अपने हृदय को वश में रख पाती हैं - कहती हुई वह रो पड़ती है । उसका मनोराग तीव्र विष के समान फैलता ही जा रहा था । अन्य कामदशाएँ चक्षुःप्रीति, चिन्तासङ्ग भी स्पष्ट हो जाती हैं जब वह आँखों को भरकर कहती है-'अपराधिनी तो मैं ही हूँ जो अधीर होकर निर्लज्जता से बार-बार देखती रही ।

मालती के 'मार्दव' और 'सौकुमार्य' के साथ ही उसकी 'कृशता' और 'पाण्डुता' की ओर सङ्केत कर कामन्दकी ने भी उसकी विरहावस्था को व्यक्त किया है । मालती की इस विरहावस्था में भी परिव्राजिका कामन्दकी उसकी कल्पना ***'सङ्कल्पनिर्मित प्रिय समागम'*** का अनुमान कर लेती हैं ।

नीवीबन्धोच्छ्वसनमधरस्पन्दनं दोर्विषादः,
स्वेदश्चक्षुर्मसृणमुकुलाकेकरस्निग्धमुग्धम् ।
गात्रस्तम्भः स्तनमुकुलयोरुत्प्रबन्धः प्रकम्पो
गण्डाभोगे पुलकपटलं मूर्च्छना चेतना च ।।[१]

यहाँ मालती के नीवीबन्धः की शिथिलता से अनुराग की उत्कटता, अधर स्पन्दन से

---

१. *मालतीमाधवम्* - भवभूति - २/५ ।

'स्फुटित' चुम्बन, दोर्विषाद से आलिङ्गन का सुख, स्वेद से आयास, गात्रस्तम्भ से अति हर्ष, स्तनों के प्रकम्प से प्रिय का गाढालिङ्गन, गण्डमण्डल के पुलक पटल से प्रिय चुम्बन और मूर्च्छना से निरतिशय आनन्द का अनुमान कर ***टीकाकार जगद्धर*** ने सम्भोग शृङ्गार की पूर्ण सामग्री उपस्थित कर दी है ।[1] ***त्रिपुरारि*** ने भी इस पद्य में अनुभाव निबन्ध से परिपुष्ट तथा समुचित आलम्बन और व्यभिचारिभावों की प्रतीति के कारण सम्भोग शृङ्गार की कल्पना की है। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि मालती एकान्त में बैठकर अपनी प्रियसखी को अपनी विरह व्यथा सुना रही है । कामन्दकी, मालती को दूर से देखकर ही, उसके सङ्कल्प निर्मित प्रिय समागम का अनुमान करती है । यह प्रिय समागम मालती के सङ्कल्प से निर्मित मान लिया जाय तब भी यहाँ सम्भोग शृङ्गार कहना उचित नहीं होगा क्योंकि सम्भोग में प्रेमी व प्रेमिका का संयोग तथा दोनों की एक स्थान पर उपस्थिति अनिवार्य है । केवल नायिका को देखकर नायक की उपस्थिति की कल्पना कर लेने से ही सम्भोग शृङ्गार की उत्पत्ति नहीं हो सकती । फिर यहाँ तो यह कल्पना स्वयं नायिका की भी नहीं है । अपितु चीरचीवरधारिणी ब्रह्मचारिणी परिव्राजिका कामन्दकी की है ।[2]

मालती के हृदय की करुण वेदना और माधव के प्रति उसका प्रगाढ़ प्रेम उस समय व्यक्त होता है जब वह नगरदेवता के मन्दिर में विघ्न-नाश की कल्पना करने के लिए भेजी जाती है । नन्दन के साथ उसका विवाह होने वाला है । अब तक उसे इस जीवन में माधव से मिलने की कोई आशा नहीं रही है परन्तु वह नन्दन के साथ विवाह भी कैसे स्वीकार करे । वह तो हृदय से माधव को ही स्वीकार कर चुकी है, अतः इस मन्दिर में प्राणों का उत्सर्ग कर देना ही उसके लिए एकमात्र श्रेयस्कर उपाय है । मृत्यु के पूर्व वह अपने प्रियतम के दर्शन भी नहीं

---

१. ***भवभूति के नाटक*** - डॉ० ब्रज वल्लभ शर्मा - पृष्ठ १६१ ।

२. *वही* - पृष्ठ १६५ ।

कर सकी । वह प्रियसखी लवङ्गिका के सम्मुख अपनी इच्छा व्यक्त करती है जो नैराश्य और कातरता से आपूर्ण होने के कारण अत्यन्त करुण है । 'विप्रलम्भ' को भवभूति ने पराकाष्ठा पर पहुँचाकर अब सम्भोग का सुमधुर दृश्य प्रस्तुत करते हैं । प्रियसखी से अपने मरण की अनुमति प्राप्त करने के लिए जब मालती उसके चरणों में झुकती है तो लवङ्गिका सङ्केत से माधव को बुलाकर अपने स्थान पर खड़ा कर देती है और स्वयं वहाँ से हट जाती है । लवङ्गिका की भाषा में माधव, मालती से कहता है –***'सरले! इस दुस्साहस को त्याग दे । मैं तेरे विरह के दुःख को सहन करने में असमर्थ हूँ ।'*** परन्तु मालती उठेगी हीं नहीं, जब तक कि लवङ्गिका उसका मरण स्वीकार नहीं कर लेती है । अतः माधव फिर लवङ्गिका की भाषा में कहता है-*'मैं क्या करूँ ? वियोग का दारुण दुःख देने वाली, जो तेरी इच्छा हो वही कर, उठ, मुझे आलिङ्गन कर ।'* मालती हर्ष के साथ उठकर उसका आलिङ्गन करती है । आलिङ्गन आनन्द का अनुभव भी आज उसे कुछ अन्य प्रकार का हो रहा है; परन्तु आँखों में आसुओं की बाढ़ आ जाने के कारण वह अपनी सखी को नहीं देख पाती । अन्तिम समय में कही जाने वाली अनेकानेक बातें अपनी सखी से कहकर मालती प्रियतम द्वारा निर्मित उस बकुलमाला को अपने गले से निकालकर लवङ्गिका के गले में डालने लगती है । माधव को देखते ही वह सहसा दूर हट जाती है और भय से कम्पित हो उठती है ।

इसी समय कामन्दकी ने प्रवेश कर स्थिति को सँभाल लिया । वह मालती की कायरता से अनभिज्ञ नहीं थी । उसने चक्षुः प्रीति, चिन्तासङ्ग, तनुग्लानि आदि कामदशाओं का स्मरण करते हुए मालती को बताया कि -*'वही तुम्हारा प्रिय युवक तुम्हारे सामने उपस्थित है । अब तुम जड़ता को छोड़ दो ।'* तदुपरान्त वह माधव और मालती को, दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाने का उपदेश देकर विवाह की विधि सम्पन्न करने के लिए अपने विहार में भेज देती हैं -

प्रेयो मित्रं, बन्धुता वा समग्रा सर्वे कामाः, शेवधिर्जीवितं वा ।

स्त्रीणां भर्ता, धर्मदाराश्च पुंसामित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु।।[1]

'सम्भोग' शृङ्गार की एक और झलक उस समय प्राप्त होती है जब ग्रीष्मकालीन सायन्तन स्नान से निवृत्त होकर मालती और माधव दीर्घिका तट के समीप शिलातल पर बैठे हैं और माधव मालती से आलिङ्गन की अभिलाषा व्यक्त करता है । इस प्रसङ्ग में भवभूति ने सद्यःस्नाता नायिका की 'कान्ति' और 'शोभा' का सुन्दर चित्रण किया है ।

यहाँ पर महाकवि भवभूति ने वात्स्यायन[2] के 'कामसूत्र' के आधार पर यह दृश्य उपस्थित किया है । जिसका आश्रय लेकर अवलोकिता मालती को अनुकूल बनाने के लिए असत्य भाषण भी कर जाती है । मालती के 'अनुभाव' सिर हिलाना, असूया से अवलोकिता की ओर देखना, लज्जित होना आदि प्रयोग भी कामसूत्र के ही निर्देशानुसार है । पाश्चात्य दृष्टि से मालती व माधव का यह 'सम्भोग' चाहे निर्बल दिखायी देता हो, परन्तु कवि ने यहाँ नायिका की शालीनता को पराकाष्ठा पर पहुँचाकर भारतीय रमणी के उच्च आदर्श की रक्षा कर ली है । 'मालतीमाधवम्' में शृङ्गाररस की दूसरी धारा मदयन्तिका और मकरन्द के प्रेम में प्रवाहित हो रही है, जिसका सङ्केत प्रस्तावना में ही कामन्दकी और अवलोकिता के वार्तालाप में प्राप्त हो जाता है । मालती के हृदय में रतिभाव का उद्गम माधव के दर्शन से होता है, मदयन्तिका और मकरन्द का प्रथम मिलन अत्यन्त असाधारण परिस्थितियों में था । मिलन के अवसर पर माधव का हृदय मालती के नयन-बाणों से घायल हो गया था, परन्तु प्रथम मिलन के पूर्व ही मकरन्द का तो शरीर ही शार्दूल द्वारा क्षत-विक्षत कर दिया है । मदयन्तिका उसे सम्भालती है । बुद्धरक्षिता कहती है – 'यह वही है ।' मदयन्तिका 'स्पृहा' के साथ उसको देखने लगती है ।

---

१. *मालतीमाधवम्* -भवभूति, ६/१८ ।

२. *कामसूत्र - वात्स्यायन*, अधिकरण ३ , अध्याय २, पृष्ठ - ४१३ ।

बुद्धरक्षिता को उन दोनों के परस्परावलोकन से विश्वास हो जाता है कि उनके हृदय एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो गये हैं । कामन्दकी ने तो दोनों की दृष्टि से ही उनके आकर्षण का अनुमान कर लिया है ।[1] मदयन्तिका स्वयं अपनी अभिलाषा व्यक्त करती है-*'सखि ! मुझे जीवन दान देने वाले क्या फिर कभी दर्शन देंगे ?'*

इस प्रकार भवभूति ने दोनों के प्रणय शृङ्गार को चित्रित किया है । जिस समय मदयन्तिका पलङ्ग पर बैठकर अपने प्रणय की कथा सखियों को सुना रही है, उसी समय वहाँ मकरन्द भी उसी पलंग पर सो रहा है- नहीं, सोने का बहाना कर सब कुछ सुन रहा है । मदयन्तिका यह नहीं जानती कि जिसके विरह में व्याकुल होकर वह अपनी वेदना का वर्णन कर रही है, वह उसके पास ही है । वह निःसंकोच अपनी व्यथा सखियों को सुनाने लगती है । वह उस घटना को नहीं भूल पाती हैं । जब मकरन्द से उसका प्रथम मिलन हुआ था । वह सखी को उस दृश्य का स्मरण कराती है जब मकरन्द ने शार्दूल के प्रहार को अपने विशाल वक्षस्थल पर सहन कर उसके प्राणों की रक्षा की थी । उसकी 'स्मृति' ही अब मदयन्तिका के जीवन का अवलम्ब है । मकरन्द का नाम सुनते ही वह पुलकित हो उठती है ।[2] इस प्रकार नाट्यशिल्प की दृष्टि से मालती के उदात्त शृङ्गार की तुलना में मदयन्तिका के शृङ्गार को हीन बताना भी आवश्यक था । वैसे प्राचीन शास्त्रकारों के अनुसार तो इस प्रकार के वातावरण में अश्लीलत्व भी दोष नहीं रहता अपितु गुण बन जाता है ।

शृङ्गार रस के अतिरिक्त अन्य रसों को भी भवभूति ने दर्शाया है । जब लवङ्गिका और मदयन्तिका को यह ज्ञात हुआ कि मालती का कहीं पता नहीं लग रहा है, माधव का हृदय सहस्रधा विदीर्ण होने लगता है, मन में मालती के अनिष्ट की शङ्का होने लगती है । वामनेत्र

---

१. *मालतीमाधवम्* - ४/२ ।

२. *मालतीमाधवम्* - ७/१ ।

फड़कने लगता है और वह सर्वथा हताश हो जाता है । मालती के आश्चर्यचकित पर्यवसान पर वह अत्यन्त व्यथित है । उसके विलाप में मोह, निःश्वास, रुदन आदि द्वारा ***करुण रस*** की ही अभिव्यक्ति हुई है ।[1] 'दलति हृदयं गाढोद्वेगं..[2]' में अपनी व्यथा का वर्णन करता है ।

माधव की ऐसी दशा देखकर मकरन्द व्याकुल हो उठता है । कभी वह निःश्वास लेता है, कभी उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं । वह माधव के जीवन की आशा छोड़ चुका है । प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य की ओर माधव का ध्यान आर्कषित कर मकरन्द उसकी वेदना को कम करने का प्रयास करता है, परन्तु मालती के वियोग में प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता भी माधव को असह्य हो गयी है ।

कालिदास के विरही यक्ष के समान माधव भी मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रियतमा के पास सन्देश भेजता है ।[3] उसका उन्माद बढ़ता ही जाता है । मालती की स्मृति माधव की व्यथा को अधिक बढ़ा देती है । वह उच्च स्वर में 'मयूर', चकोर, वानर आदि प्राणियों से मालती से सम्बन्ध में प्रशन करता है, परन्तु उसका कहीं पता नहीं लगता । यहाँ पर सम्भवतः भवभूति ने ***'वाल्मीकीयरामायण'*** से प्रेरणा ली होगी, जहाँ सीता-हरण के बाद राम वन-वन घूमते हुए मृगनयनी सीता को खोजते हैं । इस प्रकार मालती का पता लगाते हुए माधव थक जाता है और निराश होकर मूर्च्छित हो जाता है ऐसी दशा देखकर मकरन्द अत्यन्त व्यथित होता है –

भारः कायो जीवितं वज्रकीलं,
काष्ठाः शून्या निष्फलानीन्द्रियाणि ।
कष्टः कालो मां प्रतित्वत्प्रयाणे,
शान्तलोकः सर्वतो जीवलोकः ॥[1]

---

१. *मालतीमाधवम्* - ९/११ ।

२. *मालतीमाधवम्* - ९/१२ ।

३. *मालतीमाधवम्* - ९/२६ ।

दशम अङ्क के आरम्भ में भी करुण रस है । मालती को आलम्बन बनाकर कामन्दकी, लवङ्गिका और मदयन्तिका को करुण रस का आश्रय बनाया गया है । फिर भूरिवसु को आलम्बन बना कर मालती के हृदय में करुण का उत्कर्ष दिखाया गया है । इसी प्रकार पञ्चम अङ्क के अन्तर्गत श्मशान वर्णन में भवभूति ने वीभत्स रस का अद्भुत चित्रण किया है ।[१]

माधव और अघोरघण्ट के वाग्युद्ध में रौद्र और वीर रस की स्थिति है[२] तथा मालती और कपालकुण्डला के प्रति माधव और अघोरघण्ट की उक्तियाँ वीर रस को अभिव्यक्ति करती हैं ।[३] इसी प्रकार मालतीमाधवम् में अद्भुत[४] और भयानक[५] रस के भी दृष्टान्त हैं ।

---

१. *मालतीमाधवम्* - ५/१६ ।

२. *मालतीमाधवम्* - ५/२९ ।

३. *मालतीमाधवम्* - ५/३२ ।

४. *मालतीमाधवम्* - ५/१३ ।

५. *मालतीमाधवम्* - ५/१५ ।

अध्याय - ६

भाव-सौन्दर्य

काव्य सौन्दर्य

महाकवि भवभूति की काव्य प्रतिभा संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अपूर्व है । उनके भावों की अभिव्यक्ति सहृदय के हृदय पर अमिट प्रभाव छोड़ जाती है, जिसका निदर्शन उनके तीनों नाटकों में परिलक्षित होता है । वे मानव हृदय की गहराइयों में प्रवेश कर नाना प्रकार के भावों के मूल-स्रोत तक पहुँच जाते हैं तथा उन भावों का पूर्णतः विश्लेषण करते हुए विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं । यह विस्तार कहीं-कहीं कथोपकथन की गति में अवरोध उत्पन्न करता है, परन्तु वह भावों की स्पष्ट एवं विशद अभिव्यक्ति होने के कारण रस-निष्पत्ति में सहायक है । भवभूति ने अपने सभी नाटकों में अर्थ-गौरव का परिचय दिया है । 'महावीरचरितम्' में ***'भार्गव! ज्ञायते मामनुकम्पस इति'*** से राम का स्वाभिमान और ***'मय्येव भ्रुकुटीधरः संवृत्तः'*** से भार्गव का क्रोध व्यक्त हो जाता है । 'महावीरचरितम्' में ***'धन्याः खलु ताः कन्यका यास्त्वां न प्रेक्षन्ते । प्रेक्ष्य वात्मनो हृदयस्य प्रभवन्ति'*** द्वारा माधव के प्रति मालती की आसक्ति, ***'निर्व्यूढं च निष्करुणतया तातस्यापि कापालिकत्वम्'*** से पिता के प्रति उनका रोष तथा ***'नाहं किमपि जानामि'*** से नववधू की स्वाभाविक लज्जा स्पष्ट हो जाती है ।

'उत्तररामचरितम्' में भी छोटे-छोटे वाक्यों द्वारा राम के प्रति सीता के असाधारण प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है । ***'रामभद्र***-(इत्यर्धोक्ते साशङ्कम्) ***महाराज!*** में कञ्चुकी द्वारा प्रयुक्त केवल दो सम्बोधनों से वत्स के प्रति उस वृद्ध सेवक का चिरसञ्चित स्नेह तथा 'नूतन राजा' रामचन्द्र के कोप की आशङ्का पूर्णतया व्यक्त हो जाती है । ***आर्य गृष्टे! अप्यनामयमस्याः प्रजापालकस्य मातुः,*** से कौशल्या के प्रति जनक की उदासीनता तथा राम के प्रति उनके उपालम्भ को, ***'आः कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने'*** से सीता की पवित्रता के प्रति जनक के अखण्ड विश्वास तथा अग्नि के प्रति उनके रोष को व्यक्त करने के लिए सहायक है।

सुकुमार तथा कठोर दोनों प्रकार के भावों को सफलतापूर्वक व्यक्त करने में भवभूति समर्थ दिखते हैं । उनकी यह विशेषता है कि वे सुकुमार भावों की अभिव्यक्ति के लिए कोमलकान्तपदावली का प्रयोग करते हैं और वीरतापूर्ण और कठोर भावों को व्यक्त करते समय उनकी भाषा कठोर व्यञ्जनों से युक्त एवं समासबहुला हो जाती है ।[१]

उनकी भाषा भावों की अनुगामिनी है । अनुचित कार्य करने पर मन भीतर-ही-भीतर स्वयं व्यथित होता रहता है और अन्तस्तल की यह पीड़ा कभी-कभी इतना अधिक हो उठती है कि मनुष्य अपने आप से घृणा करने लगता है । महावीरचरितम् के पञ्चम अङ्क में बालि राम का वध करने के लिए आ रहा है, परन्तु वह जानता है कि ऐसा करना अनुचित है, अतः उसका मन उसे धिक्कारने लगता है । उत्तररामचरितम् के प्रथम अङ्क में राम की आत्मग्लानि का भवभूति ने निरूपण किया है ।[२] वेदना की भी अभिव्यक्ति करने में भवभूति अद्वितीय है ।[३] वात्सल्य की अभिव्यञ्जना में भी वे पूर्णतया सफल रहे हैं ।[४] पुत्रों के प्रति वात्सल्य तथा पति के प्रति प्रेम इन दोनों भावों का सुन्दर सम्मिश्रण उत्तररामचरितम् के तृतीय अङ्क में प्राप्त होता है।
राम के दर्शन से लव के हृदय में सहसा भाव-परिवर्तन हो जाता है -

विरोधो विश्रान्तः प्रसरति रसो निर्वृतिघन,

स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजपि विनयः प्रह्वयति माम् ॥[५]

मालतीमाधवम् में कई ऐसे स्थल भी हैं जहाँ अनेक भावों अभिव्यक्ति एक साथ हुई है।

---

१. *महावीरचरितम्* - ३/२९,४० *मालतीमाधवम्* - ५/३४, *उत्तररामचरितम्* - ५/९ इत्यादि ।

२. *उत्तररामचरितम्* - १/४५-४९ ।

३. *मालतीमाधवम्* - ९/१२,२० *उत्तररामचरितम्* - २/२६, ३/३१,३८, ४/३ ।

४. *उत्तररामचरितम्* - ४/४, ६/२२, *मालतीमाधवम्* - १०/५,६ ।

५. *उत्तररामचरितम्* - ६/११ ।

माधव जब श्मशान में तलवार के प्रहार से अघोरघण्ट का वध कर मालती की रक्षा करता है तब उनके मन में अनेक प्रकार के भाव एक साथ उदित होते हैं –

आतङ्काद्विकलं द्रुतं करुणया विक्षोभितं विस्मयात्

क्रोधेन ज्वलितं मुदा विकसितं चेतः कथं वर्तताम् ।।[१]

उत्तररामचरितम् में भी राम के अप्रत्याशित दर्शन से सीता के मन में प्रादुर्भूत अनेक भावों का तमसा ने सुन्दर चित्रण किया है ।[२] भवभूति हृदय में उपस्थित हो रहे भावों को कभी-कभी सहसा दूसरी ओर मोड़ देते हैं । ऐसे स्थल विशेष रूप से चमत्कारयुक्त हैं । राम को देखकर बालि के हृदय में आनन्द, विस्मय आदि अनेक भाव उत्पन्न होते हैं, परन्तु यह सोचकर कि उनके साङ्गत्य का सुख सम्भव नहीं है उनके भाव सहसा दूसरी ओर मुड़ जाते हैं और वह कहता है –

आनन्दाय च विस्मयाय च मया दृष्टोऽसि दुःखाय वा

वैतृष्ण्यं तु ममापि सम्प्रति कुतस्त्वद्दर्शने चक्षुणः ।

त्वत्साङ्गत्यसुखस्य नास्मि विषयस्तत्किं वृथाव्याहृतै,

रस्मिन्विश्रुतजामदग्न्यदमने पाणौ धनुर्जृम्भताम् ।।[३]

उत्तररामचरितम् में भी इसी प्रकार वासन्ती अपने शोक के आवेग को तीव्र उपालम्भ के रूप में व्यक्त करते-करते सहसा रुक जाती है –

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं

त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ।

---

१. *मालतीमाधवम्* - ५/२८ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - ३/१३ ।

३. *महावीरचरितम्* - ५/४९ ।

इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां

तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण ।।[१]

यहाँ वासन्ती का रोष शब्दों द्वारा उतना अभिव्यक्त नहीं हो पाता जितना कि उसके मौन से हो गया । राम के प्रति अपने आक्रोश की तीव्रता और पीड़ा की गहनता उसने इन शब्दों में व्यक्त की है –

अयि कठोर यशः किल ते प्रियं

किमयशो ननु घोरमतः परम् ।

किमभवद्विपिने हरिणीदृशः

कथय नाथ कथं बत मन्यसे ?[२]

भावों को अभिव्यक्त करते समय भवभूति ने औचित्य का भी ध्यान रखा है जिसमें उनकी भावाभिव्यक्ति स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक हो गयी है । 'महावीरचरितम्' के चतुर्थ अङ्क में राम के पास सीता के वन-गमन के अवसर पर जनक गर्वपूर्वक सन्तोष को व्यक्त करते हैं – ***'वत्से! धन्यासि यस्यास्ते गुरुनियोगत एव भर्तुरनुगमनं जातम्'*** परन्तुदशरथ सीता के विषय में चिन्ताकुल होकर शोक की अभिव्यक्त करते है – ***'हा वत्से जानकि! कङ्कणधरेव रक्षसामुपहारीकृतासि ।'*** बुरे के दिनों में अतीत की सुखद स्मृति भी दुःखदायिनी हो जाती है । वाल्मीकि के आश्रम में कौशल्या को देखकर जनक की पुरानी बातों का स्मरण हो जाता है और उस सुख की स्मृति से उनका हृदय अधीर हो जाता है –

यदस्याः पत्युर्वा रहसि परमं दूषितमभू -

दभवं दम्पत्योः पृथगहमुपालम्भविषयः ।

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ३/२६ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - ३/२७ ।

प्रसादे कोपे वा तदनुमदधीनो विधिरभू-

दलं वा तत्समृत्वा दहति यदवस्कन्ध हृदयम् ॥[1]

इस तरह राम ने भी अतीत के आनन्द की स्मृति से उत्पन्न होने वाली व्यथा की अभिव्यक्ति उत्तररामचरितम् में की है । भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से वे स्थल भी विशेषतः महत्त्वपूर्ण है जहाँ भवभूति के पात्र अपने आवेग को शब्दों द्वारा व्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं । अनेक प्रकार से अपने भाव को स्पष्ट करने का प्रयास करने पर भी वे उसे पूर्णतया व्यक्त करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं, और ऐसे अवसर पर उनकी यह असमर्थता ही भवभूति को इस विषय में अधिक समर्थ सिद्ध कर देती है । राम को इस प्रकार की कठिनाई का अनुभव उस समय हुआ जब वे सीता के स्पर्श से प्राप्त आनन्द को व्यक्त करना चाहते थे -

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा,

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।

तव स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो,

विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च ॥

स्पर्शजन्य आनन्द की अभिव्यक्ति का ऐसा ही दृष्टान्त हमें उत्तररामचरितम् में अन्यत्र भी प्राप्त होता है ।[2]

वर्णन-सौन्दर्य

भवभूति में वर्णन की असाधारण क्षमता है । उन्होंने सामाजिक की जिज्ञासा के लिए

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ४/१४ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - ३/११ ।

बहुत कम स्थान दिया है । किसी वस्तु की ओर सङ्केत मात्र करते हुए आगे बढ़ जाना उन्हें पसन्द नहीं । वे वर्ण्य-विषय के अङ्ग-प्रत्यङ्ग का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं और फिर सशक्त शब्दों में विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए उसका स्पष्ट चित्र उपस्थित कर देते हैं । इस कार्य में वे अलङ्कारों की सहायता लेना आवश्यक नहीं समझते । अलङ्कारों की अपेक्षा उन्हें अपनी शब्दशक्ति पर अधिक विश्वास है। उनके शब्दों का चयन भी वर्ण्य-विषय के अनुरूप ही होता है । इसीलिए उत्तररामचरितम् में दाण्डायन द्वारा किए गये आश्रम-वर्णन तथा मालतीमाधवम् में माधव द्वारा प्रस्तुत श्मशान-वर्णन में इतना वैषम्य है ।

प्रायः सभी कवियों को नारी के सौन्दर्य-वर्णन में अधिक आनन्द प्राप्त होता है, पुरुष के शारीरिक सौन्दर्य की ओर उनका उतना ध्यान नहीं जा पाता,परन्तु भवभूति ने नारी के सौन्दर्य के प्रति विशेष पक्षपात नहीं दिखाया है। पुरुष के रूप-वर्णन में भी उन्होंने उतनी ही रुचि दिखलायी है। महावीरचरितम् के प्रथम अङ्क में राजा कुशध्वज का ध्यान राम के मनोमुग्धकारी रूप पर पहुँच जाता है।[१] द्वितीय अङ्क में राम ने जागदग्न्य के उग्र-शान्त वेश का सुन्दर चित्रण किया है।[२] उत्तररामचरितम् के प्रथम अङ्क में सीता ने राम के रूप-सौन्दर्य की ओर सङ्केत किया है।[३] पुरुष के रूप-वर्णन के समान ही पुरुषोचित गुणों का भी विशद वर्णन भवभूति ने किया है । लव की वीरता[४], पराक्रम[५], और उत्साह[६], का वर्णन उत्तररामचरितम् के पञ्चम अङ्क में प्राप्त होता है । छठें अङ्क में कुश के प्रभावशाली व्यक्तित्व[७] का वर्णन राम के मुख से कराया गया है ।

---

१. *महावीरचरितम्,* १/१८ ।

२. *महावीरचरितम्,* २/२६ ।

३. *उत्तररामचरितम्,* पृष्ठ १२ ।

४. *उत्तररामचरितम्,* ५/२ ।

५. *उत्तररामचरितम्,* ५/६ ।

६. *उत्तररामचरितम्,* ५/९ ।

७. *उत्तररामचरितम्,* ६/९ ।

नारी के सौन्दर्य वर्णन की अपेक्षा उन्हें बाल्यावस्था की मुग्धकारिणी सरलता विशेष प्रिय है । मालतीमाधवम् में कामन्दकी ने मालती के तथा उत्तररामचरितम् में जनक ने सीता के बाल-रूप का स्मरण किया है ।[१] राम ने भी सीता के शिशु मुख का ही वर्णन किया है ।[२] नारी के भीषण रूप की ओर भी कवि की दृष्टि गयी है । महावीरचरितम् के प्रथम अङ्क में लक्ष्मण ने ताटका के भयङ्कर रूप का वर्णन किया है ।[३]

महाकवि भवभूति ने पशु-पक्षियों के भी अनेक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं । वाल्मीकि आश्रम के बालकों द्वारा किया गया अश्व-वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है ।[४] मालतीमाधवम् में वानरों की प्रणय-केलि[५], हाथी का अपनी सहचरी के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार[६], तथा विरही हाथी की शोचनीय अवस्था[७], का विशद वर्णन उपलब्ध होता है । गज की प्रेम-लीला[८], तथा सपत्नीक मयूर के कूजन[९] का वर्णन उत्तररामचरितम् में भी किया गया है ।

---

१. *मालतीमाधवम्* - १०/२, *उत्तररामचरितम्* - ४/४ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - १/२० ।

३. *महावीरचरितम्* - १/३५,३९ ।

४. *उत्तररामचरितम्* - ४/२६ ।

५. *मालतीमाधवम्* - ९/३१ ।

६. *मालतीमाधवम्* - ९/३२-३४ ।

७. *मालतीमाधवम्* - ९/३३ ।

८. *उत्तररामचरितम्* - ३/१६ ।

९. *उत्तररामचरितम्* - ३/१८ ।

भवभूति के वर्णनों में उनकी सूक्ष्मदर्शिता स्पष्टतया परिलक्षित होती है । प्रिय-दर्शन के समय मुग्धा नायिका की अवस्था का चित्रण कामन्दकी इन शब्दों में करती है –

स्खलति वचनं ते संश्रयत्यङ्गमङ्गं

जनयति मुखचन्द्रोद्भासिनः स्वेदबिन्दून् ।

मुकुलयति च नेत्रे सर्वथा सुभ्रु खेद-

स्तवयि विलसति तुल्यं वल्लाभालोकनेन ॥[१]

प्रिय-समागम की कल्पना से मुग्धा नायिका की अवस्था में जितने परिवर्तन होते हैं, उन सभी का सङ्कलन सूक्ष्मदर्शिता के साथ कर दिया गया है –

'नीवीबन्धोच्छवसनमधरस्पन्दनं दोर्विषादः' इत्यादि से स्पष्ट होता है कि शास्त्रों में गिनाये गये सात्त्विक भाव भवभूति द्वारा किए गये इस वर्णन के लिए पर्याप्त नहीं थे । उत्तररामचरितम् में राम के अकस्मात् दर्शन से सीता हृदय में उठने वाले अनेक भावों का तमसा ने सूक्ष्म विश्लेषण किया है ।[२] भवभूति कभी-कभी एक ही बात को अनेक प्रकार से समझाने लगते हैं । मालती के प्रति अपनी आसक्ति को व्यक्त करते हुए माधव कहता है –

लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च-

प्रत्युप्तेव च वज्रलेपघतितेवान्तर्निखातेव च ।

सा नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पञ्चभि-

श्चिन्तासन्तिततन्तुजालनिबिडस्यूतेव लग्ना प्रिया ॥

ऐसे स्थलों पर वर्णन विस्तारयुक्त हो गया है । अपने विषय को पूर्णतया स्पष्ट करने के

---

१. *मालतीमाधवम्* - ३/८ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - ३/१३ ।

लिए ही कवि ने ऐसा किया है । ऐसे स्थल भवभूति की उर्वरा कल्पना एवं वर्णन-शक्ति के परिचायक हैं । इसके विपरीत वे कहीं-कहीं प्रवाहयुक्त वाणी में तीव्र गति से वर्णन करते चलते हैं। महावीरचरितम् में महाराज दशरथ के पास भेजा गया कैकेयी का सन्देश इसी प्रकार का उदाहरण है –

अस्त्वेकेन वरेण वत्स भरतो भेक्ताधिराज्यस्य ते-

यात्वन्येन विहाय कालहरणं रामो वनं दण्डकाम् ।

तस्यां चीरधरश्चतुर्दशसमास्तिष्ठत्वसौ तं पुनः

सीतालक्ष्मणमात्रकात्परिजनादन्यो न चानुव्रजेत् ।।[१]

भवभूति के वे वर्णन हृदय-स्पर्शी हैं, जहाँ उन्होंने अपने शब्दों द्वारा चित्र अङ्कित कर दिया है । वनगमन के समय राम का अनुकरण करते हुए आबालवृद्ध प्रजाजनों का वर्णन युधाजित् इस प्रकार करते हैं –

स्कन्धारोपितयज्ञपात्रनिचयाः स्वैर्वाजपेयार्जितै-

श्छत्रैवरियितुं तवार्ककिरणांस्ते ते महाब्राह्मणाः ।

साकेताः सहमैथिलैरनुपतत्पत्नीगृहीताग्नयः

प्राक्प्रस्थापितहोमधेनव इमे धावन्ति वृद्धा अपि ।।[२]

मालतीमाधवम् में नदियों के सङ्गम पर सद्यः स्नाता वधुओं का तथा *उत्तररामचरितम्* में मुग्धा नायिका के प्रति नायक के प्रणय-मान का चित्र सुस्पष्ट और सुन्दर है । कभी-कभी भवभूति

---

१. *महावीरचरितम् - ४/४१ ।*

२. *महावीरचरितम् - ४/५७ ।*

के वर्णनों में चित्र-चित्र की झांकी भी दृष्टिगोचर होती है । *महावीरचरितम्* में गगनचारी जटायु को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि क्रम से चार चित्र आंखों के सामने उपस्थित हो जाते हैं –

दूतं हृतश्चित्रमृगेण राम-

स्तया दिशा गच्छति लक्ष्मणोऽपि ।

ततः परिव्राडुटजं प्रविष्टो-

धिग्व्यक्तरूपो दशकन्धरोऽयम् ॥

भवभूति के वर्णन की एक और विशेषता यह है कि वे केवल शब्दों से ही नहीं अपितु ध्वनि के द्वारा भी वर्ण्य-विषय को स्पष्ट कर देते हैं । महावीरचरितम् में शिव-धनुष की टङ्कार-ध्वनि[२], मालतीमाधवम् के श्मशान-वर्णन में उल्लुलों का 'घूत्कार', स्यारों का 'डात्कार' और नदी के जल की 'घर्घर-ध्वनि'[३] तथा उत्तररामचरितम् में गोदावरी का 'गद्गद नाद' का भावानुसार शब्द चित्र उपस्थित किया है ।

कल्पना-सौन्दर्य

भवभूति की कल्पना का सौन्दर्य उनके तीनों नाटकों में दृष्टिगोचर होता है । वर्णन किसी व्यक्ति का हो या घटना का, किसी वस्तु का हो या मनोभाव का, युद्ध का हो या श्मशान का, प्रकृति के कोमल अङ्ग का हो या भयानक रूप का, उनकी कल्पना का सौन्दर्य हृदयावर्जक है ।

मालती के रूप-वर्णन में कवि की कल्पना कितनी उदात्त है । उन्होंने मालती की रमणीयता, सौन्दर्य, सृजन, के उपकरण एवं सर्जक के विषय की यह कल्पना देखने योग्य है –

---

१. *महावीरचरितम्* - १/५४ ।

२. *मालतीमाधवम्* - ५/१९ ।

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा

सौन्दर्यसारससमुदायनिकेतनं वा ।

तस्या: सखे नियतमिन्दुसुधामृणाल

ज्योत्स्नादिकारणमभून्मदनश्च वेधा: ।।[1]

यहाँ पर प्रथम पंक्ति से मालती की आकर्षण का तथा द्वितीय में उसके सौन्दर्य का अनुमान किया जा सकता है । अन्तिम दो पंक्तियों में कवि ने उन उपकरणों की जिनसे मालती के अङ्ग-प्रत्यङ्ग का निर्माण किया गया था, उसके निर्माता की कल्पना की है । 'चन्द्र' से उसके मुख का, 'सुधा' से अधर का, 'मृणाल' से भुजाओं का तथा 'ज्योत्स्ना' से लावण्य का निर्माण आदि से कल्पना की जाती है कि उसके अन्य अङ्गों के सृजन के उपकरण कमल, किसलय आदि रहे होगें । ऐसे रूप का स्रष्टा कामदेव ही हो सकता है, ब्रह्मा नहीं ।

विरही माधव की मृत्यु के लिए कवि ने जिन साधनों की कल्पना की है वे कितने सुन्दर और उपयुक्त हैं । यह मालती के विरह में माधव की व्यथा से पता चलता है । वेदना की असह्यता के कारण वह अपने जीवन के प्रति निरपेक्ष हो गया है । वह सदा मृत्यु को अपने पास बुलाने का प्रयत्न करता रहता है । मृत्यु के अनेक साधन हो सकते हैं । माधव शीघ्र मृत्यु प्राप्त करने के लिए, उन सभी साधनों का प्रयोग करता है –

धत्ते चक्षुर्मुकुलिनि रणत्कोकिले बालचूते,

मार्गे गात्रं क्षिपति बकुलामोदगर्भस्य वायो: ।

दाहप्रेम्णा सरसबिसिनीपत्रमात्रान्तराय,

स्ताम्यन्मूर्ति: श्रयति बहुशो मृत्यवे चन्द्रपादान् ।।

---

१. *मालतीमाधवम्* - १/२२ ।

यहाँ इनसे अधिक कठोर साधनों की कल्पना अनुचित हो जाती, इसलिए कवि की कल्पना का विस्तार अमात्य भूरिवसु कर विभूतियों के वर्णन में देखा जा सकता है ।[१] अत्यन्त सूक्ष्म और रम्य कल्पना का उदाहरण मालती-माधव के अष्टम अङ्क में उपलब्ध होता है जहाँ माधव-मालती के कपोल की कान्ति की ओर लवङ्गिका का ध्यान आकर्षित करता है –

बाष्पाम्भसा मृगदशो विमलः कपोलः-

प्रक्षाल्यते सपदि राजत एव यस्मिन् ।

गण्डूषपेयमिव कान्त्यमृतं पिपासु-

रिन्दुर्निवेशितमयूखमृणालदण्डः ॥

भवभूति की उर्वरा कल्पना नवीन मौलिक उपमाओं का सृजन करने में समर्थ थी; अतः उन्हें उपमाओं के चयन में प्राचीन कवियों की सहायता लेने अथवा उनका अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं हुई । निम्नलिखित पद्य से उनकी कल्पना की समृद्धि का कुछ अनुमान किया जा सकता है–

एकीकृतस्त्वचि निषिक्त इवावपीडय-

निर्भुग्नपीनकुचकुड्मलयानया मे ।

कर्पूरहारहरिचन्दन चन्द्रकान्त-

निःस्यन्दशैवलमृणाल हिमादिवर्गः ॥[२]

कालिदास ने ***दीपशिखा*** की सुन्दर कल्पना की है परन्तु भवभूति ने दीपशिखा के

---

१. *मालतीमाधवम्* - ६/५ ।

२. *मालतीमाधवम्* - ६/१२ ।

अभाव की सुन्दर कल्पना की है । मालती के अभाव में लवङ्गिका की दशा का वर्णन कामन्दकी इस प्रकार करती है –

उज्जलालोकया स्निग्धा त्वया त्यक्ता न राजते ।

मलीमसमुखी वर्तिः प्रदीपशिखया यथा ।।[१]

उत्तररामचरितम् में भी भवभूति की मौलिक कल्पना के अनेक दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। मेघदूत में 'चकितहरिणीप्रेक्षणा' की कल्पना की जा चुकी थी, परन्तु उत्तररामचरितम् में एक वर्ष के कुरङ्गशावक की विलोल दृष्टि की कल्पना की गयी है –

त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोल दृष्टे-

स्तस्याःपरिस्फुरितगर्भभरालसायाः ।

ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा-

क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता ।।[२]

लता के रूप में देह की कल्पना तो अन्य कवियों ने भी की है, परन्तु शरीर में मृदुता का अतिशय बतलाने के लिए उनकी तुलना बाल-मृणाल से करना तथा उसमें शुभ्रता, कान्ति और आह्लादकत्व दिखाने के लिए उसे ज्योत्स्नामयी बतलाना भवभूति की कल्पना के वैशिष्ट्य को सिद्ध करता है । नाटक में करुणा का भाव बाहुल्य होने के कारण इस उदाहरण में कल्पना भी करुण हो गयी है ।

प्रणय-चित्रण

महाकवि भवभूति की शृङ्गार-भावना बहुत उदात्त है । उनकी यह मान्यता है कि प्रेम का

---

१. *मालतीमाधवम्* - १०/१४ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - ३/२८ ।

प्रादुर्भाव अकस्मात् होता है । प्रेम की उत्पत्ति के लिए किसी बाह्य कारण की अपेक्षा नहीं होती और न उसमें किसी प्रकार का स्वार्थ निहित रहता है ।[1] उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रेम की उत्पत्ति युगपत् और पूर्वापर दोनों प्रकार से बतलायी है । ***महावीरचरितम्*** में राम और सीता का तथा लक्ष्मण और उर्मिला का प्रेम युगपत् प्रेम का उदाहरण है जहाँ प्रथम दर्शन में प्रेम का परस्पर प्रादुर्भाव हो जाता है । पूर्वापर प्रेम ***मालतीमाधवम्*** में प्राप्त होता है जहाँ मालती तथा मदयन्तिका के हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है । उनके इस प्रेम से माधव तथा मकरन्द सर्वथा अनभिज्ञ है । कुछ समय के उपरान्त जब माधव को मालती का तथा मकरन्द को मदयन्तिका के दर्शन का अवसर प्राप्त होता है तब इन दोनों के हृदय में प्रेम की उत्पत्ति होती है । भवभूति के अनुसार प्रेम का प्रादुर्भाव प्रथम दर्शन से ही हो जाता है ।

माधव मदनोद्यान में मालती के प्रथम दर्शन से ही उसकी ओर आकृष्ट हो गया था और मकरन्द शार्दूल से मदयन्तिका के प्राणों की रक्षा करते समय उसके प्रथम दर्शन से ही उसमें आसक्त हो गया था । प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण भी महाकवि ने बड़ी कुशलता से किया है । महावीरचरितम् में प्रेम को अधिक विकसित करने का अवकाश नहीं था । शृङ्गार का पल्लवन वीररस प्रधान नाटक में दोष बन जाता, अतः कवि ने शृङ्गार की ओर सङ्केत मात्र कर दिया है, उसका विस्तार नहीं किया । नव-विवाहिता सीता ने परशुराम की ओर बढ़ते हुए राम का धनुष पकड़ कर उन्हें रोकने का प्रयास अवश्य किया है, परन्तु उस समय राम का उतना ध्यान सीता की ओर नहीं था जितना कि परशुराम की ओर । वियोगावस्था का चित्रण भवभूति को विशेष प्रिय है अतः इस नाटक में उन्होंने अवसर निकाल कर राम की विरहावस्था का चित्रण किया है।

---

१. *'स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्षश्च विप्रतिषिद्धमेतत्'* - उत्तररामचरितम्, षष्ठ अङ्क, पृष्ठ १२७ । तथा, *'व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुर्न खलु बहिरूपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते'*-उ०च०,६/१२ ।

प्रणय को पूर्णतया विकसित करने का अवसर कवि को 'मालतीमाधवम्' में मिला । यहाँ प्रेम के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का विस्तारपूर्ण वर्णन किया गया है । हृदय में प्रेम होने पर माधव का ध्यान मालती की विभिन्न श्रृंगार-चेष्टाओं पर जाने लगता है । प्रेम-व्यापार की दृष्टि का मूल्य बहुत अधिक होता है । इसलिए कवि ने मालती की कटाक्षों का वर्णन चार पद्यों में किया है ।[१] प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था में माधव की मनःस्थिति का भी सुन्दर चित्रण दो पद्यों में किया गया है ।[२] मालती के प्रेम में वह पागल-सा हो गया है । उसे चारों ओर मालती ही मालती दिखाई देती हैं ।[३] तन्मयत्व के साथ उसके हृदय में तीव्र ज्वाला भी है ।[४] माधव के प्रेम में मालती की भी यही दशा है । उसकी वेदना भी असह्य है ।[५] तृतीय अङ्क में मालती की कामावस्था का विस्तृत वर्णन किया गया है, परन्तु भवभूति की सतर्कता के कारण माधव और मालती के प्रेम का उत्कर्ष पूर्णतया संयत और मर्यादित रहता है । भवभूति की श्रृङ्गार-भावना विशुद्ध प्रेम पर आधारित है । वे एक पत्नीव्रत में विश्वास करते हैं । उनकी कृतियों में सपत्नियों के ईर्ष्या-द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं ।

मालतीमाधवम् में मालती और माधव का तथा मदयन्तिका और मकरन्द का प्रेम-विवाह के पूर्व ही पूर्णतया विकसित हो जाता है । प्रेम का प्रादुर्भाव होने पर सम्पूर्ण नाटक में विवाह के लिए प्रयत्न चलता रहता है और विवाह होने पर प्रकरण समाप्त हो जाता है । उत्तररामचरितम् में राम और सीता के आदर्श दाम्पत्य-प्रेम का सुव्यवस्थित चित्रण किया गया है । प्रथम अङ्क में विवाहित जीवन की सरसता का सुन्दर वर्णन है ।[६] सीता का स्पर्श पाकर उनके वचनों को

---

१. *मालतीमाधवम्* - १/२६-२९ ।

२. *मालतीमाधवम्* - १/३०-३१ ।

३. *मालतीमाधवम्* - १/४० ।

४. *मालतीमाधवम्* - १/४१ ।

५. *मालतीमाधवम्* - २/१ ।

६. *उत्तररामचरितम्* - १/२४,२७ ।

सुनकर राम को अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है । प्रसुप्ता सीता के प्रति उन्होंने जिस भाव को व्यक्त किया है वह पत्नी के सर्वाङ्गीण सुखदायित्व को सिद्ध करता है –

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-

रसावस्याः स्पर्शो वपुषिबहुलश्चन्दनरसः ।

अहं बाहुःकण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः,

किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ।।[१]

भवभूति का दाम्पत्य प्रेम अत्यन्त उज्ज्वल और भव्य है। वह सुख और दुःख में समान रहता है । जो जीवन की सभी अवस्थाओं में व्याप्त रहता है, जिसमें हृदय को विश्राम मिलता है, जिसके रस को वृद्धावस्था भी नहीं हर सकती है, जो समयानुसार विवाह से मृत्युपर्यन्त परिपक्व प्रेम के सारभाग में स्थित है, उस दाम्पत्य का वह अनिर्वचनीय और विलक्षण आनन्द सर्वथा अभीष्ट है । पति-पत्नी के प्रेम की पराकाष्ठा की ऐसी उत्कृष्ट कल्पना अन्यत्र दुर्लभ है ।

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य-

द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।

कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं,

भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते ।।[२]

प्रणय-चित्रण में भवभूति की एक और विशेषता द्रष्टव्य है । उत्तररामचरितम् में राम और सीता एक-दूसरे गुणों पर मुग्ध हैं । बाह्य रूप पर उनका ध्यान नहीं जाता । प्रथम अङ्क में राम के चित्र को देखकर उनके शारीरिक सौन्दर्य की ओर सीता ने केवल एक बार सङ्केत मात्र

---

१. *उत्तररामचरितम्* - १/३८ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - १/३९ ।

किया है ।[1] प्रथम अङ्क में राम सीता के शिशु-मुख का स्मरण करते हैं –

प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै-

र्दशनमुकुलै मुग्धालोके शिशुर्दधती मुखम् ।

ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रम-

रकृतमधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकैः ॥[2]

भवभूति का रूप-वर्णन पूर्णतया सात्त्विक है । उधर सीता को राम के *'शिखण्डमुग्धमुखमण्डल'* को देखकर अपने पिता के विस्मय का ध्यान आ रहा है तो उधर राम को सीता के बाल-रूप दर्शन से अपनी माताओं के कुतूहल का स्मरण होता है ।

प्रेम की तीव्रतम अवस्था का चित्रण करते समय भी भवभूति ने कहीं लोक व्यवहार एवं मर्यादा की अवहेलना नहीं की है । माधव के वियोग में मालती को चाहे अपने प्राणों का ही परित्याग क्यों न करना पड़े, किन्तु वह अपने कुल की प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आने देती है –

ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावखण्डकलः शशी-

दहतु मदनः किं वा मृत्योः परेण विधास्यति ।

मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया-

कुलममलिनं न त्वेवायं जनो न च जीवितम् ॥[3]

---

१. सीता - *'अहो, दलन्नवनीलोत्पलश्यामलास्निग्धमसृण शोभमानमांसलेन देहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्यमानसौम्यसुन्दरश्रीरनादरखण्डितशङ्करशरासनः शिखण्डमुखमण्डल आर्यपुत्र आलिखितः'* - उत्तररामचरितम् - डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, टीका पृष्ठ ३२ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - १/२० ।

३. *मालतीमाधवम्* - २/२ ।

उत्तररामचरितम् का सम्पूर्ण कथानक ही लोकाराधन के लिए प्रेम का बलिदान है । दण्डकारण्य में परिचित स्थानों के दर्शन से राम जब पूर्व स्मृतियों के कारण अत्यन्त विह्वल हो जाते हैं और फूट-फूट कर रोने लगते हैं, उस समय भी वे अपने प्रजाजनों से इस अपराध के लिए क्षमा-याचना करना नहीं भूलते ।[१]

भवभूति का प्रणय-चित्रण अत्यन्त गंभीर है । वह केवल ऊहात्मक नहीं है अपितु उसका आधार अन्तस्तल की अनुभूति है । इस पवित्र और सुख-दुःख में समान रहने वाले दाम्पत्य प्रेम की पराकाष्ठा संतान है जो पति-पत्नी के हृदयों को एक-दूसरे से बाँध देता है । इस प्रकार अपत्य दो प्रेमी हृदयों के आनन्द की ग्रन्थि है ।[२]

प्रकृति-वर्णन

महाकवि भवभूति ने अपने तीनों नाटकों में अनेक स्थानों पर प्रकृति का यथार्थ और सुन्दर चित्रण किया है । प्रकृति के प्रति उनके मन में असीम अनुराग है । भवभूति ने प्रकृति को निकट से देखा है और उसके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित कर लिया है । उन्हें प्रकृति का केवल कोमल और रम्य रूप ही प्रिय नहीं है अपितु उसके कठोर एवं भयावह रूप को भी उतनी ही तन्मयता के साथ उन्होंने चित्रित किया है ।

महावीरचरितम् में प्रायः सभी स्थानों पर प्रकृति का चित्रण आलम्बन रूप में किया गया है । पञ्चम अङ्क में जटायु ने प्रस्रवण पर्वत का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार श्रमणा मतङ्गाश्रम के समीप की भूमि, ऋष्यमूक पर्वत तथा पम्पा सरोवर और उन वनस्थलियों का वर्णन करती है जहाँ बहती हुई नदियों तथा झरनों का शीतल और स्वच्छ जल, पशु-पक्षियों

---

१. *'न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं ..... ।'* - उत्तररामचरितम् - ३/३२ ।

२. ***उत्तररामचरितम्*** - ३/१७ ।

द्वारा आक्रान्त वृक्षों की शाखाओं से गिरे हुए पुष्पों के कारण सुगन्धित हो जाता है तथा कहीं भालुओं की गुर्राहट की प्रतिध्वनि होने से भयङ्कर शब्द उठ रहा है और कहीं करि-कलभों द्वारा दलित शल्लकी के शीतल तथा कषाय रस की सुगन्ध चारों ओर फैल रही है।[१] सप्तम अङ्क में कावेरी तट के सुन्दर स्थलियों की प्राकृतिक शोभा का आकर्षक तथा मनोहर चित्रण किया गया है।[२] सन्ध्या-वर्णन भी इसी अङ्क में है जहाँ उदयाचल की गोद में सूर्य को अपनी वृद्धावस्था व्यतीत करते हुए चित्रित किया गया है ।[३]

यद्यपि मालतीमाधवम् में प्रकृति-वर्णन आलम्बन और उद्दीपन-दोनों रूपों में प्राप्त होता है, फिर भी उसमें प्रधानता प्रकृति के आलम्बन रूप को ही दी गयी है । प्रकृति के वर्ण्य-विषयों का क्षेत्र महावीरचरितम् की अपेक्षा मालतीमाधवम् में अधिक विस्तृत हो गया है । कामन्दकी के विहार के पीछे फैले हुए उद्यान की शोभा दर्शनीय है ।[४] पद्मावती के निकट की अरण्य-भूमि दक्षिणारण्य के पर्वतों का स्मरण कराती है ।[५] भवभूति का प्रकृति-वर्णन स्थिति के अनुरूप है । सौदामिनी लवणा नदी का वर्णन सरल शब्दों में करती है परन्तु श्मशान में बहने वाली नदी का वर्णन उससे सर्वथा भिन्न है । सिंधु नदी के तट प्रपात से उत्पन्न तुमुल-ध्वनि का वर्णन सौदामिनी के मुख से कराया गया है ।[६] माधव ने गीष्म और वर्षा के सन्धि-काल का सुन्दर

---

१. *महावीरचरितम्* - ५/४०-४१ ।

२. *महावीरचरितम्* - ७/१३ ।

३. *महावीरचरितम्* - ७/२३ ।

४. *मालतीमाधवम्* - ६/१९ ।

५. *मालतीमाधवम्* - पृष्ठ १७७ ।

६. *मालतीमाधवम्* - ९/३ ।

चित्रण किया गया है ।[1] पर्वत-शिखर पर आश्रित नूतन मेघ पर भी उसका ध्यान पहुँच गया ।[2] सन्ध्या समय का यथार्थ चित्र कपालकुण्डला ने पञ्चम अङ्क में प्रस्तुत किया ।[3] नवम् अङ्क में सौदामिनी मध्याह्न का चित्र अङ्कित करती है ।[4] प्रकृति के दर्शन से मानव को एक आह्लादमयी अनुभूति होती है । मकरन्द को विश्वास है कि प्रकृति के सौन्दर्य का अवलोकन करने से विरही माधव की वेदना कम हो जायेगी, अतः वह प्रकृति के सुखदायी रूप की ओर अपने मित्र का ध्यान आकर्षित करता है, परन्तु प्रकृति का आननदमय रूप भी वियोग की दशा में अत्यन्त कष्टप्रद प्रतीत होता है ।[5]

माधव कभी वायु को उपालम्भ देता है और कभी उससे अनुनय-विनय करता है । उद्दीपन का कार्य प्रकृति वियोग में ही नहीं, संयोग में भी करती है । अष्टम अङ्क के आरम्भ में निशीथ की यौवनश्री का वर्णन सम्भोग-शृङ्गार के उद्दीपन की दृष्टि से क्रिया गया है ।[6]

अलङ्कार-विधान में भी कवि ने प्रकृति का उपयोग किया है । मालतीमाधवम् के नवम अङ्क में माधव की दृष्टि में मालती की काया भौतिक काया से ऊपर उठकर प्रकृति के सुन्दर उपकरणों में खो गयी है । मालती का ससीम सौन्दर्य प्रकृति के असीम सौन्दर्य में लीन हो गया है । यहाँ पर सभी उपमान प्रकृति से ही ग्रहण किये गये हैं ।

---

१. *मालतीमाधवम्* - ९/१७ ।

२. *मालतीमाधवम्* - ९/२४ ।

३. *मालतीमाधवम्* - ५/६ ।

४. *मालतीमाधवम्* - ९/७ ।

५. *मालतीमाधवम्* - ९/१३-१६ ।

६. *मालतीमाधवम्* - ८/१ ।

'उत्तररामचरितम्' में मानव का प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध दिखलायी पड़ता है । यहाँ प्रकृति स्वयं मानवीय रूप धारण कर रङ्गमञ्च पर आती है तथा नाटक के अन्य पात्रों के साथ सहानुभूति प्रकट करती है, उनकी सहायता करती है और उनके सुख-दुःख में भाग लेती है। पृथिवी तथा भागीरथी, तमसा, मुरला और गोदावरी एवं वनदेवी वासन्ती का योगदान नाटक में कितना महत्त्वपूर्ण है ।

'उत्तररामचरितम्' का आरम्भ भले ही राजभवन में हुआ हो, परन्तु प्रथम अङ्क की समाप्ति के पश्चात् नाटक का सम्पूर्ण कार्य-व्यापार प्रकृति के विशाल प्राङ्गण में ही सम्पन्न होता है । प्रथम अङ्क में भी कवि ने चित्र-वीथिका में प्रकृति के अनेक सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किये हैं । तपोवन[१], प्रस्रवण गिरि[२], पम्पा सरोवर[३] तथा माल्यवान् पर्वत[४] के दृश्य सराहनीय हैं । द्वितीय अङ्क में प्रकृति के रम्य[५] और भयावह[६] दोनों रूपों के दर्शन होते हैं । भवभूति ने प्रकृति का निरीक्षण कितनी सूक्ष्मदर्शिता के साथ किया है, इसका निदर्शन भी इसी अङ्क में प्राप्त होता है । कई वर्ष व्यतीत होने पर राम को पञ्चवटी के आस-पास की वनभूमि को देखने का अवसर मिला था । इतने समय में प्रकृति में भी परिर्तन होना स्वाभाविक था । भवभूति ने इन प्राकृतिक परिवर्तनों को विभिन्न दृष्टिकोण से अङ्कित किया है ।[७] द्वितीय अङ्क की समाप्ति पर नदियों के सङ्गम का मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है।[८]

---

१. *उत्तररामचरितम्* , १/२५ ।

२. *उत्तररामचरितम्* , पृष्ठ १७ ।

३. *उत्तररामचरितम्* , १/३१ ।

४. *उत्तररामचरितम्* , १/३३ ।

५. *उत्तररामचरितम्* , २/१४, २३, २४, २५ ।

६. *उत्तररामचरितम्* , २/१६, २९ ।

७. *पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां विपर्यासं यातो धनविरलभावः क्षितिरुहाम् ।*
बहोदृष्टिं कालादपरमिव मन्येवनमिदं निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति ॥ उ०-२/२७ ।

८. *उत्तररामचरितम्* - २/३० ।

तृतीय अङ्क में भवभूति के प्रकृति-चित्रण का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है । इस अङ्क में दो नदियाँ-तमसा और मुरला तथा वनदेवी वासन्ती मानवीय देह धारण कर रङ्गमञ्च पर उपस्थित होती हैं । अगस्त-पत्नी लोपामुद्रा ने मुरला द्वारा गोदावरी के पास जो सन्देश भेजा है, उसमें भी प्रकृति द्वारा पुरुष के प्रति सहानुभूति की अपेक्षा की गई है ।[१]

गङ्गा की गोद में सीता ने पुत्रों को जन्म दिया । पृथ्वी और गङ्गा ने सीता को सुरक्षित स्थान में पहुँचाया । स्वयं गङ्गा ने सीता के दोनों पुत्रों को स्तन्य-त्याग के पश्चात् महर्षि वाल्मीकि को समर्पित किया ।[२] भवभूति की लेखनी का स्पर्श पाकर जड़ प्रकृति चेतन हो उठती है ।

यद्यपि राम ने द्वितीय अङ्क में भी पञ्चवटी के प्रति स्नेह व्यक्त किया है, परन्तु इस अङ्क में प्रकृति और पुरुष एक ही कुटुम्ब के सदस्य हो गये हैं - उनमें पारस्परिक पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया है । यहाँ करिकलभ सीता का पुत्र है । उसे आपत्ति में देखकर वे उसकी रक्षा के लिए पुकारने लगती हैं-***'आर्यपुत्र! परित्रायस्व परित्रायस्व मम एतं पुत्रकम्।'*** वात्सल्य में विह्वल होने के कारण वे भूल जाती हैं कि 'आर्यपुत्र' वहाँ नहीं है । करिकलभ की विजय पर वनदेवी वासन्ती राम को बधाई देती है । सीता आनन्दपूर्ण आश्चर्य व्यक्त करती हैं - ***'अहो ईदृशो मे पुत्रकः संवृत्तः ।'***

जहाँ राम ने अपनी प्रिया के साथ कई वर्षों तक निवास किया, उस स्थान का प्रत्येक वृक्ष और प्रत्येक प्राणी उनका बन्धु है।[३] जिस मयूर को सीता तालियाँ बजाकर नचाया करती थीं,

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ३/२ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - अङ्क ३, पृष्ठ ५२ ।

३. *उत्तररामचरितम्* - ३/८ ।

उसके प्रति राम के मन में वात्सल्य होना कितना स्वाभाविक है ।[1] जिस कदम्ब पर वह बैठता है, उसे भी सीता ने ही परिवर्धित किया था, अतः दोनों-मयूर और कदम्ब एक-दूसरे के स्वजन हैं ।

सघन और कोमल केलों के वन के बीच स्थित जिस शिलातल पर बैठकर सीता वन में विचरण करने वाले मृगों को इतना प्रिय हो गया कि वे आज भी उसे नहीं छोड़ पाते ।[2] मनुष्यों का पशु-पक्षियों के साथ आत्मीय सम्बन्ध अन्य कवियों की रचनाओं में भी प्राप्त हो सकता है, किन्तु पशु-पक्षियों पर मानवीय मनोभाव और व्यवहार पर आरोपण भवभूति की अपनी विशिष्टता है ।

महाराज राम आज पुनः वन में आये हैं । वे यहाँ उन वृक्षों को देख रहें हैं, जिन्हें सीता ने अपने हाथों से जल देकर बड़ा किया था, उन पक्षियों को देख रहें हैं जिन्हें सीता अपने हाथ से नीवार खिलाया करती थीं, उन मृगों को देख रहे हैं, जिन्हें सीता ने अपने हाथ से शष्प खिलाकर पुष्ट किया था, और इन सबको देखकर उनकी विरह-वेदना उद्दीप्त हो उठती है– उनका हृदय फटने लगता है ।[3] भवभूति की प्रतिभा से आलम्बन ही उद्दीपन बन जाता है ।

इस प्रकार भवभूति का प्रकृति-वर्णन यथार्थ होने के कारण सर्वथा स्वाभाविक है । उन्होंने जैसा देखा और अनुभव किया वैसा ही चित्र अपने शब्दों द्वारा अङ्कित कर दिया । इस विषय में प्राचीन कवियों का अनुकरण उन्होंने आवश्यक नहीं समझा । इसलिए उनके प्रकृति-वर्णन में मौलिकता, नवीनता है, सौन्दर्य है । उन्होनें अपने प्रकृति-वर्णन को अलङ्कारों से सुसज्जित करने का प्रयास भी नहीं किया, फिर भी उनके प्रकृति-वर्णन ने स्वयं को अलङ्कृत कर लिया है ।[4]

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ३/१९ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - ३/२१ ।

३. *उत्तररामचरितम्* - ३/२५ ।

४. *उत्तररामचरितम्* - ३/५ ।

अध्याय - ७

नाट्यकला

इस अध्याय में भवभूति की नाट्यकला के विभिन्न सोपानों पर सविस्तार चर्चा की जा रही है, जिसमें भाषा-शैली, संवाद, रीति, गुण, अलङ्कार, बिम्ब, वृत्ति, छन्द आदि हैं। महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है, जो शास्त्रीय नियमानुसार है।[१] उत्तम श्रेणी के पुरुषों द्वारा 'संस्कृत' का तथा स्त्रियों द्वारा 'शौरसेनी प्राकृत' का प्रयोग कराया गया है। ***महावीरचरितम्*** में श्रमणा, ***मालतीमाधवम्*** में कामन्दकी, सौदामिनी और कपालकुण्डला तथा ***उत्तररामचरितम्*** में अरुन्धती, आत्रेयी, वासन्ती, तमसा, मुरला, भागीरथी और वसुन्धरा द्वारा संस्कृत का प्रयोग शास्त्रीय नियमानुकूल है।[२] लवङ्गिका के साथ वार्तालाप करते समय मालती अपनी मनोव्यथा संस्कृत में व्यक्त करती है। इसी प्रसङ्ग में अपने दृढ़ निश्चय को भी उसने संस्कृत में ही प्रकट किया है। मदयन्तिका के साथ प्राकृत में बात करते समय बुद्धरक्षिता ने कामसूत्रकार का उद्धरण संस्कृत में प्रस्तुत किया है। राम के शस्त्र-प्रयोग का वर्णन रावण के सामने मन्दोदरी ने संस्कृत में किया है। प्राकृत का प्रयोग करने वाले नारी-पात्रों को इस प्रकार बीच में कहीं-कहीं संस्कृत का प्रयोग करने की अनुमति नाट्यशास्त्र के अनुकूल ही है।[३]

'मालतीमाधवम्' में नगरदेवता के मन्दिर में मालती जब लवङ्गिका के चरणों में झुकी तब लवङ्गिका ने माधव को अपने स्थान पर खड़ा कर दिया और स्वयं वहाँ से हट गयी। अब मालती के प्रश्न का उत्तर लवङ्गिका के स्थान पर माधव को देना है। लवङ्गिका की भाषा प्राकृत है और माधव की संस्कृत। भवभूति ने बड़ी कुशलता से माधव द्वारा दो श्लोकों में ऐसी पदावली का प्रयोग करा दिया जो संस्कृत और प्राकृत दोनों में समान है।[४] भवभूति ने

---

१. ***नाट्यशास्त्र*** - १७/४५,४६ तथा ***साहित्यदर्पण*** - ६/१५६।

२. ***नाट्यशास्त्र*** - १७/३६,३७ तथा ***साहित्यदर्पण*** - ६/१६७।

३. ***नाट्यशास्त्र*** - १७/४० तथा ***साहित्यदर्पण*** - ६/१६९।

४. ***सरले! साहसरागं परिहर रम्भोरु! मुञ्च संरम्भम्।***
विरसं विरहायासं सोढुं तव चित्तमसहं मे॥ - मालतीमाधवम् ६/१०।

अपने नाटकों में सर्वत्र शौरसेनी का प्रयोग किया, यद्यपि नाट्य-शास्त्र में भिन्न-भिन्न श्रेणी के पात्रों द्वारा भिन्न-भिन्न की प्राकृत के प्रयोग का विधान किया गया है ।[१]

भवभूति ने अपने नाटकों में ***वैदर्भी*** और ***गौडी*** रीति का प्रयोग किया है। भावों की अभिव्यक्ति; तथा श्रृङ्गार, करुण आदि रसों की व्यञ्जना और प्रकृति के मनोरम रूप का चित्रण उन्होंने वैदर्भी रीति में किया है जबकि ओजपूर्ण भावों की अभिव्यक्ति; वीर, रौद्र, वीभत्स आदि रसों की अभिव्यञ्जना और प्रकृति के भयावह रूपों का चित्रण करने के लिए उन्होंने गौडी रीति का प्रयोग किया है ।

महावीरचरितम् में वीररस की प्रधानता के कारण गौडी का प्रयोग अधिक हुआ है । प्रथम अङ्क में राक्षस सर्वमाय द्वारा रावण के पराक्रम का वर्णन[२], राक्षसी ताटका के भयङ्कर रूप का वर्णन[३], इन्द्र और रावण के द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन[४] तथा धनुर्भङ्ग के कारण चारों ओर फैलती हुई टङ्कार-ध्वनि का वर्णन गौडी रीति के सुन्दर उदाहरण हैं ।[५] परशुराम की प्रायः सभी उक्तियाँ गौडी में है। अपने आगमन की सूचना भी वे ओजपूर्ण भाषा में ही देते हैं-

---

किं वा भणामि विच्छेददारुणायासकारिणी!

कामं कुरु वरारोहे! देहि मे परिरम्भणाम् ।।- मालतीमाधवम् ६/११ ।

१. ***नाट्यशास्त्र*** - १७/५०-५६ ।

२. ***महावीरचरितम्*** - १/३४ ।

३. ***महावीरचरितम्*** - १/३५ ।

४. ***महावीरचरितम्*** - १/४५ ।

५. ***महावीरचरितम्*** - १/५४ ।

सोऽयं त्रि:सप्तवारानविकलविहित क्षत्रतन्त्रप्रमारो-

वीर: क्रौञ्चस्य भेदात्कृतधरणितलापूर्वहंसावतार:।

जेता हेरम्बभृङ्गिप्रमुखगणचमूचक्रिणस्तारकारे-

त्वां पृच्छञ्जामदग्न्य: स्वगुरुहरधनुर्भङ्गरोषादुपैति ।।[१]

वे अपने परशु का वर्णन कर रहे हों[२] अथवा अपने स्वभाव का[३], अपने क्रोध की अभिव्यक्ति कर रहे हों[४] अथवा धनुष पर बाण चढ़ाने की इच्छा की[५]-उनकी भाषा में कोई परिवर्तन नहीं होता है । महावीरचरितम् में वीररस की प्रधानता के कारण गौडी का ही अधिक प्रयोग हुआ है, फिर भी भवभूति ने अनेक स्थानों पर अत्यन्त सरल शब्दावली का प्रयोग कर वैदर्भी पर भी अपना अधिकार सिद्ध कर दिया है । प्रथम अङ्क में विश्वामित्र कुशध्वज से जनक और शतानन्द का कुशल-क्षेम पूछते हैं[६] -जिसमें वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है ।

मालतीमाधवम् में श्रृङ्गार रस की प्रधानता के कारण वैदर्भी रीति का अधिक प्रयोग हुआ है जो शास्त्रीय नियमानुसार है । मालती के प्रेम के सम्बन्ध में माधव को आश्वस्त करते समय मकरन्द ने[७], लवङ्गिका के सम्मुख अपनी विरह-वेदना की अभिव्यक्ति में मालती ने[८]

---

१. *महावीरचरितम्* - २/१६-१७ ।

२. *महावीरचरितम्* - २/३३ ।

३. *महावीरचरितम्* - २/४८ ।

४. *महावीरचरितम्* - ३/३२ ।

५. *महावीरचरितम्* - ३/४८ ।

६. *महावीरचरितम्* - १/१९ ।

७. *मालतीमाधवम्* - १/३४ ।

८. *मालतीमाधवम्* - २/१ ।

वैदर्भी रीति का ही प्रयोग किया है -

विधातां भद्रं नो वितरतु मनोज्ञाय विधये,

विधेयासुर्देवाः परमरमणीयां परिणतिम् ।

कृतार्थो भूयासं प्रियसुहृदपत्योपनयतःप्रयत्नः

कृत्स्नोऽयं फलतु,शिवतातिश्च भवतु।।[१]

मालती के वचन से अपने हृदय में उत्पन्नभाव को माधव वैदर्भी रीति द्वारा व्यक्त करता है -

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि

सन्तर्पणानि सकलन्द्रियमोहनानि ।

आनन्दनानि हृदयैकरसायनानि

दिष्ट्या मयाप्यधिगतानि वचोऽमृतानि[२] ।।-

कामन्दकी द्वारा मालती को दिये गये परामर्श की भाषा अत्यन्त सरल ढंग से प्रस्तुत की गयी है । माधव और मालती के प्रति कामन्दकी का उपदेश, जो दाम्पत्य-जीवन की सफलता का मूल-मन्त्र है, वैदर्भी रीति का सुन्दर उदाहरण है । मालतीमाधवम् में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ कवि ने छोटे-छोटे वाक्यों द्वारा कथानक को तीव्र गति से आगे बढ़ाने के लिए सरल शब्दों का प्रयोग किया गया है । प्रथम अङ्क में कलहंस, मकरन्द और माधव का संवाद इसका उत्कृष्ट उदाहरण है । इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गौडी के प्रति भवभूति का लगाव न केवल पद्य अपितु गद्य में भी है ।

उत्तररामचरितम् की भाषा अत्यन्त परिमार्जित एवं प्रसङ्गानुकूल है । भवभूति ने इस नाटक में वैदर्भी का प्रयोग किया है । शृङ्गार और करुण-दोनों रसों के लिए वैदर्भी रीति उपयुक्त होती है ।

---

१. *मालतीमाधवम्* - ६/७ ।

२. *मालतीमाधवम्* - ६/८ ।

महाकवि ने भावपूर्ण हृदय की गहन एवं सच्ची अनुभूति की अभिव्यक्ति सरल शब्दों में की है । सीता के स्पर्श से उत्पन्न अनुभूति का वर्णन करते हुए राम कहते हैं -

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा-

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।

तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो-

विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च ॥[१]

सीता के वचनों का प्रभाव भी सरल शब्दों में व्यक्त हुआ है ।[२] पञ्चवटी में राम के अकस्मात् दर्शन से सीता के हृदय में अनेक भाव एक साथ उठ रहे हैं। सीता के इस भाव को तमसा ने वैदर्भी रीति द्वारा व्यक्त किया है ।[३] इसी प्रकार राम के प्रति वासन्ती का तीक्ष्ण उपालम्भ-हृदय की गहराई में पहुँचने वाला व्यङ्ग्य बनकर अत्यन्त सरल भाषा में व्यक्त हुआ है –

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीय

त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ।

इत्यादिभिः प्रियशतैरनुध्य मुग्धां

तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥[४]

द्वितीय अङ्क में वासन्ती और आत्रेयी का संवाद गद्य में वैदर्भी रीति के प्रयोग का सुन्दर उदाहरण है।[५] गद्य में भी भवभूति ने गौडी का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है । लव

---

१. ***उत्तररामचरितम्*** - १/३५ ।

२. ***उत्तररामचरितम्*** - १/३६ ॥

३. ***उत्तररामचरितम्*** - ३/१३ ।

४. ***उत्तररामचरितम्*** - ३/२६ ।

५. ***उत्तररामचरितम्*** - द्वितीय अङ्क, विष्कम्भक ।

और चन्द्रकेतु के युद्ध का वर्णन विद्याधर दीर्घसमास युक्त गद्य में करता है ।[1]

संवाद

काव्य के दो भेदों में से एक दृश्य काव्य है और दूसरा श्रव्य । श्रव्य-काव्य वे हैं जिन्हें हम सुन-पढ़ सकते हैं, इसके अतिरिक्त जिन्हें हम सुनने के साथ-साथ देखते भी हैं, मार्मिक भावों को देखकर अभिभूत होते हैं, दृश्य काव्य है । इस दोनों के समन्वय से नाटक सर्वाधिक प्रभावशाली होता है । नाटक के कथानक को गतिशील बनाने में संवादों की अहं भूमिका होती है। यह अन्तर्जगत् को बाह्य मञ्च पर प्रस्तुत करने का माध्यम है । संवाद से ही पात्रों का चरित्र स्पष्ट होता है । नाटक में पात्रों की उक्तियाँ-जनान्तिक अपवारित आदि दर्शकों को आनन्द के धरातल पर ले जाती है ।

महावीरचरितम् में 'जनान्तिक' का प्रयोग प्रथम अङ्क में लक्ष्मण द्वारा किया गया है । जब महाराज जनक के अनुज कुशध्वज सीता और उर्मिला का परिचय महर्षि विश्वामित्र से बताते समय यह कहते हैं कि हल के अग्रभाग से जोतते समय भूमि से उत्पन्न यह सीता है –

लाङ्गलोल्लिख्यमानाया यज्ञभूमेः समुद्गता ।
सीतेयमूर्मिला चेयं द्वितीया जनकात्मजा ॥

तभी जनान्तिक के माध्यम से केवल राम को सुनाकर लक्ष्मण कहते हैं - ***लक्ष्मणः*** *(जनान्तिकम्)* - ***आश्चर्यमीयमद्भुतसूतिरार्य!*** यहाँ संवाद के माध्यम से इनका सौन्दर्य जनसाधारण तक पहुँचाया जा रहा है । भवभूति के संवादों में वे सभी गुण उपलब्ध होते हैं जो अच्छे संवाद के लिए आवश्यक हैं । उनके पात्र जब आपस में संवादात्मक शैली में एक दूसरे के प्रति उक्ति-प्रत्युक्ति करते हैं तो ऐसा लगता है कि एक पात्र दूसरे से नहीं अपितु हमसे अर्थात् जनसाधारण से बात कर रहा हो ।

महावीरचरितम् के द्वितीय अङ्क में जब राम जनक के कन्यान्तःपुर में परशुराम के

---

१. *उत्तररामचरितम् - पृष्ठ १२५ (यत्प्रलयवातावालिक्षेभ ...... ।)*

समक्ष उपस्थित होने के लिये आगे बढ़ते हैं, तो उनका धनुष पकड़कर सीता दर्शकों के सामने अपने प्रेम की रक्षा के लिए राम से यह कहती है- *आर्यपुत्र, न तावद्युष्माभिर्गन्तव्यं यावत्तातो नागच्छति ।* सीता की यह उक्ति जनसामान्य के समक्ष स्त्रियोचित लज्जा के अनुरूप ही है । इसी प्रकार 'उत्तररामचरितम्' में सीता की यह उक्ति बच्चे के प्रति माँ का स्नेह उमड़ते हुए दिखाकर दर्शकों को वास्तविक रसानुभूति करा देता है ।[१] यह अनुभूति शब्द-सापेक्ष नहीं है । जब जनक लव के विषय में अरुन्धती से पूछते हैं तो अरुन्धती उत्तर देती है-*अद्यैवागता वयम्*। यहाँ पर अरुन्धती ने 'लव' को पहचान लिया था परन्तु उस समय उसका परिचय देना उपयुक्त नहीं था, इसीलिए अरुन्धती ने स्थिति के अनुकूल उत्तर दिया ।

मालतीमाधवम् के द्वितीय अङ्क में मालती द्वारा कामन्दकी, मालती और लवङ्गिका की सभी उक्तियाँ उत्कृष्ट संवादात्मक शैली की सूचक है ।[२] संवाद पात्रों के अनुरूप हों, इसका भवभूति ने पूरा ध्यान रखा है । महावीरचरितम् में क्रुद्ध परशुराम को शान्त करने के लिए दिया गया महर्षि वशिष्ठ का उपदेश जन भावनाओं के अनुकूल ही है ।[३]

भवभूति के पात्र चरित्राङ्कन की दृष्टि से बड़े प्रभावशाली तथा अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट करने वाले हैं । महावीरचरितम् के पञ्चम अङ्क में अघोरघण्ट की सभी युक्तियाँ उसके स्वाभाव से मेल खाती है । इसी प्रकार उत्तररामचरितम् के चतुर्थ अङ्क में दाण्डायन और सौधातकि का वार्तालाप श्रेष्ठ संवाद शैली का उदाहरण है ।

नाटकीय पात्रों के चरित्र-चित्रण में संवाद महत्त्वपूर्ण साधन होता है । पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से जब उनके चरित्र की विशेषता स्वतः व्यक्त हो जाय तभी नाटक का संवाद सार्थक

---

१. *उत्तररामचरितम्* - तृतीय अङ्क, पृष्ठ ६४ ।

२. *मालतीमाधवम्* - द्वितीय अङ्क, पृष्ठ ५४-५७ ।

३. *महावीरचरितम्* - तृतीय अङ्क, पृष्ठ १०८/११० ।

होता है । भवभूति ने अपने तीनों नाटकों में इसी प्रकार की उक्तियों को प्रयोग किया है । महावीरचरितम् के प्रथम अङ्क में जब ताटका का वध करने के लिए विश्वामित्र राम को आदेश देते हैं तो राम का यह कथन - *'भगवन्! स्त्री खल्वियम्'*, उनके उदात्त शौर्य को व्यक्त करता है । इसी तरह भवभूति का 'उत्तररामचरितम्' संवाद की दृष्टि से श्रेष्ठ नाटक है नाटक के प्रथम अङ्क में कञ्चुकी के प्रति राम की उक्ति - ***'आर्य! रामचन्द्र इत्येव मां प्रत्युपचार: शोभते तातपरिजनस्य,*** वृद्धजनों के प्रति उनकी श्रद्धा को स्पष्ट करता है तथा लक्ष्मण के प्रति यह कथन - ***'अयि वत्स! बहुतरं द्रष्टव्यं, अन्यतो दर्शय ।'*** उनके औदार्य को व्यक्त करता है तृतीय अङ्क में राम के प्रति वासन्ती के उपालम्भ को सुनकर सीता की यह उक्ति - ***'त्वमेव सखि वासन्ति दारुणा कठोरा च यैवमार्यपुत्रं प्रदीप्तं प्रदीपयसि ।'*** उनकी पति-प्राणता को तथा पञ्चम अङ्क में चन्द्रकेतु और सुमन्त्र द्वारा रथ में बैठने के लिये लव की यह उक्ति - ***'को विचार: स्वेषूपकरणेषू । किन्त्वरण्यसदो वयमनभ्यस्तरथचर्या: ।'*** उनके वीरोचित स्वाभिमान के प्रस्तुत करता है ।

कभी-कभी दो पात्र आपस में बात-चीत करते हुए अपने से भिन्न किसी अन्य पात्र के चरित्र के विषय में कुछ कह जाते हैं । ऐसा ही दृश्य उस समय उपस्थित होता है जब उत्तररामचरितम् के प्रथम अङ्क में अष्टावक्र के मुख से देवी अरुन्धती आदि का संदेश सुनकर राम कहते हैं - ***'क्रियते यद्येषा कथयति' ।***[1] यह वाक्य राम के चरित्र की अपेक्षा सीता के चरित्र से अधिक सम्बन्ध रखता है । सहजता अच्छे संवाद का प्राथमिक गुण माना गया है । भवभूति के नाटकों में उनके सभी पात्रों की उक्तियाँ स्वभावनुकूल है । यथा 'उत्तररामचरितम्' के चतुर्थ अङ्क में ***'वटुलव-संवाद'*** जिसमें विभिन्न पात्रों की उक्तियाँ परस्पर भिन्न होने पर भी उनके स्वभाव के अनुकूल है ।

---

१. *उत्तररामचरितम्* - पृष्ठ ९ ।

किसी महाकवि की परख उसकी वाणी से होती है । उसकी वाणी में जितना ही अर्थ-गौरव होगा, उतनी ही उसकी रचना विद्वत-समाज में श्लाघ्य होगी । महाकवि भवभूति में प्रतिभा तथा वाग्वश्य का मणिकाञ्चन संयोग है । उनके पात्रों के मुख से निकले सूक्तिपरक संवादों में सजीवता दिखती है । 'मालतीमाधवम्' में कामन्दकी से माधव का बृहद् परिचय पाकर मालती लवङ्गिका से कहती है - ***'सखि! श्रुतं त्वया ।'*** तब लवङ्गिका उत्तर देती है - ***'सखि! कुतो वा महोदधिं वर्जयित्वा पारिजातस्योद्गमः ।'***[1] उत्तररामचरितम् में भवभूति ने राम समस्त चिन्तन को सार रूप में प्रस्तुत किया है । राम के वाक्य - ***सङ्कटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता'*** के उत्तर में सीता भी सूक्तिपरक वाक्य का प्रयोग करती है– ***'जानामि आर्यपुत्र! किन्तुसन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति ।'***[2] इसके अतिरिक्त सीता के द्वारा प्रयुक्त अन्य सूक्तियाँ -***'दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति'*** तथा ***'कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णिमाचन्द्रस्य दर्शनम्'*** इत्यादि सीता के चरित्र को स्पष्ट करती हैं । यहाँ उनके सन्दर्भ में कवि शूद्रक के द्वारा मृच्छकटिकम् में प्रयुक्त सूक्ति -***'स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः'*** सर्वथा सार्थक है । परन्तु कहीं-कहीं भवभूति के वाक्य लम्बे हैं और इनके पात्र बिना किसी विराम के बोलते हैं, इससे कथानक के प्रवाह में गतिरोध उत्पन्न हो गया है । फिर भी ये संवाद रङ्गमञ्च और भाव-संप्रेषण की दृष्टि से अनुकूल हैं ।

गुण

काव्य में गुणों की स्थिति अपरिहार्य होती है । काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने काव्य के लक्षण[3] में 'सगुणौ' कहकर इस मत की पुष्टि भी की है ।

---

१. *'मालती-माधवम्' -- अङ्क -- २, पृष्ठ - ६०*
२. *'उत्तररामचरितम्' -- प्रथम अङ्क , पृष्ठ - ७ से ८*
३. *तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि ।* - काव्यप्रकाश, कारिका-४, सूत्र-१ ।

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ।।[1]

अर्थात् आत्मा के शौयादि धर्मों के समान काव्यात्मभूत प्रधान रस के जो अपरिहार्य तथा उत्कर्षाधायक तत्त्व हैं, वे ही काव्य के गुण कहलाते हैं । इसका अभिप्राय यह है कि जैसे शौर्य आदि गुण 'आत्मा' के धर्म हैं, शरीर के नहीं, उसी प्रकार गुण रस के ही धर्म हैं, वर्णों के नहीं अतः वे माधुर्यादि गुण योग्य वर्णों से अभिव्यक्त होते हैं । काव्य के त्रिविध गुण हैं –
चित्त के द्रवीभाव का कारण और श्रृङ्गार में रहने वाला आह्लादस्वरूप ***माधुर्य*** गुण कहलाता है - ***'आह्लादकत्वं माधुर्यं श्रृङ्गारे द्रुतिकारणम् ।'***[2]- चित्त के विस्ताररूप दीप्तत्व का जनक ***ओज*** गुण कहलाता है - ***'दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति।'***[3] - जिस शब्द, समास या रचना के द्वारा श्रवण मात्र से शब्द के अर्थ की प्रतीति हो जाय, वह इन वर्णो, समासों तथा रचनाओं में रहने वाला गुण ***प्रसाद*** कहलाता है -

श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ।।[4]

महाकवि भवभूति के प्रत्येक नाटक में तीनों गुण उपलब्ध होते हैं फिर भी महावीरचरितम् में वीररस की प्रधानता के कारण ***ओज*** गुण का, ***मालतीमाधवम्*** में श्रृङ्गार रस की प्रधानता के कारण ***माधुर्य*** का और ***उत्तररामचरितम्*** में करुणरस की बहुलता के कारण ***प्रसाद*** गुण का आधिक्य है ।

---

१. *काव्यप्रकाश का०* ६६, सूत्र - ८६ ।
२. *काव्यप्रकाश का०* ६८, सूत्र - ८९ ।
३. *काव्यप्रकाश का०* ६९, सूत्र - ९१ ।
४. *काव्यप्रकाश का०* ७६, सूत्र - १०० ।

महावीरचरितम् में परशुराम की प्रायः सभी उक्तियाँ ओजपूर्ण हैं । विदेह नगरी में उनके आगमन की घोषणा स्वयं उन्हीं के द्वारा अत्यन्त ओजपूर्ण शब्दों में की गयी है -

कैलासोद्धारसारत्रिभुवनविजयौर्जित्यनिष्णातदोष्णः,

पौलस्त्यस्यापि हेलापहृतरणमदो दुर्दमः कार्तवीर्यः ।

यस्य क्रोधात्कुठारप्रविघटितमहास्कन्धबन्धस्थवीयो-

दोःशाखादण्डषण्डस्तरुरिव विहितः कुल्यकन्दः पुराभूत् ।।[१]

राम के साथ वार्तालाप करते समय उनकी वाणी में पद-पद पर ओज व्यक्त होता है । तृतीय अङ्क में प्रायः सभी पात्रों द्वारा ओज की अभिव्यक्ति की गयी है । जामदग्न्य और जनक के वार्तालाप में भी ओजगुण की स्थिति है ।[२]

मालतीमाधवम् में शृङ्गार रस की प्रधानता के कारण माधुर्य गुण हैं । आह्लादकता माधुर्य का प्रधान लक्षण है । कुसुमाकरोद्यान में मालती के दर्शन से उत्पन्न आनन्द का वर्णन करते हुए माधव कहता है - ***आश्चर्यमुत्पलदृशो वदनामलेन्दु***

सान्निध्यतो मम मुहुर्जडिमानमेत्य ।

जात्येन चन्द्रमणिनेव महीधरस्य

सन्धार्यते द्रवमयो मनसा विकारः ।।

कामदेवायतन में मालती के प्रथम दर्शन का माधव द्वारा किया गया वर्णन भी माधुर्य गुण का उदाहरण है । इसके अतिरिक्त माधुर्य के अनेक उदाहरण मदयन्तिका और मकरन्द के प्रेम-प्रसङ्ग में भी प्राप्त होते हैं । बुद्धरक्षिता और लवङ्गिका के समक्ष अपने अदम्य प्रेम का वर्णन कर जब मदयन्तिका जाने लगती है तब मकरन्द उसका हाथ पकड़ कर कहता है –

---

१. ***महावीरचरितम्*** - २/१६ ।

२. ***महावीरचरितम्*** - ३/२५-२९, ३२ ।

रम्भोरु संहर भयं क्षमते विसोढु-

मुत्कम्पितं स्तनभरस्य न मध्यभागः ।

इत्यं त्वयैव कथितप्रणयप्रसादः

सङ्कल्पनिर्वृतिषु संस्तुत एष दासः ।।[१]

मालतीमाधवम् में प्रसाद गुण भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है । भवभूति की ये पक्तियाँ प्रसाद गुण के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती हैं –

ये नाम केचिदिह न प्रथयन्त्यवज्ञां

जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ।

उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा

कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।।[२]

मदन सन्तप्त मालती के वर्णन तथा मालती और माधव के प्रति कामन्दकी की मङ्गल-कामना में भी प्रसाद गुण है । नव-विवाहित वर-वधू के प्रति परिव्राजिका कामन्दकी का यह प्रख्यात उपदेश प्रसाद गुण का ही उदाहरण है –

प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा

सर्वे कामाः शेवधिर्जीवितं वा ।

स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसा-

मित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु ।।[३]

---

१. *मालतीमाधवम् - ७/२ ।*

२. *मालतीमाधवम् - १/६ ।*

३. *मालतीमाधवम् - ६/१८ ।*

उत्तररामचरितम् में प्रसाद गुण सर्वाधिक है । प्रथम अङ्क से ही राम की अनेक उक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती है ।[1] तृतीय अङ्क में राम के सुख और दुःख दोनों की अभिव्यक्ति प्रसाद गुण युक्त है ।[2] अकस्मात् राम के दर्शन और स्पर्श के कारण सीता की विचित्र मनोदशा का तमसा द्वारा किया गया वर्णन प्रसाद गुण से पूर्ण है । राम के मुख मण्डल पर बहते हुए आँसुओं का कारण लव को समझाते समय कुश की भाषा भी प्रसादपूर्ण है ।[3]

माधुर्य गुण भी उत्तररामचरितम् में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है । चित्र दर्शन के समय हृदय में सीता के दोहद से आरम्भ होने वाला राम और सीता का सम्पूर्ण वार्तालाप माधुर्य गुण से युक्त है । गम्भीर वनराजियों में विहार करने तथा भगवती भागीरथी के पवित्र, निर्मल और शीतल जल में स्नान करने की इच्छा व्यक्त कर सीता राम से पूछती हैं – ***'आर्यपुत्र! युष्माभिरपि आगन्तव्यम्?'*** राम उत्तर देते हैं – ***' अयि कठिनहृदये! एतदपि वक्तव्यमेव ।'*** सीता अत्यन्त प्रसन्न होकर कहती हैं – ***'तेन हि प्रियं मे प्रियं मे ।'*** इस प्रकार मधुर वातावरण का निर्माण कर महाकवि ने लक्ष्मण के निष्क्रमण से प्रतिहारी के प्रवेश तक राम और सीता के संवाद को माधुर्य से आपूर्ण कर दिया है । ओजपूर्ण गुण के लिए इन परिस्थितियों का निर्माण भी भवभूति ने अनेक स्थानों पर किया है । ***'मूर्ख जनता अग्निशुद्धि पर विश्वास नहीं करती'***- कञ्चुकी के इस वाक्य को सुनकर जनक ओजपूर्ण भाषा में कहते हैं – ***आः कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने ? कष्टमेववादिना जनेन रामभद्रपरिभूता अपि वयं पुनः परिभूयामहे ।'*** उनके ओज की अभिव्यक्ति –***'क्रोधस्य ज्वलितं क्षटित्यवसरश्चापेन शापेन वा'*** में भी हुई है ।

---

१. *उत्तररामचरितम्* - भवभूति, १/१७, १९, ३२, ४१, ४३ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - ३/१२, ३१, ४५ ।

३. *उत्तररामचरितम्* - ६/३० ।

अश्वरक्षकों की दर्पमयी घोषणा को सुनते ही लव की वाणी ओजपूर्ण हो जाती है । वह सैनिकों को चुनौती देता है – ***भो भोः तत्किमक्षत्रिया पृथिवी यदेव युद्धोष्यते?'*** जब वे कहते हैं - ***' रे रे महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः'*** तब लव उन्हें उत्तर देता है – ***धिग्जाल्मान्,***

यदि नो सन्ति सन्त्येव केयमद्यविभीषिका ।

किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः ।[१]

जब उसके अन्य साथी चमकते हुए शस्त्रों को देखकर चुपचाप भागने के लिए उद्यत होते हैं तब लव हँसकर कहता है – ***किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि ?*** धनुष चढ़ाते समय उसके द्वारा की गयी घोषणा तथा पराजित सेनापतियों द्वारा लौटकर पुनः घेर लिए जाने पर उसके सङ्कल्प की अभिव्यक्ति भी ओजपूर्ण है ।[२]

अलङ्कार

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट के अनुसार काव्य में विद्यमान अङ्गी रस, शब्द और अर्थ रूप अङ्गों के द्वारा कभी कभी उत्कर्ष करते हैं, वे अनुप्रास और उपमा आदि हार के समान काव्य के ***अलङ्कार*** होते हैं –

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।

हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ।। [३]

महाकवि भवभूति ने अपनी कृतियों में प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण अलङ्कारों का प्रयोग किया है। उनका अत्यन्त प्रिय अलङ्कार ***उपमा*** है । भवभूति की यह विशेषता है कि उन्होंने अनेक स्थलों

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ४/२८ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - ५/९ ।

३. *काव्यप्रकाश* - आचार्य मम्मट - का० ६७, सूत्र- ८७ ।

पर मूर्त की तुलना अमूर्त से की है । यह वैशिष्ट्य उपमा के शिखर कालिदास की रचनाओं में भी कम दृष्टिगोचर होता है । ***महावीरचरितम्*** में विश्वामित्र राम की तुलना किसी व्यक्ति से नहीं, अपितु अथर्ववेद में कहे गये ***अभिचार*** 'हिंसा-प्रयोग' से करते हैं ।[१] ***मालतीमाधवम्*** में मालती की दशा के वर्णन में माधव ने भी 'मालती' की तुलना 'शशिकला' से तथा 'कपालकुण्डला' की तुलना 'उत्पात-धूमलेखा' से की है ।[२] ***उत्तररामचरितम्*** में पृथ्वी और सीता के लिए क्रमशः वाणी और विद्या को उपमान बनाकर मूर्त की तुलना अमूर्त से की गयी है ।[३]

उपमा अलङ्कार का अत्यन्त सुन्दर और उत्कृष्ट प्रयोग उत्तररामचरितम् में दृष्टिगोचर होता है । दुर्मुख के मुख से जनता में फैले हुए अपवाद की बात सुनकर राम कहते हैं -

हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्

वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः ।

एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाका-

दालर्क विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम् ॥[४]

अर्थात् पागल कुत्ता जब किसी व्यक्ति को काटता है तो उसके घावों को उपायों द्वारा ठीक किया जा सकता है, परन्तु अनजाने में ही उसका विष शरीर में फैलता रहता है और कुछ समय बीत जाने के बाद उसका परिणाम अत्यन्त भयङ्कर हो जाता है । सीता के ***'परगृहवासदूषण'*** के लिए इससे अच्छे उपमान की कल्पना सम्भवतः नहीं की जा सकती है ।

उपमा को अधिक प्रभावोत्पादक और हृदयङ्गम बनाने के लिए भवभूति ने अमूर्त उपमेय

---

१. *महावीरचरितम्* - १/६२ ।

२. *मालतीमाधवम्* - ९/४९ ।

३. *उत्तररामचरितम्* - ४/५ ।

४. *उत्तररामचरितम्* - १/४० ।

की तुलना मूर्त उपमान से की है । इसी प्रकार के कुछ प्रयोग उत्तररामचरितम् के तृतीय अङ्क में मिलते हैं -

उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ।'

स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते ।

धवलबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः ।

प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मो ग्लपयति ।।

भवभूति का प्रसिद्ध गद्य ***'एको रसः करुण एव......'*** भी इसी कोटि की उपमा का उदाहरण है । उपमा के पश्चात् भवभूति का प्रिय अलङ्कार उत्प्रेक्षा एवं रूपक है ।

महावीरचरितम् में सीता-हरण के पश्चात् राम अपनी वेदना के वर्णन में ***उत्प्रेक्षा*** का प्रयोग करते हैं ।[1] श्रमणा द्वारा किये गये बालि के वर्णन में भी सुन्दर उत्प्रेक्षा है ।[2]

मालतीमाधवम् में माधव के रूप माधुर्य का वर्णन करते समय कामन्दकी द्वारा किया गया उत्प्रेक्षा का प्रयोग दर्शनीय है –

यदालोकस्थाने भवति पुरमुन्मादतरलैः ।

कटाक्षैर्नारीणां कुवलयितवातायनमिव ।।[3]

उत्तररामचरितम् में वासन्ती ने द्रुमों के कुसुमावपात से गोदावरी की अर्चना की उत्प्रेक्षा की है।[4]

महावीरचरितम् में राम से युद्ध करने के लिए जाते हुए बालि के अदम्य उत्साह के वर्णन में भवभूति ने ***रूपक*** अलङ्कार का सुन्दर प्रयोग किया है ।[5] *उत्तररामचरितम्* में

---

१. *महावीरचरितम्* - ५/२२ ।
२. *महावीरचरितम्* - ५/४४ ।
३. *मालतीमाधवम्* - २/११ ।
४. *उत्तररामचरितम्* - २/९ ।
५. *महावीरचरितम्* - ५/४५ ।

चित्र-दर्शन के परिश्रम से थककर जब सीता अपने पति की गोद में सिर रखकर सो जाती हैं तब राम निर्निमेष दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए एक ही पद्य में चार रूपकों का प्रयोग करते हैं –

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो

रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः ।

अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः

किमस्या न प्रेमो यदि परमसत्यस्तु विरहः ।। - १/३८ ।

इसके अतिरिक्त भवभूति को ***अर्थान्तरन्यास*** के प्रयोग में बहुत सफलता मिली है । उनके अर्थान्तरन्यास अत्यन्त सुन्दर और लोकप्रिय हैं । लोकप्रियता के कारण ही उनके अनेक अंश सूक्तियों के रूप में प्रचलित हो गये हैं -

- ***सर्वप्रायो व्रजति विकृतिं भिद्यमाने प्रतापे ।***[१]
- ***यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ।***[२]
- ***सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति ।***[३]
- ***गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्ग न च वयः ।***[४]
- ***पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति ।***[५] आदि अनेक सूक्तियों

का उद्गम भवभूति के अर्थान्तरन्यास अलङ्कारों से ही हुआ है । इसके अतिरिक्त अनुप्रास[६],

---

१. *उत्तररामचरितम्* - २/४ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - १/५ ।

३. *उत्तररामचरितम्* - २/११ ।

४. *उत्तररामचरितम्* - ४/११ ।

५. *उत्तररामचरितम्* - ४/१२ ।

६. *उत्तररामचरितम्* - २/९ ।

स्वभावोक्ति[१], तुल्ययोगिता[२], प्रतिवस्तूपमा[३], अप्रस्तुतप्रशंसा[४], दृष्टान्त[५], संदेह[६], भ्रान्तिमान[७] आदि अलङ्कारों का भी भवभूति ने बड़ा सुन्दर प्रयोग किया है ।

बिम्ब-योजना

सटीक बिम्ब योजना के माध्यम से महाकवि भवभूति ने मानव मन की भावनाओं को समर्थ अभिव्यक्ति दी है । उनकी तीनों कृतियों में जो बिम्ब उपस्थित होते हैं, वे सहज ही सहृदय को रसानुभूति कराने में समर्थ हैं, ये बिम्ब ही अन्तर्जगत् को बाह्य रूप में अभिव्यक्त कराते हैं । भवभूति ने प्रकृति से, पशु-जगत् से, मूर्त वस्तुओं से, अमूर्त वस्तुओं से, विचारों से तथा भावनाओं से सम्बन्ध स्थापित कर एक अनुपम दृश्य दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया है । एक ऐसा ही दृश्य उस समय उपस्थित होता है जब उत्तररामचरितम् में गोदावरी के तट पर स्थित वृक्षों के तनों से बड़े-बड़े हाथी अपनी खुजली मिटाने के लिए कपोल-स्थल को रगड़ते हैं तब इन वृक्षों के हिलने से कुम्हलाए हुए पुष्प गोदावरी के जल में गिर पड़ते हैं । यहाँ पर भवभूति ने प्रकृति के इस बिम्ब के माध्यम से यह दृश्य उपस्थित किया है कि मानों ये वृक्ष भगवती गोदावरी की पूजा कर रहे हैं -

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभिः

धर्मस्रंसितबन्धनैः स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम् ।[८]

---

१. *मालतीमाधवम्* - ४/१० ।

२. *उत्तररामचरितम्* - ७/५ ।

३. *उत्तररामचरितम्* - ३/२९ ।

४. *मालतीमाधवम्* - ३/११ ।

५. *मालतीमाधवम्* - ९/५०, *उत्तररामचरितम्* - १/१४ ।

६. *उत्तररामचरितम्* - १/३५ ।

७. *मालतीमाधवम्* - १/१ ।

८. *उत्तररामचरितम्* - २/९ ।

वे प्रकृति की सुषमा का मनोहारी वर्णन करते हैं -

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्त-

प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति ।

फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-

स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः ॥[१]

देखो, ये झरने बह रहे हैं । इनके किनारे बेंत की कुञ्जों में बैठे मधुर पक्षी कलरव कर रहे हैं । इन कुञ्जों की छाया झरनों के प्रवाह पर पड़ रही है । कुञ्जों के फूल गिर-गिरकर झरनों के जल को सुवासित रहे हैं । जब ये झरने पके हुए काले फलों के गुच्छों से लदी जामुन की सघन शाखा से टकराकर प्रवाहित होते हैं तो धाराएं फूट पड़ती हैं । संस्कृत साहित्य में ऐसे दृश्यों का वर्णन कम ही मिलता है । इसी प्रकार जब राम अपने चिरपरिचित दण्डकारण्य पञ्चवटी में प्रवेश करते हैं । यहीं सीता के साथ अनुभूत अपने प्रेम को स्मरण कर राम की व्यथा उमड़ पड़ती है -

चिराद्वेगारम्भो प्रसृत इव तीव्रो विषरसः-

कुतश्चित्संवेगात्प्रचल इव शल्यस्य शकलः ।

व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः

घनीभूतः शोको विकलयति मां मूर्च्छयति च ॥[२]

बहुत दिनों के बाद आज अचानक मेरा यह घनीभूत शोक उमड़कर सारे शरीर में व्याप्त हो रहा है । ऐसा लगता है कि हृदय में गड़े हुए शल्य को किसी ने जोर से धक्का देकर हिला दिया हो । मेरे हृदय के मर्मस्थल का जो घाव भर रहा था वह मानों आज फिर

---

१. *उत्तररामचरितम्* - २/२० ।

२. *उत्तररामचरितम्* - २/२६ ।

से दरक कर फूट पड़ा है । यहाँ भवभूति ने हृदय की भावनाओं को शब्द चित्र में ढालकर दर्शक के सामने उपस्थित कर दिया है । यही भवभूति की नवीनता है । छठें अङ्क में राम, लव-कुश से मिलकर अपूर्व वात्सल्य का अनुभव करते हैं पर उनकी आकृति में सीता के सौन्दर्य की झलक देखकर निर्वासन के समय सीता की गर्भ-भरालसा अवस्था का स्मरण करके वे फिर शोक-निमग्न हो जाते हैं । 'प्रिय का' अनवरत ध्यान करते-करते उसकी मूर्ति मानों आँखों के सामने उपस्थित हो जाती है । किन्तु ज्यों ही उसकी कल्पित मूर्ति ध्यान से हट जाती है त्यों ही यह सारा संसार एक सूनसान जङ्गल के समान लगता है, हृदय मानों धधकते हुए अङ्गारों पर रख दिया गया हो । कवि ने इस बिम्ब के माध्यम से यहाँ राम की करुणा को सामाजिक के सामने हृदयस्पर्शी बनाया है -

चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः

प्रवासे चाश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः ।

जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलवे ह्युपरते

कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव ॥[१]

भवभूति का करुण रस अत्यन्त गंभीर एवं मर्मस्पर्शी है । महाकवि ने बिम्ब के माध्यम से उसे 'पुटपाक' के समान बताया है । जिसके अन्दर तीव्र अन्तर्वेदना प्रज्ज्वलित हो रही है -

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः ।

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥[२]

महाकवि भवभूति की रचनाओं पर विहङ्गम दृष्टिपात करने से पता चलता है कि उनका

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ६/३८ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - ३/१ ।

बिम्ब-विधान जागतिक वस्तुओं तथा अति प्राकृतिक के तादात्म्य ये उपस्थापित होता है । उत्तररामचरितम् में कुछ ऐसा ही नवीन और मौलिक चित्रण दिखता है । चित्र-दर्शन के समय राम सुवर्ण-मृग के छल से उत्पन्न घटना को याद करते हैं तो उनके नेत्रों से अश्रु-धारा फूट पड़ती है । महाकवि ने राम के बहते हुए आँसुओं को को टूटी हुई मोती के माला के समान बताया है ।

अयं तावद्वाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो ।

विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकण: ।।[१]

भवभूति ने एक और मनमोहक दृश्य उस समय उपस्थित किया है जब सीता चित्र-दर्शन के समय थककर राम के गोद में लेट जाती हैं तो राम सस्वेद सीता की भुजाओं को चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से पिघलने वाले चन्द्रकान्तमणि के समान बताते हैं –

जीवयन्निव ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम् ।

बाहुरैन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रम: ।।[२]

कभी सजीव का बिम्ब निर्जीव से उपस्थापित करते हैं । सीता के लोकापवाद को पागल कुत्ते के विष के सदृश बताया गया है - ***'आलर्कं विषमिव सर्वत्र: प्रसृप्तम् ।'***[३] जिस प्रकार पागल कुत्ते का विष सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है उसी प्रकार सीता विषयक प्रवाद भी सर्वत्र फैल रहा है । इसी प्रकार देवी अरुन्धती को उषा के समान पवित्र एवं मंगलदायिनी बताया ***'जगदवन्द्या देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम् ।'***[४]

---

१. *उत्तररामचरितम्* - १/२९ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - १/३४ ।

३. *उत्तररामचरितम्* - १/४० ।

४. *उत्तररामचरितम्* - ४/१० ।

कभी महाकवि ने अमूर्त को मूर्त से-राम के करुण रस को पुटपाक से, तो कभी मूर्त को अमूर्त से बिम्बित करते हैं-सीता कभी भवभूति की दृष्टि में करुण रस की साक्षात् मूर्ति तो कभी शरीरधारिणी विरह-व्यथा के समान है -

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी ।

विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।।[१]

कभी वे गुरु के विद्यादान को पवित्र मणि के समान बताते हैं --

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे

न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्युपहन्ति वा ।

भवति हि पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा

प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः ।।[२]

अर्थात् जिस प्रकार स्वच्छ मणि प्रतिबिम्ब आदि को ग्रहण करने में समर्थ होती है , मिट्टी आदि पदार्थ नहीं; उसी प्रकार गुरु के द्वारा दी गयी एक ही विद्या को व्युत्पन्न शिष्य मस्तिष्क में अङ्कित हो जाती है जबकि मन्दबुद्धि शिष्य इस ज्ञान रूपी प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होता । इसी तरह महावीरचरितम् में भी प्रयुक्त भवभूति के बिम्ब उच्चकोटि के हैं । जिस प्रकार कोई महावीर योद्धा हिंसा प्रयोग से समस्त शत्रुओं को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार महावीरचरितम् के राम, सुबाहु और मारीच नामक राक्षसों से लड़ते हुए महाशक्तिशाली दिखलायी पड़ रहे हैं । भवभूति इसी दृश्य को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं - जहाँ राम को किसी वीर व्यक्ति के समान न बनाकर अथर्ववेद में कहे गये अभिचार के समान बताया गया है --

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ३/४ ।

२. *उत्तररामचरितम्* - २/४ ।

राजन्नितो ह्येहि सहानुजस्य

रामस्य पश्याप्रतिमानमोजः ।

ब्रह्मद्विषो ह्येष निहन्ति सर्वा-

नार्थर्वणस्तीव्र इवाभिचारः ॥[१]

मालतीमाधवम् में भी मालती की दशा के वर्णन में उसकी तुलना शशिकला से तथा कपालकुण्डला ने उत्पाद् धूम लेखा से की है ।[२] इस प्रकार बिम्ब-योजना की स्थापना में भवभूति अन्य नाटककारों के अनुगामी न होकर अपनी स्वतन्त्र कल्पनाओं के माध्यम से नवीन सृष्टि करते हैं । भवभूति की उच्च कल्पना के सौन्दर्य को ***'डॉ० विमला गेरा'*** इन शब्दों में दर्शाया है -

'The Poet appears to have been a man of good imagation. As an illustration of his imagery, we take a verse from the Mahāvīrcarita, in which the whole plot of that play is compared to a tree which has the demand of Sīta (by Rāvaṇa) for its seed; the going of Sūparṇakhā to deceive Rāma & Lakṣmaṇa for sprout; the deceit played by Mārīca for leaves; the abduction of Sīta for branches; the depth of the prince Akṣa and Vibhiṣaṇa's alliance which them (Rāma and Lakṣmaṇa) for its buds. Again, Vālin compares the whole world to a tree; The Lokāloka mountain is fancied to be the basin of a tree; the nether region for the root, moon and sun for clustre of flowers and stars for flowers[3]. The descriptions of the evening and

---

१. *महावीरचरितम्* - १/६२ ।

२. *महावीरचरितम्* - १/६२ ।

३. *MVC* - Ibid - V. 45

midday given above, of the different directions[1] and of the tāndava dance of the goddess Karālā[2] also point to the same direction.[3]

वृत्तियाँ

वृत्ति का तात्पर्य नायक के उस व्यापार तथा स्वभाव से है, जो नायक को किसी कार्य की ओर प्रवृत्त करता है । ये प्रवृत्तियाँ चार हैं - कैशिकी, सात्त्वती, आरभटी तथा भारती । इनमें से नृत्य, गीत, विलास, कामक्रीडा आदि से युक्त कोमल तथा शृङ्गारी व्यापार, जिसका फल काम-पुरुषार्थ है, ***कैशिकी*** कहलाता है -

तद्व्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा , तत्र कैशिकी ।

गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदुः शृङ्गारचेष्टितैः ।।[४]

इस कैशिकी वृत्ति के चार अङ्ग माने जाते हैं - ***नर्म, नर्मस्फिञ्ज, नर्मस्फोट तथा नर्मगर्भ ।***

नर्मतत्स्फिञ्जतत्स्फोटतद्तगर्भैश्चतुरङ्गिका ।[५]

प्रिय नायिका के चित्त को प्रसन्न करने वाला विलासपूर्ण व्यापार ***'नर्म'*** कहलाता है -

वैदग्ध्यक्रीडितं नर्म प्रियोपच्छन्दनात्मकम् ।[६]

---

१. *MM - Ibid - VI.5 .*

२. *MM - Ibid - V. 23 .*

३. *'Mind and Art of Bhavabhuti'* - Dr. Vimala Gera, P. 250 .

४. *दशरूपकम्* - २/४७ ।

५. *दशरूपकम्* - २/४८ ।

६. *दशरूपकम्* - २/४८ ।

यह तीन प्रकार का होता है - हास्य से युक्त नर्म, शृङ्गार से युक्त नर्म तथा भय से युक्त नर्म। इनमें प्रथम भेद हास्य से युक्त होता है; दूसरा शृङ्गारी नर्म तीन प्रकार का होता है। ***आत्मोपक्षेपपरक***-जहाँ नायक या नायिका स्वयं के प्रेम को प्रकट करते हैं। ***सम्भोगपरक***-जहाँ सम्भोग की इच्छा प्रकट किया जाय तथा ***मानपरक***-जहाँ प्रिय के अनिष्ट करने पर नायिका मान करती है। ***'नर्मस्फिञ्ज'*** उसे कहते हैं, जहाँ नायक व नायिका को प्रथम समागम के समय पहले तो सुख होता है, किन्तु बाद में भय होता है कि कहीं कोई पिता आदि उसके भेद को न पा ले[1]-

'नमस्फिञ्जः सुखारम्भो भयान्तो नवसङ्गमे।'

'नर्मस्फोट' वह है, जहाँ सात्त्विकादि भावों के लेशमात्र से किञ्चित् मात्र रस की सूचना दी जाय[2] -

'नमस्फोटस्तु भावनां सूचितोऽल्परसो लवैः।'

जहाँ किसी प्रयोजन के लिए नायक छिपकर प्रवेश करे, उसे ***'नर्मगर्भ'*** कहते हैं[3] -

'छन्ननेतृप्रतीचारो नर्मगर्भोऽर्थहेतवे। अङ्गैः सहास्यनिर्हास्यैरेभिरेषाऽत्र कैशिकी॥'

जहाँ नायक का व्यापार शोकहीन होता है, तथा उसमें सत्त्व, शौर्य, त्याग, दया, कोमलता, हर्ष आदि भावों की स्थिति होती है वहाँ ***सात्त्वती*** होती है। इसके ***संलाप, उत्थापक, साङ्घात्य*** तथा ***परिवर्तक*** - ये चार अङ्ग होते है[4] -

'विशोका सात्त्वती सत्त्वशौर्यत्यागदयार्जवैः।संलोपात्थापकावस्यां साङ्घात्यः परिवर्तकः॥'

---

१. *दशरूपकम्*- २/५१।

२. *दशरूपकम्*- २/५१।

३. *दशरूपकम्*- २/५२।

४. *दशरूपकम्* -२/५३।

'संलाप' सात्त्वती वृत्ति का वह अङ्ग है, जहाँ पात्रों में परस्पर नाना भाव व रसयुक्त उक्ति पायी जाती है -

'संलापको गभीरोक्तिर्नानाभावरसा मिथः ।[१]'

जहाँ एक पात्र दूसरे पात्र को युद्ध के लिए उत्तेजित करे, वहाँ ***'उत्थापक'*** नामक सात्त्विकी-अङ्ग होता है -

'उत्थापकस्तु यत्रादौ युद्धायोत्थापयेत्परम् ।[२]'

शत्रु या प्रतिनायक के सङ्घ का जहाँ मन्त्रशक्ति, अर्थशक्ति, दैवशक्ति आदि के द्वारा भेदन किया जाय, वहाँ ***'साङ्घात्य'*** नामक सात्त्विकी-अङ्ग होता है-

'मन्त्रार्थदैवशक्त्यादेः साङ्घात्यः सङ्घभेदनम् ।[३]'

जहाँ किसी एक कार्य का आरम्भ किया गया है, किन्तु उस कार्य को छोड़कर दूसरे ही कार्य को किया जाय, वहाँ ***'परिवर्तक'*** नामक अङ्ग होता है –

'प्रारब्धोत्थानकार्यान्यकारणात्परिवर्तकः ।[४]'

आरभटी वृत्ति मे माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त आदि चेष्टाएँ पायी जाती हैं। इसके संक्षिप्तिका, सम्फेट, वस्तूस्थापन तथा अवपातन - ये चार अङ्ग होते हैं -

एभिरङ्गैश्चतुर्धेयं साात्त्वत्यारभटी पुनः ।
मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधाद्भ्रान्त्रादिचेष्टितैः ॥
संक्षिप्तिका स्यात्संफेटो वस्तूत्थानावपातने ।[५]

---

१. *दशरूपकम्* - २/५४ ।

२. *दशरूपकम्* - २/५४ ।

३. *दशरूपकम्* - २/५५ ।

४. *दशरूपकम्* - २/५५ ।

५. *दशरूपकम्* - २/ ५६, ५७ ।

माया वह है, जहाँ अवास्तव वस्तु को मन्त्र बल से प्रकाशित किया जाय, यही कार्य जब तन्त्र बल से किया जाता है तो वह ***इन्द्रजाल*** कहलाता है -

'माया - मन्त्रवलेनाविद्यमानवस्तुप्रकाशनम् , तन्त्रबलादिन्द्रजालम् ।[१]'

संक्षिप्तिका में नाटककार शिल्प का प्रयोग कर संक्षिप्त वस्तु की रचना करता है । कुछ लोगों के मत से 'संक्षिप्तिका' वहाँ होती है, जहाँ पहला नायक निवृत्त हो जाय तथा दूसरा नायक आवे या फिर नायक की एक अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था का ग्रहण किया जाय -*

संक्षिप्तवस्तुरचना संक्षिप्तिः शिल्पयोगतः । पूर्वनेतृनिवृत्त्याऽन्ये नेत्रन्तरपरिग्रहः।।'[२]

जहाँ दो क्रुद्ध पात्रों का परस्पर समाघात-एक दूसरे का अधिक्षेप, पाया जाता है, वह ***'सम्फेट'*** कहलाता है -

संफेटवस्तु समाघातः क्रुद्धसंरब्धयोर्द्वयोः।[३]

मन्त्रबल के द्वारा माया से किसी वस्तु की उत्थापना करना ***'वस्तूत्थापन'*** कहलाता है -

मायाद्युत्थापितं वस्तु वस्तूत्थापनमिष्यते ।[४]

किसी भी पात्र आदि के रङ्गमञ्च पर प्रवेश करने या रङ्गमञ्च से चले जाने पर दूसरे पात्रों में जो भय तथा भगदड़ मचती है, वह ***'अवपात'*** कहलाता है -

'अवपातस्तु निष्क्रामप्रवेशत्रासविद्रवैः ।[५]'

---

१. *दशरूपकम्* - २/५६ ।

२. *दशरूपकम्* - २/५७ , ५८ ।

३. *दशरूपकम्* - २/५८ ।

४. *दशरूपकम्* - २/५९ ।

५. *दशरूपकम्* - २/५९ ।

* *हिन्दी दशरूपक* - डॉ० भोला शङ्कर व्यास, पृष्ठ

इस प्रकार आरभटी वृत्ति के चार अङ्ग होते हैं । इन तीन वृत्तियों - कैशिकी, सात्त्वती तथा आरभटी के अतिरिक्त और कोई भी अर्थवृत्ति नहीं होती है । नाटक के सम्बन्ध में भारती नामक चौथी वृत्ति का भी उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है । वैसे अर्थवृत्तियाँ तीन ही हैं - कैशिकी, सात्त्वती तथा आरभटी । चूंकि वृत्ति का सम्बन्ध नायक के व्यापार से है, इसलिए रसपरक होने के कारण उनका किस-किस रस में प्रयोग होता है यह बताना आवश्यक है । कैशिकी का प्रयोग 'शृङ्गाररस' में, सात्त्वती का 'वीररस' में तथा आरभटी का 'रौद्र एवं वीभत्स रस' में किया जाता है, जबकि भारती वृत्ति का प्रयोग सभी रसों में होता है ।[१]

धनिक के अनुसार वृत्ति नेता का वह व्यापार या स्वाभाव है जो उसे किसी कार्य में प्रवृत्त करता है ।[२] कायिक, वाचिक और मानसिक व्यापार ही नाटक का प्रधान तत्त्व है और उसकी उत्पत्ति वृत्तियों में होती है इसीलिये इन्हें 'नाट्य-मातरः' कहा गया है ।[३]

महावीरचरितम् की प्रस्तावना में भारती वृत्ति का प्रयोग हुआ है । सात्त्वती वृत्ति के चारों भेदों - उत्थापक, साङ्घात्य, संलाप और परिवर्तक - का प्रयोग इस नाटक में किया गया है । बालि और राम का वार्तालाप[४] जिसमें शत्रु को उत्तेजित करने वाली वाणी का प्रयोग किया गया है, उत्थापक का उदाहरण है । माल्यवान् द्वारा पहले परशुराम का और फिर बालि का राम के विरुद्ध सम्प्रेषण 'साङ्घात्य' का उदाहरण है । द्वितीय अङ्क में जामदग्न्य के परशु के प्रति राम की उक्ति तथा उसके उत्तर में परशुराम की उक्तियाँ[५] 'संलाप' के उदाहरण हैं ।

---

१. *शृङ्गारे कैशिकी, वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः ।*
रसे रौद्रे च बीभत्से, वृत्तिः सर्वत्र भारती ॥ - *दशरूपकम्* - २/६२ ।

२. *प्रवृत्तिरूपो नेतृव्यापारस्वभावो वृत्ति ।* - *दशरूपकम्* - २/४७ ।

३. *भारती सात्त्वती कैशिक्यारभटी च वृत्तयः ।*
रसभावाभिनयगाश्चतस्रो नाट्यमातरः ॥ - *नाट्यदर्पण*, ३/१ ।

४. *महावीरचरितम्* - ५/४९ आदि ।

५. *महावीरचरितम्* - पृष्ठ ८९ ।

आरभटी वृत्ति के भी चारों भेदों का प्रयोग इस नाटक में हुआ है । राम-रावण युद्ध में जब राम और लक्ष्मण द्वारा रावण और मेघनाद के सिर काटे जा रहे थे तब एक के स्थान पर अनेक सिरों का प्रकट होना 'वस्तूत्थापन' है । 'सम्फेट' के भी अनेक उदाहरण उसी युद्ध में उपलब्ध हो जाते हैं ।[1] पञ्चम अङ्क में बालि के स्थान पर सुग्रीव की स्थापना 'संक्षिप्ति' है । चतुर्थ अङ्क में जामदग्न्य के उद्धत स्वभाव को शान्त स्वभाव में परिवर्तन भी संक्षिप्ति का उदाहरण है । 'अवपातन' का प्रयोग षष्ठ अङ्क के विष्कम्भक में हुआ है ।[2]

वीररस की प्रधानता के कारण महावीरचरितम् में कैशिकी वृत्ति के लिये अधिक स्थान नहीं था, फिर भी भवभूति ने द्वितीय अङ्क में सीता के साथ सखियों के वार्तालाप में 'नर्म' का प्रयोग कर दिया है ।[3]

मालतीमाधवम् की प्रस्तावना में भी भारती वृत्ति का प्रयोग हुआ है । शृङ्गारप्रधान होने के कारण इस प्रकरण में सात्त्वती और आरभटी के प्रयोग के लिये अवकाश नहीं था, फिर भी कवि ने बीच में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण कर दिया जहाँ उपर्युक्त दोनों वृत्तियों का प्रयोग भी अनुचित नहीं माना जा सकता । पञ्चम अङ्क में माधव और अघोरघण्ट के युद्ध-प्रसङ्ग में जहाँ वे दोनों एक-दूसरे को द्वन्द्व-युद्ध के लिये उत्तेजित करते है 'उत्थापक' नामक सात्त्वती वृत्ति का प्रयोग हुआ है । कैशिकी वृत्ति के चारों भेदों के उदाहरण मालतीमाधव में उपलब्ध होते हैं । मदनोद्यान में माधव को देखकर सखियाँ उसकी ओर उंगली से सङ्केत कर कहती हैं - ***'भर्तृदारिके ! दिष्ट्या वर्धामहे यदत्रैव कोऽपि कस्यापि तिष्ठति ।'*** सखियों की इस हास-परिहासमय लीला में 'नर्म' नामक कैशिकी वृत्ति है ।

---

१. *महावीरचरितम्* - ६/३१, ४५, ४६, ५४, ५६ ।

२. *महावीरचरितम्* - ६/४ ।

३. *महावीरचरितम्* - पृष्ठ ९३ ।

उत्तररामचरितम् की प्रस्तावना में भी भारती वृत्ति का ही प्रयोग हुआ है । सात्त्वती वृत्ति के अन्तर्गत 'संलापक' का प्रयोग चतुर्थ अङ्क के अन्त में हुआ है, जहाँ सैनिक उत्तेजनात्मक वाणी का प्रयोग करता है । पञ्चम अङ्क के अन्त में लव और चन्द्रकेतु का वार्तालाप भी संलापक का उदाहरण बन गया है । उत्तररामचरितम् में कैशिकी वृत्ति के उदाहरण नहीं प्राप्त होते हैं क्योंकि यह नाटक शृङ्गार-प्रधान नहीं है ।

छन्द

महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में पच्चीस छन्दों का प्रयोग किया है । महावीरचरितम् में १९ छन्दों का प्रयोग हुआ है । उत्तररामचरितम् में प्रयुक्त छन्दों की संख्या भी १९ है । स्रग्धरा और उपेन्द्रवज्रा, जो महावीरचरितम् में प्रयुक्त हुए हैं, उत्तररामचरितम् में किया है, जबकि मञ्जुभाषिणी और 'द्रुतविलाम्बित' जिनका प्रयोग उत्तररामचरितम् में किया गया है, महावीरचरितम् में उपलब्ध नहीं होते । मालतीमाधवम् में कवि ने सभी (२५) छन्दों का प्रयोग किया है । वीररस प्रधान महावीरचरितम् में 'शार्दूलविक्रीडित' का आधिक्य शास्त्रानुसार है । शार्दूलविक्रीडित के समान स्रग्धरा, शिखरिणी तथा मन्दाक्रान्ता की गणना भी वीररस के सहायक छन्दों में की जाती है । ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्यशास्त्र के निर्देशानुसार ही भवभूति ने इन तीनों छन्दों के प्रयोगों को प्रधानता दी है ।[१] ***मालतीमाधवम्*** शृङ्गाररस-प्रधान प्रकरण है इसलिए उसमें वसन्ततिलका का प्रयोग सबसे अधिक किया गया है । वसन्ततिलका छन्द नायिका-वर्णन के लिए उत्तम माना गया है, इसलिए प्रथम अङ्क में वसन्ततिलका की संख्या सबसे अधिक है।

उत्तररामचरितम् की वृत्त रचना में भी भवभूति महावीरचरितम् के समान ही वाल्मीकि के श्लोक से प्रभावित रहे हैं । यही कारण है कि उन्होंने इस नाटक में एक तिहाई पद्य अनुष्टुप् में

---

१. *महावीरचरितम् में शिखरिणी* - ३१, *स्रग्धरा* - २८, *मन्दाक्रान्ता* - १७ ।

लिखे हैं । अनुष्टुप् के बाद सबसे अधिक संख्या शिखरिणी की है ।[1] शिखरिणी करुण, वीर और शृङ्गार रस के लिए उपयुक्त है ।

भवभूति की शैली की अन्य विशेषताओं में प्रौढित्व, अर्थगौरव, व्यङ्ग्य आदि हैं, जिसमें प्रौढित्व, पाण्डित्य और वैदग्ध्य के बोधक हैं ।[2] मालतीमाधवम् के टीकाकार ***त्रिपुरारि*** ने विवक्षित अर्थ के निर्वाह को प्रौढि माना है ।[3] प्रौढित्व के समान ही ***अर्थगौरव*** भी उत्तम शैली का एक उदात्त गुण है । अर्थगौरव की स्थिति वहीं मानी जा सकती है जहाँ कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ की निष्पत्ति हो । नाटक के अर्थगौरव के भी महत्त्व को भवभूति ने स्वयं स्वीकार किया है ।[4] वे एक समर्थ कवि हैं इसलिए उन्होंने अपनी तीनों कृतियों को अर्थगौरव से अलङ्कृत कर दिया है ।

महावीरचरितम् के प्रथम अङ्क में जब विश्वामित्र ताटका वध का आदेश देते हैं तब राम कहते हैं – ***'भगवन्! स्त्री खल्वियम् ।'*** इसी नाटक के द्वितीय अङ्क में परशुराम जब राम को खोजने के लिए गर्जना करते हुए जनक के कन्यान्तःपुर में पहुँचते हैं और राम स्वयं उनके सामने आकर कहते हैं – *'मैं यहाँ हूँ, इधर आइये आप,'* तब परशुराम कहते हैं – ***'सत्यमैक्ष्वाकः खल्वसि ।'***

मालतीमाधवम् में द्वितीय अङ्क के विष्कम्भक में विषम परिस्थिति की चर्चा होने पर एक चेटी दूसरी से कहती है – ***'अपि नाम भगवत्यत्र किमपि भगवतीत्वं दर्शयिष्यति ।'*** अर्थात् भगवती कामन्दकी इस मामले में अवश्य ही कोई महिमा दिखायेंगी । ***उत्तररामचरितम्*** के द्वितीय अङ्क में शम्बूक पर कृपाण का प्रहार करने के पश्चात् राम का कथन ***'कृत रामसदृशं कर्म'***

---

१. *उत्तररामचरितम्* - १/२२ ।

२ & ४ *मालतीमाधवम्* - १/८ ।

३. *मालतीमाधवम्* - त्रिपुरारि टीका - पृष्ठ ९ ।

तथा तृतीय अङ्क में यह विदित होने पर कि राम ने अश्वमेध यज्ञ में सहधर्मचारिणी का स्थान ग्रहण करने के लिए सीता की ही सुवर्ण निर्मित प्रतिकृति का निर्माण कराया है' राम के प्रति सीता की उक्ति *'आर्य पुत्र! । इदानीमसि त्वम्'* अर्थगौरव का सुन्दर उदाहरण है ।

भवभूति ने कुछ अत्यन्त मार्मिक भावों की उद्‌भावना की है, अतएव अनेक स्थानों पर अर्थ-गौरव प्राप्त होता है । दाम्पत्य जीवन का जितना स्वाभाविक और मार्मिक वर्णन भवभूति ने किया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है । भवभूति का कथन है कि दाम्पत्य-भाव सुख-दुःख में एक रूप रहता है, जीवन की वृद्धावस्था इसके रस को नहीं हर सकती है; यह विवाह से मृत्यु तक परिपक्व प्रेम रूप में रहता है -

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य-

द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।

कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं,

भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते ।।[१]

भवभूति ने अपनी सभी रचनाओं में अनेक स्थलों पर सुन्दर व्यङ्ग्य प्रस्तुत किये हैं । महावीरचरितम् के द्वितीय अङ्क में राम की उक्ति - ***'भार्गव! ज्ञायते मामनुकम्पस इति'*** व्यङ्ग्यपूर्ण है । मालतीमाधवम् के सप्तम अङ्क में जब मदयन्तिका अपनी भाभी मालती पर वामशीला होने का आरोप लगाती है तब लवङ्गिका व्यङ्ग्यपूर्ण उत्तर देती है – ***'कथं नाम नववधूविस्रम्भणोपाय ज्ञातारं मनोहरं विदग्धमधुभाषिणं च ते भ्रातरं-भर्तारं समासाद्य दुर्मनायिष्यते' मे प्रियसखी'*** इस प्रकार भवभूति की भाषा-शैली नाट्य-शिल्प की दृष्टि से समीचीन लगती है ।

---

१. *उत्तररामचरितम्* , १/३९ ।

गर्भाङ्क

उत्तररामचरितम् का सप्तम अङ्क महाकवि भवभूति की काव्य प्रतिभा एवं अलौकिक कल्पना शक्ति का अनुपम उदाहरण है । कवि ने गर्भाङ्क की योजना कर नाटक जगत् में एक नयी विधा की सृष्टि कर दी है । इस गर्भाङ्क में अप्सराएं वाल्मीकि प्रणीत नाटक खेलती हैं । अयोध्या के राजा राम, जनता और तीनों लोकों के प्रसिद्ध नागरिक नाटकों को देखने के लिए बुलाये जाते हैं । नाटक में करुणरस की प्रधानता है । नाटक को देखकर सभी को विश्वास हो जाता है कि सीता निर्दोष है । अन्त में राम, सीता, लव और कुश का सुखद मिलन होता है । इस प्रकार इस नाटक का सुखमय पर्यवसान होता है । कवि की यह सारी योजना नाटक को सुखान्त बनाने के लिए हुई है क्योंकि भरत नाट्यानुसार संस्कृत के नाटक प्रायः सुखान्त होते हैं।

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के समीप गङ्गा तट पर यह नाटक अभिनीत होता है । सर्वप्रथम सूत्रधार प्रवेश कर कहता है कि आदिकवि वाल्मीकि स्थावर-जङ्गम जगत् को आज्ञा देते हैं कि हमने आर्ष दृष्टि के द्वारा पवित्र, करुण और अद्‌भुत रसयुक्त अमृतवचनासिक्त जो नाटक बनाया है उसमें काव्य के गौरव से आप लोगों को ध्यान देना चाहिए ।

सूत्रधार के इस कथन के पश्चात् नेपथ्य से दुःखी सीता का करुण क्रन्दन सुनायी पड़ता है – ***'हा आर्यपुत्र ! हा कुमार लक्ष्मण'*** *एकाकिनी, अशरणा, आसन्नप्रसववेदना वाली और आशा शून्य हुई जंगल में मुझे व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु खाने की इच्छा कर रहे हैं । हाय, इस समय मन्द भाग्यवाली मैं अपने शरीर को गङ्गाजी में डाल रही हूँ ।'* इस प्रसङ्ग के द्वारा कवि ने प्रेक्षकों के समक्ष देवी सीता की स्थिति स्पष्ट कर दी है । इसी आवेग में आकर राम कहने लगते हैं कि – ***'देवि सीते ! लक्ष्मण को देखो ।'*** लक्ष्मण, राम का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहते हैं- ***'आर्य नाटकमिदम्'*** । वे धैर्य के साथ आर्ष रचना देखने का निवेदन करते

हैं । तत्पश्चात् एक-एक बालक को गोद में लिए हुए भगवती वसुन्धरा और भागीरथी से स्थिर की गयी मूर्च्छित दशा में सीता प्रवेश करती हैं । दोनों देवियाँ सीता को आश्वस्त करती हैं। भागीरथी कहती हैं कि संसार को धारण करने वाली भगवती विश्वम्भरा भी दुःखी हैं । जब वसुन्धरा को समझाती हुई गङ्गा इस प्रकार कहती हैं तो फल देने के लिए तत्पर भाग्य के द्वार को कौन बन्द कर सकता है । तब भगवती पृथ्वी कहती हैं कि क्या यह सब कुछ करना रामभद्र को उचित है । उन्होंने बाल्यावस्था में किए गये पाणिग्रहण की उपेक्षा नहीं की । इस प्रकार मेरी, जनक की, अग्नि की, सीता के पातिव्रत की और पवित्र संतान की भी उपेक्षा नहीं की है ।[१]

इस प्रकार राम की विवशता को प्रस्तुत कर गङ्गा वसुन्धरा को शान्त करती है । दोनों देवियाँ सीता की पवित्रता को प्रमाणित करती हैं । इसके बाद राम और सीता के मिलन के साथ नाटक की समाप्ति होती है । भरत के 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार भवभूति ने नाटक को सुखान्त बनाया है ।

---

१. *उत्तररामचरितम्* - ७/५ , ७/६ ।

अध्याय - ८

मूल्याङ्कन

नाटक मानवीय मनोभावों की अभिनेयात्मक अभिव्यक्ति है । दशरूपकों में नाटक का स्थान सर्वोपरि है । इसमें अवस्था का अनुकरण पाया जाता है और इस अनुकरण की अवस्था में अनुकर्ता अनुकार्य के चाल-ढाल, वेशभूषा आदि प्रत्येक अवस्थाओं का ऐसा अनुकरण करता है कि सामाजिक उसे अनुकार्य ही समझे । इस प्रकार यह अनुकरण ही सामाजिक की रसानुभूति का कारण है । महाकवि भवभूति के तीन नाटक हैं - महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् तथा उत्तररामचरितम् । इस शोध-प्रबन्ध में संस्कृत नाट्य-परम्परा, भवभूति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व, कथावस्तु तथा नाट्यशिल्प की दृष्टि से समालोचना की गयी है ।

प्रथम अध्याय में संस्कृत नाट्य-परम्परा के अन्तर्गत भरत के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती नाट्याचार्यों के विषय में चर्चा की गयी है । आचार्य भरत से पूर्व नाट्य विषयक ग्रन्थों का कुछ पता नहीं चलता है किन्तु नाट्यशास्त्र एवं अभिनवभारती आदि ग्रन्थों में सुरक्षित नाट्याचार्यों के नाम से ज्ञात होता है कि आचार्य भरत के पहले भी नाट्य विषयक कार्य हो चुका था । नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों के निर्माण की मूर्त परम्परा का प्रवर्तन आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र से ही हुआ है । उनका यह महान ग्रन्थ चारों वेदों का सारभूत 'पञ्चम वेद' के रूप में जाना जाता है।

द्वितीय अध्याय में भवभूति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है । भवभूति के जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है । मालतीमाधवम् की प्रस्तावना-***'अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरं नाम नगरम्'*** से ज्ञात होता है कि भवभूति का जन्मस्थान पद्मपुर ही था । ***टीकाकार जगद्धर***[१] ने मालतीमाधवम् की टीका में पद्मपुर का अर्थ पद्मावती बताया है । ***जनरल कनिङ्घम***[२] ने नरवर को पद्मावती का आधुनिक नाम बताया । ***एम०बी०गर्दे***[३] ने

---

१. *'पद्मनगरं पद्मावती'* – जगद्धर टीका, पृष्ठ ७ ।

२. *Cunningham* - 'Archaeological Report for 1962-5 Vol II, P-307-308 A'

३. *एम०बी०गर्दे*-'Archaeological Survey of India', Report for 1915-16,**P**.-101-3.

नरवर के पास पद्मपवाया नामक गाँव को पद्मावती बताया है । ***डॉ० भण्डारकर***[1] चाँदा जिले के पद्मपुर गाँव को ही भवभूति की जन्मभूमि कहते हैं । ***डॉ० वी०वी०मिराशी***[2] भवभूति का जन्मस्थान भण्डारा जिले में आमगाँव स्टेशन से पूर्व में स्थित पद्मपुर को बताते हैं । जो प्राचीन काल में वाकाटक राजाओं की राजधानी थी । वहाँ अब भी प्राचीन अवशेष प्राप्त हो रहे हैं । जिनका वर्णन भवभूति ने अपने नाटकों में किया है । इस प्रकार भवभूति की जन्मभूमि पद्मपुर को मानना ही उचित प्रतीत होता है ।

तृतीय अध्याय में भवभूति के नाटकों की कथावस्तु की समीक्षा इतिवृत्त सम्बन्धी शास्त्रीय लक्षणों और अपेक्षाओं के सन्दर्भ में की गयी है । उनके द्वारा कथानकों में जो परिवर्तन किये गये हैं उनका भी उल्लेख यहाँ पर किया गया है । नाटकों के इतिवृत्त का आश्रय लेकर स्थान-स्थान पर कवि की मौलिक प्रतिभा और नाटकीय कुशलता का निदर्शन कराया गया है । उत्तररामचरितम् के कथानक का आधार वाल्मीकीय रामायण है । नाट्य-शिल्प की दृष्टि से इस नाटक की असाधारण सफलता के पीछे ये परिवर्तन ही हैं जो भवभूति ने मूलकथा में किये हैं । चित्रदर्शन का दृश्य भवभूति की अपनी कल्पना है । इसकी योजना द्वारा राम और सीता के दाम्पत्य जीवन में प्रेम की गम्भीरता चित्रित कर महाकवि ने भावी विरह की असहनीय वेदना को अत्यन्त तीव्र बना दिया है । इसी प्रकार शम्बूक वध की प्रसिद्ध घटना का आश्रय लेकर भवभूति ने राम को पञ्चवटी के पूर्व परिचित स्थानों में लाकर उपस्थित कर दिया है जहाँ वे सीता के सहवास की स्मृतियों से विह्वल होकर अपनी वेदना की अभिव्यक्ति निःसंकोच कर सकें । राम की उस मनोव्यथा को प्रत्यक्ष देखने के लिये सीता को अदृश्य रूप में लाकर उपस्थित कर देना भवभूति की अनूठी कल्पना है । वाल्मीकि आश्रम में राम के आगमन से पूर्व वसिष्ठ, अरुन्धती,

---

१. ***मालतीमाधव टिप्पणी*** -- डॉ० भण्डारकर, पृष्ठ ३ ।

२. ***Bhavbhuti*** -- Dr. V. V. Mirashi, P. - 36-43.

जनक तथा राजमाताओं को एकत्र करना, लव के साथ चन्द्रकेतु का युद्ध दिखाकर राम को एक अप्रिय प्रसङ्ग से बचा लेना तथा वाल्मीकि के आदेश से लक्ष्मण द्वारा गर्भनाटक की योजना कराना महाकवि की मौलिक कल्पनायें हैं । सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन जो भवभूति ने किया है वह है अन्त में राम और सीता का मिलन कराना । नायक-नायिका का मिलन दिखाकर भवभूति ने नाट्यशास्त्र के नियम का पालन किया है जिसके अनुसार नाटक सुखान्त होने चाहिये। महावीरचरितम् की कथावस्तु का आधार भी वाल्मीकीय रामायण है । इस नाटक में ऐतिहासिक पात्र माल्यवान् की असाधारण कूटनीति को दिखाया गया है जिसके चलते वह परशुराम को राम के विरुद्ध उत्तेजित करता है तथा बालि को राम के शत्रु के रूप में प्रस्तुत करता है । राम और बालि का परस्पर युद्ध होने के कारण बालि और सुग्रीव के युद्ध का अप्रिय प्रसङ्ग बच गया है और राम भी आत्मरक्षा के लिए बालि का वध करने के कारण दोषमुक्त हो गये हैं ।

मालतीमाधवम् का कथानक कविकल्पित है । यद्यपि कथा-सरित्सागर से इसके कथानक का साम्य है परन्तु भवभूति ने मूलकथा में इतने अधिक परिवर्तन कर दिये हैं कि इस प्रकरण का कथानक नवीन लगता है । नाटक में कामन्दकी को मध्यस्त बनाने की कल्पना चाहे उन्होंने दण्डी के दशकुमारचरितम् से ही क्यों न ली हो परन्तु कामन्दकी की समस्त नीतिगत योजनायें भवभूति की प्रतिभाजन्य मौलिकता का परिचय देती है ।

चतुर्थ अध्याय में भवभूति के पात्रों की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है । यहाँ, कहीं संवादों द्वारा तथा कहीं इतिवृत्तात्मक प्रसङ्गों के द्वारा अपने चरित्रों को पूरी गरिमा के साथ प्रस्तुत किया गया है, जिससे प्रेक्षक या पाठक भावनात्मक स्तर पर संवाद स्थापित कर देता है । यद्यपि उनके उत्तररामचरितम् में वे ही पात्र - राम, लक्ष्मण, जनक और सुमन्त्र आदि हैं, फिर भी समय और परिस्थितियों के कारण उनकी चरित्रगत विशेषतायें भिन्न-भिन्न हैं । जिस राम का चरित महावीरचरितम् में 'महावीर' के रूप में स्पष्ट किया गया है, वे उत्तररामचरितम् में 'प्रजानुरञ्जक

राजा' और 'शोक-विह्वल पति' के रूप में हैं । जिस समय श्रीराम सीता-निर्वासन का कठोर निर्णय लेते हैं, उस समय सीता जी उनके अङ्क में सिर रखकर सो रही थीं । किसी भी उपजीव ग्रन्थ में इस विषय में कोई स्पष्ट निर्देश प्राप्त नहीं होता कि जिस समय राम ने सीता के परित्याग का निर्णय लिया, उस समय वे क्या कर रही थी । इस दृश्य का संयोजन भवभूति ने नाटकीय कौतूहल की दृष्टि से किया है । यह दृश्य मानव जीवन की विडम्बनाओं को उजागर करता है । यह सीता के भाग्य की सबसे बड़ी विडम्बना है कि उसने जिस व्यक्ति के अङ्क का आश्रय लिया; जो उसके सुख और संतृप्ति का सबसे बड़ा स्रोत है, उसी व्यक्ति के माध्यम से उनके जीवन का सबसे दारुण क्षण उपस्थित हुआ । मानवीय जीवन में ऐसी विडम्बना प्रायः घटित होती है, जहाँ परमसुख के क्षणों में परमदुःख की भूमिका उपस्थित होती है । जैसा कि राम के राज्याभिषेक के समय में हुआ था ।

इस दृश्य की संयोजना के द्वारा भवभूति ने राम और सीता दोनों के जीवन की विसंगति की ओर सङ्केत किया है और करुण रस के परिपाक का एक साङ्केतिक अवसर भी उपस्थित कर दिया है । यदि यह दृश्य किसी और तरह से लिखा गया होता तो सीता के प्रेम, विश्वास और त्याग का ऐसा निर्मम उपहास रेखांकित नहीं किया जा सकता था । इस प्रकार सामान्य कवि में एक ही पात्र के व्यक्तित्व में दो भिन्न-भिन्न प्रकार की चरित्रगत विशेषतायें स्थापित करने की सामर्थ्य नहीं दिखती जैसी भवभूति की कल्पना में दृष्टिगोचर होती है ।

महावीरचरितम् में भवभूति ने देव, मनुष्य और राक्षस तीन प्रकार के पात्रों का समावेश किया है फिर भी इनके गुणों में परस्पर अन्तर है । मालतीमाधवम् में स्त्री पात्रों की संख्या पुरुष पात्रों से अधिक है । इस प्रकरण में भवभूति ने मनुष्य जाति के ही पात्रों का चयन किया है परन्तु यहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति की अलग-अलग चारित्रिक विशेषतायें हैं । इस तरह भवभूति के तीनों नाटकों में व्यक्ति-वैचित्र्य है जो उनके नाटकों को स्वाभाविकता और समृद्धि प्रदान करता है ।

पञ्चम अध्याय में आचार्य मम्मट के काव्यप्रकाश से रस के स्वरूप एवं सिद्धान्त को विवेचित किया गया है, तत्पश्चात् रसानुभूति के आलोक में भवभूति के नाटकों की समीक्षा की गयी है । उत्तररामचरितम् भवभूति का ऐसा नाटक है जो उनको संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में स्वनामधन्य सिद्ध करता है । इस नाटक के अङ्गीरस के विषय में विद्वानों में मतभेद है । कुछ लोग करुण को नाटक का प्रधान रस मानते हैं और कुछ करुण-विप्रलम्भ शृङ्गार को । करुण-विप्रलम्भ वहाँ माना जाता है जहाँ प्रेमी-प्रेमिका मे से एक की मृत्यु हो जाती है फिर भी देवकृपा आदि से उसके पुनजीर्वित होने या पुनः प्राप्त होने की आशा होती है । यथा कादम्बरी में पुण्डरीक और महाश्वेता के वृतान्त में।[१] यदि प्रेमपात्र व्यक्ति से मिलन न हो सके या जन्तान्तर में मिलन हो सके उसे करुण रस ही कहा जायगा ।

यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये ।

विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करुणविप्रलम्भाख्यः ॥[२]

यथा कादम्बर्यां पुण्डरीकमहाश्वेतावृतान्ते । पुनरलभ्ये शरीरान्तरेण वा

लभ्ये तु करुणाख्य एव रसः ।[३]

यहाँ विश्वनाथ ने इस श्लोक में 'दम्पत्योः' या 'स्त्रीपुंसयोः' पद न रखकर 'यूनोः' पद दिया है । इसका तात्पर्य है कि करुण-विप्रलम्भ वहाँ होता है, जहाँ पर दम्पति या पति-पत्नी का नहीं, अपितु प्रेमी-प्रेमिका या युवक-युवती में से एक का कुछ समय के लिए वियोग होता है । यहाँ विवाहितों की नहीं, अपितु अविवाहितों के प्रणय-संबन्ध की चर्चा है और प्रणय के परिणय के रूप में परिवर्तित होने से पूर्व ही असफल-मनोरथ, प्रेमी-युगल के विरह-वैक्लव्य के संग्रहार्थ नवीन करुण-विप्रलम्भ शृङ्गार की योजना की गयी है । इसलिए पण्डितराज जगन्नाथ ने रसगङ्गाधर में करुण-विप्रलम्भ नामक शृङ्गार के भेद को ही अस्वीकार करते हुए अरुचिपूर्वक

---

१. *साहित्यदर्पण* - ३/१८७ ।

२. *साहित्यदर्पण* - ३/२०९ ।

३. *साहित्यदर्पण* - ३/२०९ ।

'केचित्तु' - यह कहकर इसका उल्लेख किया है –

केचित्तु रसान्तरमेवात्र करुण-विप्रलम्भाख्यमिच्छन्ति ।[1]

उनका कथन है कि पुत्रादि इष्ट व्यक्तियों के वियोग या मरणादि से उत्पन्न होने वाली विकलता को शोक कहते हैं । यह शोक ही करुण रस का स्थायिभाव है । स्त्री और पुरुष के वियोग में यदि उनके जीवित होने का ज्ञान रहता है तो वहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार होता है । मृत होने का ज्ञान होने पर करुण रस होता है । यदि मृत के बाद पुनजीर्वित हो जाएगा तो विप्रलम्भ शृङ्गार होगा ।

आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में करुण रस और विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर को स्पष्ट किया है । उनका कथन है कि करुण रस इष्टजन-वियोगादि विभावों से उत्पन्न होता है । इसमें निरपेक्षभाव व्याप्त रहता है, अर्थात् इष्ट-व्यक्ति से मिलन की आशा नहीं रहती है । विप्रलम्भ शृङ्गार में उत्सुकता और चिन्ता रहती है तथा सापेक्ष भाव बना रहता है । करुण में निराशा है और विप्रलम्भ में आशा । यही दोनों का मुख्य अन्तर है ।

करणस्तु शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविभवनाशवधबन्धसमुत्थो निरपेक्षभावः । औत्सुक्यचिन्तासमुत्थः सापेक्षभावो विप्रलम्भकृतः । एवमन्यः करुणोऽन्यश्च विप्रलम्भ इति।[2]

भोज[3] ने 'शृङ्गारप्रकाश' में करुण-विप्रलम्भ और करुणरस के स्थायिभाव 'शोक' में अन्तर किया है – करुण-विप्रलम्भ का कारण एक मात्र ***'रति'*** है । इसमें पुनः सङ्गम होता है। इसके आलम्बन स्त्री और पुरुष हैं । इसमें पुनर्मिलन की आशा रहती है । करुणरस के स्थायिभाव ***शोक*** के अनेक कारण हैं – प्रेम, दया आदि । इसमें पुनः सङ्गम नहीं होता है ।

---

१. *रसगङ्गाधर* - पण्डितराज जगन्नाथ ।

२. *नाट्यशास्त्र* - आचार्य भरतमुनि, ६/४६, बड़ौदा सं०, पृष्ठ ३०९-३१० ।

इसके आलम्बन स्त्री-पुरुष से भिन्न व्यक्ति भी हो सकते हैं । इसमें पुनर्मिलन की आशा भी नहीं रहती है ।[1]

इससे स्पष्ट है कि भोज (१००५ई०) ने शृङ्गार के जिस करुण-विप्रलम्भ भेद की उद्भावना की और उसे व्यापक रूप दिया, उसे विश्वनाथ (१४वीं शती ई०) ने केवल युवक-युवती या प्रेमी-प्रेमिका तक सीमित किया और जगन्नाथ (१५९०-१६५५ई०) ने उसे अनावश्यक बनाकर उस भेद को ही समाप्त कर दिया । जगन्नाथ के अनुसार ऐसे स्थलों को करुण-विप्रलम्भ न कहकर केवल विप्रलम्भ शृङ्गार कहना चाहिए ।

विश्वनाथ ने करुणरस और करुण विप्रलम्भ में अन्तर दिया है कि करुणरस में स्थायिभाव 'शोक' होता है जबकि विप्रलम्भ में स्थायिभाव 'रति' होती है और वह पुनर्मिलन का कारण है ।

शोकस्थायितया भिन्नो विप्रलम्भादयं रसः ।
विप्रलम्भे रतिः स्थायी पुनः संभोगहेतुकः ।।[2]

आनन्दवर्धन और ***विश्वनाथ*** ने अपनी सम्मति प्रकट की है कि विप्रलम्भ शृङ्गार में मृत्यु का वर्णन नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे रस का विच्छेद हो जाता है । करुण रस में इसकी उपयोगिता है, अतः वहाँ मृत्यु का वर्णन प्रासंगिक है ।[3]

आचार्य आनन्दवर्धन ने रस के विषय में अपना निश्चित मत व्यक्त किया है कि नाटक या काव्य में एक ही मुख्यरस का प्रधानता से वर्णन करना चाहिए, इससे उसका सौन्दर्य परिपुष्ट

---

१. *शृङ्गारप्रकाश* - भोज - संगृहीत, उत्तररामचरित भूमिका,डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ९२ ।

२. *साहित्यदर्पण* - ३/२२६ ।

३. *ध्वन्यालोक* - ३/७६ & साहित्यदर्पण - ३/१९३ ।

होता है । उन्होंने उदाहरण देकर स्पष्ट किया कि जैसे रामायण में करुण ही मुख्य रस है[1] ठीक उसी प्रकार प्रत्येक कवि को अपने ग्रन्थ में मुख्यतया एक ही रस का वर्णन करना चाहिए । रामायण में यद्यपि सभी रसों का वर्णन है, परन्तु प्रमुख रस करुण ही है ।[2]

उत्तररामचरितम् में शृङ्गार, वीर आदि सभी रसों का वर्णन है, परन्तु प्राधान्य में करुण का ही है । इस नाटक में भवभूति ने करुण रस का प्रथम उद्भव दुर्मुख के उस 'वाग्वज्र' से कराया है जिसे सुनते ही राम मूर्च्छित हो जाते हैं । सीता के प्रवाद के स्मरण मात्र से राम के हृदय में असह्य वेदना उत्पन्न हो जाती है ।[3] वे सीता की पवित्रता एवं पातिव्रत का स्मरण कर विलाप करने लगते हैं ।[4] इसी प्रकार सातवें अङ्क के 'गर्भाङ्क' की प्रस्तावना में सीता का विलाप जो नेपथ्य में सुनायी देता है वह अत्यन्त करुण है परन्तु इसी अङ्क में राम और सीता के मिलन से करुण इस नाटक का अङ्गीरस नहीं रह जाता । करुण में नायक और नायिका में से किसी एक की मृत्यु हो जाती है जिससे फिर कभी मिलन हो पाना सम्भव नहीं होता, परन्तु महाकवि ने इस नाटक में करुण की प्रधानता भी देते हुए भी अन्त में राम और सीता का मिलन दिखाकर अर्थात् करुण का शृङ्गार में पर्यवसान कर स्वयं को उस अपराध से मुक्त कर लिया है जो शास्त्रीय नियम ***'एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा'*** के उल्लंघन से होता ।

नाटक के कथानक को गतिशील बनाने के लिये संवादों की अहं भूमिका होती है । यह अन्तर्जगत् को बाह्य मञ्च पर प्रस्तुत करने का माध्यम है । संवाद से ही पात्रों का चरित्र स्पष्ट होता है । नाटक में पात्रों की उक्तियाँ दर्शकों को आनन्द के धरातल पर ले जाती हैं । यद्यपि

---

१. ***'....... रामायणे हि करुणो रसः.....'*** ध्वन्यालोक - ४/१०९ ।

२. ***उत्तररामचरितम्*** – डॉ० कपिलदेव द्विवेदी - पृष्ठ ९०-९४ ।

३. ***उत्तररामचरितम्*** – १/३ ।

४. ***उत्तररामचरितम्*** – १/४५-४९ ।

भवभूति ने अपने नाटकों में सुन्दर संवादों का प्रयोग किया है फिर भी इन संवादों को दोषरहित मानना युक्तिसंगत नहीं लगता । उनके पात्र जब आपस में संवादात्मक शैली में एक दूसरे के प्रति उक्ति-प्रत्युक्ति करते हैं तो ऐसा लगता है कि एक पात्र दूसरे से नहीं अपितु हमसे अर्थात् जनसाधारण से बात कर रहे हों ।

'भाषा' पर भवभूति का असाधारण अधिकार है । वाणी उनकी वशवर्तिनी है । वे सरलतम भाषा का प्रयोग भी कर सकते हैं और क्लिष्टातिक्लिष्ट भाषा के प्रयोग में भी सिद्धहस्त हैं । उनकी भाषा भावों की अनुगामिनी है । वीर, रौद्र या बीभत्स रसों की अभिव्यञ्जना करते समय उनकी भाषा स्वतः ही क्लिष्ट हो जाती है । आवश्यकतानुसार उन्होंने कोमल-कान्त-पदावली का प्रयोग भी किया है । उनकी भाषा पात्रों के अनुरूप है । दोनों प्रकार की रीतियों-वैदर्भी और गौडी पर उनका समान अधिकार है । भवभूति की यही विशेषता उन्हें महाकवि कालिदास से पृथक् कर देती है । कालिदास उपमा के लिये प्रसिद्ध हैं, परन्तु वे प्रायः मूर्त पदार्थों की उपमा मूर्त पदार्थों से ही देते हैं । भवभूति ने मूर्त की उपमा अमूर्त से देकर इस क्षेत्र में भी अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है ।

'प्रकृति' के प्रति भवभूति का हार्दिक प्रेम है । उन्होंने प्रकृति के कोमल रूप का ही चित्रण नहीं किया है, अपितु प्रकृति के भीषण एवं भयानक रूप के प्रति उन्होंने उतनी ही रुचि दिखायी है । भवभूति का प्रकृति-चित्रण एकाङ्गी नहीं है । प्रकृति के प्रत्येक रूप का उन्होंने सूक्ष्म निरीक्षण किया है और पूर्ण निष्ठा के साथ उसका विस्तृत वर्णन किया है । उनके नाटकों में प्रकृति का वर्णन आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में हुआ है । उनकी लेखनी का स्पर्श पाकर जड़ प्रकृति भी चेतन हो उठी है । नदियाँ भी मानवीय रूप धारण कर रङ्गमञ्च पर उपस्थित हो गयी हैं ।

भवभूति अत्यन्त उदात्त रुचि के कवि हैं । नारी का वर्णन करते समय उनकी दृष्टि उसके गुणों पर ही रहती है, बाह्य सौन्दर्य पर नहीं । उन्होंने नारी का चित्रण - 'इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोः' के रूप में किया है । सीता के प्रति भक्ति-भावना के कारण उन्होंने उनके रूप का वर्णन नहीं किया है, परन्तु मालती के बाह्य-सौन्दर्य के वर्णन में तो वे स्वतन्त्र थे। किन्तु यहाँ भी उन्होंने मालती और मदयन्तिका के नख-शिख का वर्णन भी नहीं किया है, जिससे सिद्ध होता है कि वे इस दृष्टि से अत्यन्त मर्यादाशील हैं।

भवभूति ने पुरुष के रूप-वर्णन में भी अपनी रुचि दिखायी है । इस दिशा में वे संस्कृत के अन्य कवियों से आगे है । उत्तररामचरितम् में राम के तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त के वर्णन की तुलना करने पर यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है ।

भवभूति गम्भीर स्वभाव के कवि हैं । यही कारण है कि उनके तीनों नाटकों में विदूषक को कोई स्थान नहीं मिल सका है । उनकी कृतियों में सर्वत्र भाव-गाम्भीर्य उपलब्ध होता है । भावों की गहनता और गम्भीरता की अभिव्यक्ति में वे अतुलनीय है । उनके भावों में सघनता भी है और व्यापकता भी । भवभूति ने जिन आदर्शों की स्थापना की है उनमें दाम्पत्य-प्रेम का आदर्श सर्वोपरि है । दाम्पत्य-प्रेम का उन्होंने अत्यन्त उज्ज्वल और निर्मल चित्रण किया है । उसमें वासना, स्वार्थ या द्वेष लेशमात्र भी नहीं है ।[१] पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध की उदात्त कल्पना उन्होंने मालतीमाधवम् में प्रस्तुत की है[२] जबकि आदर्श दाम्पत्य-प्रेम की अभिव्यक्ति उत्तररामचरितम् में ।[३] पति-पत्नी के उत्कृष्ट प्रेम के वर्णन में अतुलनीय हैं ।

---

१. *महावीरचरितम्* - १/२५ और *उत्तररामचरितम्* - ६/१२ ।

२. *मालतीमाधवम्* - ६/१८ ।

३. *उत्तररामचरितम्* - १/३९ ।

अपने पूर्ववर्ती नाटककारों में 'भास' तथा 'कालिदास' से भवभूति अधिक प्रभावित हुए हैं । मालतीमाधवम् तथा भासकृत अविमारक के कथानक में कहीं-कहीं साम्य दृष्टिगोचर होता है । इसी प्रकार महावीरचरितम् की कथावस्तु तथा नाट्यशिल्प के निरूपण में अभिषेकनाटक और बालचरित का प्रभाव देखा जा सकता है । सम्भव है, महावीरचरितम् में वीर रस की प्रधानता देने की कल्पना भवभूति को अभिषेकनाटक से मिली हो जिसमें प्रधान रस वीर है । उत्तररामचरितम् में भी भास का प्रभाव अनेक स्थलों पर स्पष्टतया परिलक्षित होता है ।

भवभूति को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले कवि कालिदास हैं । भवभूति के तीनों नाटकों पर कालिदास के नाटकों एवं काव्यों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । मालतीमाधवम् में कामन्दकी द्वारा मालती के सम्मुख उर्वशी और शकुन्तला के नामों का उल्लेख 'विक्रमोर्वशीयम्' तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की कथावस्तु का स्मरण कराता है । नवम अङ्क में मालती के विरह में व्याकुल माधव की प्रायः सभी चेष्टाएँ विक्रमोर्वशीयम् के चतुर्थ अङ्क में उर्वशी के विरह में व्याकुल पुरुरवा की चेष्टाओं के समान है । मालतीमाधवम् के नवम अङ्क में 'मेघदूतम्' का प्रभाव उन स्थलों पर स्वतः स्पष्ट हो जाता है, जहाँ केवल भाव-साम्य ही नहीं अपितु वृत्त-साम्य तथा शब्द-साम्य भी दृष्टिगोचर होता है; मालतीमाधवम् में मेघ के प्रति माधव के कथन - *'कच्चित्सौम्य प्रियसहचरी विद्युदालिङ्गति त्वाम्'* की तुलना मेघदूतम् में मेघ के प्रति यक्ष द्वारा कथित 'कच्चित्सौम्य' से आरम्भ होने वाले पद्य के साथ की जा सकती है ।[१]

उत्तररामचरितम् में भी कई स्थलों पर कालिदास का प्रभाव दिखायी देता है । प्रथम अङ्क में चित्र-दर्शन के दृश्य की कल्पना भवभूति को सम्भवतः रघुवंशम् से प्राप्त हुई होगी । (कालिदास ने चित्र-दर्शन का केवल सङ्केत किया है ।)[२] नाटक में ऐसे भी अनेक स्थल हैं, जो

---

१ *मालतीमाधवम्* - ९/२५ तथा *मेघदूतम्* - २/५३ ।

२. *रघुवंशम्* - १४/२५ ।

स्पष्टतया अभिज्ञानशाकुन्तलम् से प्रभावित हैं । उत्तररामचरितम् के प्रथम अङ्क में राम सीता-विरहजन्य दुःख की कल्पना में लीन हैं । उसी समय नेपथ्य से 'अब्रह्मण्यम्' की पुकार उनके ध्यान को आकर्षित करती है और वे दृढ़तापूर्वक प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिये उद्यत हो जाते हैं । उधर अभिज्ञानशाकुन्तलम् के छठें अङ्क में शकुन्तला के विरह में व्याकुल दुष्यन्त विचारों में लीन है । नेपथ्य से 'अब्रह्मण्यम्' की पुकार सुनकर उनके विचारों की शृङ्खला टूटती है और वे दृढ़तापूर्वक मित्र के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए उद्यत हो जाते हैं । उत्तररामचरितम् के छठें अङ्क में कुश और लव के अभिज्ञान का दृश्य भी सर्वदमन के अभिज्ञान-दृश्य के समान ही है, परन्तु इस अनुकरण में भी भवभूति की प्रतिभा ने सर्वत्र मौलिकता और नवीनता का परिचय दिया है ।

मालतीमाधवम् तथा उत्तररामचरितम् में कहीं-कहीं शूद्रक का प्रभाव दिखायी देता है । मालतीमाधवम् के द्वितीय अङ्क में - *'ततः प्रविशति उपविष्टा सोत्कण्ठा मालती लवङ्गिका च'* मृच्छकटिकम् के *'ततः प्रविशति आसनस्था सोत्कण्ठा वसन्तसेना मदनिका च'*[१] के समान है । उत्तररामचरितम् की प्रस्तावना में सूत्रधार का कथन - *'एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यकस्तदानीतनश्च संवृत्तः'* भी मृच्छकटिकम् के सूत्रधार के कथन से प्रभावित है ।[२]

जहाँ एक ओर भवभूति अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित हुए हैं, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने परवर्ती कवियों को प्रभावित किया है । इस आदान-प्रदान की प्रक्रिया में उल्लेखनीय बात यह है कि भवभूति ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के भावों और विचारों को सँजोया और सँवारा है उनमें संशोधन किया है और अपनी प्रतिभा और पाण्डित्य के योग से उन्हें सर्वथा मौलिक और मनोहारी रूप प्रदान कर दिया है जबकि उनके परवर्ती कवियों ने उनके अनुकरण

---

१. ***मृच्छकटिकम्*** - द्वितीय अङ्क ।

२. ***'एषोऽस्मि भोः कार्यवशात्प्रयोगवशाच्च प्राकृतभाषी संवृत्ता ।'*** - मृच्छकटिकम्, प्रस्तावना ।

का प्रयास तो किया है परन्तु वे उसमें सफल नहीं हो सके हैं ।

भगवान् राम के प्रति अनन्य भक्ति तथा महर्षि वाल्मीकि के प्रति अगाध श्रद्धा ने भवभूति को रामचरित पर लेखनी चलाने के लिये प्रेरित किया । अपने दो नाटकों में उन्होंने रामायण के सम्पूर्ण कथानक को समेट लिया है । महावीरचरितम् में राम के जीवन की अनेक घटनाओं को नाटकीय रूप देने के लिये कवि ने मूलकथा में अनेक परिवर्तन कर दिये हैं । ऐसा करने में उनका उद्देश्य कथानक का तर्कसम्मत विकास करना है । भवभूति ने अपने पात्रों के चरित्र को आदर्श बनाने के लिये भी मूलकथा में परिवर्तन किये हैं । महावीरचरितम् में कैकेयी, राम, लक्ष्मण आदि के उन दोषों का, जो रामायण में दृष्टिगोचर होते हैं, निरसन कर दिया गया है । भवभूति के पात्रों में राम आदर्श पति हैं, सीता आदर्श पत्नी हैं । इसी प्रकार उनके प्रत्येक पात्र आदर्श पात्र हैं ।

भवभूति करुण रस के प्रतिष्ठापक कवि हैं । प्राकृत महाकाव्य *'गउडवहो'* के प्रणेता *वाक्पतिराज* भवभूति से बहुत प्रभावित हुए थे । उन्होंने कहा है कि भवभूति की रचनाएँ काव्यामृत से परिपूर्ण महासागर के समान हैं ।[१] धनपाल ने भवभूति की भाषा की तुलना नट स्त्री से की है। जिस प्रकार नाटकों के अभिनय में अभिनेत्री नृत्य के समय अपने विभिन्न पादन्यासों द्वारा अनेक प्रकार के भावों और रसों को स्पष्ट करती जाती है, उसी प्रकार भवभूति के नाटकों की भाषा अपने अनूठे शब्द-विन्यास द्वारा सभी प्रकार के भावों और रसों को स्वतः स्पष्ट करती जाती है ।[२] भवभूति के समर्थकों ने उन्हें कालिदास से बड़ा कवि घोषित कर दिया -

कवयः कलिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः ।

---

१. *गउडवहो* - ७९९ ।

२. *स्पष्टभावरसा चित्रैः पादन्यासैः प्रवर्तिता ।*
नाटकेषु नटस्रीव भारती भवभूतिना ॥ – तिलकमञ्जरी, भूमिका, श्लोक ३० ।

परन्तु कालिदास को कवि और भवभूति को महाकवि कह देने से ही कालिदास पर भवभूति की श्रेष्ठता सिद्ध नहीं हो जाती । इस सन्दर्भ में विचार करना आवश्यक है । पूर्ववर्ती नाटककारों के परिप्रेक्ष्य में भवभूति की अनिवार्यतः कालिदास से तुलना की जाती है क्योंकि वे दोनों ही शीर्षस्थ नाटककार हैं । कुछ विद्वानों का यह मानना है कि उत्तररामचरितम् की रचना में भवभूति कालिदास से बढ़कर हैं -

नाटके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा ।
उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।।

परन्तु दोनों में से कौन सर्वश्रेष्ठ है, यह प्रश्न प्राचीन विद्वत्-समाज में विवादित था-जैसा कि इस पद्य से पता चलता है - ***'कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः'*** अर्थात् कालिदास आदि तो केवल कवि हैं, किन्तु भवभूति तो महाकवि हैं । भवभूति और कालिदास की कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि भवभूति पर कालिदास का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । भवभूति ने कहीं-कहीं कालिदास के भावों से प्रेरणा भी प्राप्त की है । 'उत्तररामचरितम्' के चित्र-दर्शन के दृश्य की कल्पना 'स्वप्नवासवदत्तम्' के चित्र-दर्शन के दृश्य से अथवा 'रघुवंशम्' के निम्नलिखित श्लोक से ली गयी जान पड़ती है -

तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रियार्थानासेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु ।
प्राप्तानि दुःखान्यपि दण्डकेषु संचिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन् ।।

अर्थात् संसार के समस्त अभीष्ट सुखों का उपभोग करने वाले राम और सीता जब अपनी चित्र-शाला में बैठकर अपने अतीत जीवन के उन चित्रों का अवलोकन करते थे जिनमें दण्डकारण्य की दुःखद घटनाओं का चित्रण किया गया था, तब चिन्तन के क्षेत्र में पुनः आ जाने के कारण वे पूर्वानुभूत दुःख में भी एक अपूर्व सुख की सृष्टि करते थे ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में *दुष्यन्त* और *भरत* के अज्ञात मिलन के आधार पर भवभूति ने उत्तररामचरितम् में *राम* और *लव-कुश* का अज्ञात मिलन अङ्कित किया है ।[१] सीता की छाया रूप में कल्पना करने का सङ्केत सम्भवतः शाकुन्तलम् के छठें अङ्क से मिला होगा, जहाँ सानुमती अप्सरा अदृश्य रूप में ही दुष्यन्त की विरह-दशा का अवलोकन करती है । मालतीमाधवम् के नवें अङ्क तथा विक्रमोर्वशीयम् के चौथे अङ्क में भी पर्याप्त साम्य है । इस प्रकार विरही माधव अपनी प्रेमिका के पास मेघ द्वारा जो सन्देश भेजता है, उसमें भी भाव, भाषा, छन्द सभी दृष्टियों से मेघदूतम् का प्रत्यक्ष प्रमाण दिखता है ।

कालिदास और भवभूति दोनों ही संस्कृत के शीर्षस्थानीय नाटककार हैं । दोनों महाकवि अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं । दोनों की कलात्मक विशेषताओं में अन्तर है । कालिदास ने अपने नाटकों में विदूषक को स्थान दिया है, किन्तु भवभूति ने उसका परित्याग किया है । कालिदास की कविता में व्यञ्जना-वृत्ति की प्रधानता है, तो भवभूति की वाणी में वाच्यार्थ की प्रगल्भता । कालिदास ने थोड़े से चुने हुए शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ की अभिव्यक्ति की है तो भवभूति विस्तार द्वारा किसी भाव का विशद वर्णन करते हैं ।

कालिदास बहुत-कुछ अपने पाठक की कल्पना पर छोड़ देते हैं तो भवभूति सब कुछ स्वयं ही कह देते हैं । कालिदास शृङ्गार रस के क्षेत्र में अद्वितीय हैं तो भवभूति करुण रस के क्षेत्र में अप्रतिम हैं । कालिदास ने नारी के बाह्य सौन्दर्य का रमणीय वर्णन किया है जो भवभूति ने उसके अन्तः सौन्दर्य का उद्घाटन किया है । कालिदास और भवभूति में श्रेष्ठ कौन है । इस सन्दर्भ में यह जानना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि प्राचीन आलोचकों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन भी

---

१ ***संस्कृत नाटककार*** - कान्ति किशोर भरतिया, पृष्ठ १५० ।

* *द्रष्टव्य*- 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, कालिदास और भवभूति की तुलना

किया जाता था और इस प्रकार के अध्ययन से जो निष्कर्ष निकलता था उसे बहुत थोड़े शब्दों में व्यक्त कर दिया जाता था । भवभूति के उत्तररामचरितम् की तुलना में जब संस्कृत का और कोई नाटक न ठहर सका तब अपने अध्ययन के निष्कर्ष को किसी समालोचक ने केवल एक पंक्ति में इस प्रकार व्यक्त कर दिया - ***'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।'***

बहुत सारे विद्वानों ने दोनों की विस्तृत तुलना की है, उन सभी के मतों को देना यहाँ पर सम्भव नहीं है । विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की तुलनात्मक टिप्पणियों के आधार पर दोनों की तुलनात्मक समीक्षा की गयी हैं । संस्कृत के सभी पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वान् एक स्वर से यही बात कहते हैं कि संस्कृत के नाटककारों में कालिदास के पश्चात् सर्वोच्च स्थान भवभूति का ही है । ***ए०वेबर*** ने भवभूति के तीनों नाटकों की गणना संस्कृत के उत्तम नाटकों मे है ।[1] ***क्लीन ने*** मालतीमाधव की तुलना *'रोमियो एण्ड जुलियट'* से की है[2] तथा वे भवभूति को *'भारत का शेक्सपीयर'* मानते हैं ।[3] ***विन्टरनित्स*** भी मालतीमाधवम् में वर्णित माधव और मालती के प्रणय के विकास की चर्चा करते हुए उसकी तुलना रोमियो एण्ड जुलियट से करते हैं ।[4] उनके अनुसार रसों के विशेषतः करुण के वर्णन में भवभूति कालिदास से आगे हैं । ***मेक्डॉनल*** के अनुसार भवभूति की कृतियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध और सर्वाधिक लोकप्रिय मालतीमाधवम् है। उत्तररामचरितम् में अनेक सुन्दर अंश है तथापि कार्याभाव के कारण वह नाटक

---

1. ***A.Weber :*** The History of Indian Literature.
2. ***Klein :*** Geschichte des Dramas, III p. 135.
   The History and Culture of the Indian people, Vol. III, p. 308.
3. ***Klein :*** History of Dramas, Vol. III p. 51.
   Dasgupta and de : History of Sanskrit Literature, p 763.
4. ***Winternitz:*** G.I.L. III, p.236
   The History and culture of the Indian People, vol. III P.308.

की अपेक्षा नाटकीय काव्य अधिक है । राम और सीता का कोमल प्रणय; जो संताप से और भी पवित्र हो गया है, में करुणा की जैसी अभिव्यक्ति हुई है वैसी अन्य भारतीय नाटक में दुर्लभ है। वह दृश्य जिसमें कुश और लव का उनके पिता राम के साथ मिलन दिखाया गया है, काव्य-प्रकर्ष के उच्च शिखर पर पहुँच गया है ।[१] उनकी कृतियों में पाण्डित्य और प्रतिभा का सुन्दर संयोग है । भाषा की प्रौढता, शास्त्रों का व्यापक ज्ञान, भावों की गरिमा एवं निरीक्षण के कारण उनके ग्रन्थों में सरलता के स्थान पर गम्भीरता और उदात्तता के अधिक दर्शन होते हैं ।[२]

डॉ० ए०बी०कीथ ने भवभूति के नाटकों की सविस्तार आलोचना की है । उनके अनुसार, 'नाटक के रूप में उत्तररामचरिमत् उच्चतर स्तर तक नहीं पहुँचता' परन्तु काव्य के रूप में उत्तररामचरित के गुण सुस्पष्ट और निर्विवाद हैं । अन्तिम अङ्कों में वे कालिदास से भी उत्कृष्ट है, क्योंकि सीता और राम के पुनर्मिलन में भाव की गहराई है । दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलन के अपेक्षाकृत निर्जीव चित्र से वह भाव उद्बुद्ध नहीं होता । दुष्यन्त और उसकी तपोवन-प्रेयसी की अपेक्षा राम और सीता अधिक मार्मिक जीवन तथा गहन अनुभूति के प्राणी हैं।[३] ***महामहोपाध्याय काणे*** के शब्दों में संस्कृत के नाटककारों तथा कवियों के नक्षत्र-मण्डल में भवभूति सर्वाधिक देदीप्यमान नक्षत्रों में से एक है ।[४] ***डॉ० भण्डारकर*** ने भवभूति को अत्यन्त कुशल कवि बताया है । उनके अनुसार करुणा की कोमलता और गम्भीरता को उन्होंने सफलतापूर्वक व्यक्त किया है । साधारण वस्तुओं तथा कार्यों में भी सौन्दर्य ढूढ़ निकालने तथा भावों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर को स्पष्ट करने का कौशल भी उनमें है । शैली तथा अभिव्यञ्जना

---

१. ***A.A. Macdonnel :*** A History of Sanskrit Literature, pp. 366-368

२. *शान्तिकुमार नानूराम व्यास :* संस्कृत और उसका साहित्य, पृष्ठ १११।

3. *Sanskrit Drama* : Keith, (Hindi Translation) pp. 198-209.

4. *Uttarramcharita* : P.V. Kane, Introduction, p. 1.

पर उन्हें पूर्ण अधिकार है । उनमें नाटककार की अपेक्षा कवि की प्रतिभा अधिक है।[१]

शारदारञ्जन राय के अनुसार भवभूति संस्कृत के सर्वाधिक लोकप्रिय नाटककारों में से एक हैं। तथा विद्वान् समालोचकों द्वारा उत्तररामचरितम् की गणना संस्कृत के सर्वोत्कृट नाटकों में की जाती है ।[२] ***आचार्य बलदेव उपाध्याय*** की भी यही धारणा है कि भवभूति के जोड़ का नाटककार कालिदास को छोड़कर संस्कृत साहित्य में दूसरा कोई नहीं है और उत्तररामचरितम् संस्कृत साहित्य की ही नहीं प्रत्युत विश्व-नाटक साहित्य की दिव्य विभूति है ।[३] *डॉ० भण्डारकर* मालतीमाधवम् की कथावस्तु के संगठन में कवि की मौलिकता को तो स्वीकार करते हैं परन्तु वे मानते हैं कि उसको व्यवस्थित करने में कवि ने मृच्छकटिकम् और मुद्राराक्षसम् के समान कौशल का परिचय नहीं दिया है ।

वाचस्पति गैरोला का मत है कि भवभूति ने उत्तररामचरितम् की कथावस्तु को अपनी मौलिक कल्पना द्वारा विशेष प्रभावशील बना दिया है । चित्र-दर्शन राम का दण्डकारण्य में पुनरागमन तथा वासन्ती से मिलाप, छाया-सीता की उदात्त कल्पना, सातवें अङ्क का गर्भाङ्क - ये सभी भवभूति की मौलिक देन हैं और इन्हीं विशिष्ट प्रसङ्गों से भवभूति की कथावस्तु विशेष प्रभावोत्पादक हुई है ।[४]

भवभूति की भाषा की आलोचना करते समय अनेक समीक्षक ग्रियर्सन के इस कथन को उद्धृत करते हैं-'मुझे विश्वास नहीं होता कि भारत में कभी कोई ऐसा पण्डित हुआ होगा जो, बिना पूर्व अध्ययन के भवभूति के दुरूह अंशों को पहिली बार में ही समझ सका होगा ।[५]

---

1. ***Malatimadhava*** : R.G. Bhandarkar, Introduction, p. 11
२. ***उत्तररामचरितम्*** - शारदारञ्जन राय, भूमिका, पृष्ठ १-२ ।
३. ***संस्कृत वाङ्मय*** - आचार्य बलदेव उपाध्याय : पृष्ठ - ६९-७० ।
४. ***संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास*** - वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ ६२६ ।
५. ***Malatimadhava*** - M.R. Kale, Introduction, P. 30, तथा
महाकवि भवभूति - डॉ० गङ्गासागर राय, पृष्ठ १६५, पाद-टि० १ ।

आचार्य बलदेव उपाध्याय की मान्यता है कि भवभूति ने जैसा उज्ज्वल दाम्पत्य-प्रेम का चित्र खींचा है वैसा संस्कृत साहित्य में अत्यन्त दुर्लभ है । अन्य कवियों ने, स्वयं कालिदास ने भी सांसारिक वासना भरे काम का ही अधिकतर वर्णन किया है । भवभूति ने यौवनकाल की उद्दाम कामवृत्ति का वर्णन मालतीमाधवम् में किया है और विश्वस्त हृदय के सच्चे शुद्ध प्रेम का चित्र उत्तररामचरितम् में दिया है । भवभूति के पात्र कहीं भी 'स्वच्छन्द' प्रेम के पक्षपाती नहीं है, प्रत्युत समाज के द्वारा अभिनन्दित धर्मानुयायी प्रणय-मार्ग के पथिक हैं ।[१]

इन सभी प्राच्य एवं अर्वाचीन समालोचकों के आलोक में ऐसा कहा जा सकता है कि उनकी तीनों कृतियों-महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् और उत्तररामचरितम् में प्रकाण्ड पाण्डित्य दृष्टिगोचर होता है । उन्हें वेद, उपनिषद्, सांख्य-योग आदि दार्शनिक विषयों का भी ज्ञान था ।[२] वे व्याकरण, न्याय, मीमांसा के महान् पण्डित[३] तथा इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र के ज्ञाता थे जिसका प्रमाण उत्तररामचरितम् में प्राप्त होता है ।[४]

---

१. *संस्कृत साहित्य का इतिहास* - आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५६५-५६६ ।

२. *'पदवाक्यप्रमाणज्ञः'* - उत्तररामचरितम्, प्रथम अङ्क ।

३. *'यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च'* - मालतीमाधवम्, १/१० ।

४. *'इतिहासं पुराणं च धर्मप्रवचनानि च'* - उत्तररामचरितम्, ५/२३ ।

सहायक ग्रन्थसूची

अभिज्ञानशाकुन्तलम् - *कालिदास,* M. R. Kale. Bombay. 1957 .

अभिनवनाट्यशास्त्र - *सीताराम चतुर्वेदी,* अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी, सं० २००८ ।

अभिनवभारती - *अभिनवगुप्त,* गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९२५

अमरकोश - *अमर सिंह* ।

आर्यासप्तशती - *गोवर्धनाचार्य,* रमाकान्त त्रिपाठी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५ ।

अष्टाध्यायी - *पाणिनि* ।

उत्तररामचरितम् - *विनायक सदाशिव पटवर्धन ।*

उत्तररामचरितम् - भवभूति-डॉ० *कपिलदेव द्विवेदी,* रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद, १९८९ ।

उत्तररामचरितम् - *डॉ० पी०वी० काणे,* मोतीलाल बनारसीदास, १९६२ ।

उत्तररामचरितम् - *M.R. Kale,* Sharda Kredon Press, Bombay 1901.

उत्तररामचरितम् - *शारदारञ्जन राय,* कलकत्ता, १९४९ ।

उत्तररामचरितम् *डॉ० लाल रमा यदुपाल सिंह*, श्री शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, १९६५ ।

उत्तररामचरितम् - *वीरराघवटीका* ।

कथासरित्सागर - *सोमदेव*, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९५९ ।

कालिदास एवं भवभूति - *डी० एल० राय*, अनु० रूप नारायण पाण्डेय, बम्बई, १९५६ ।

कुन्दमाला - *दिङ्नाग*, भारतीय संस्कृत भवन, जालन्धर, १९५५ ।

कामसूत्र - *वात्स्यायन*, देवदत्तशास्त्री, चौखम्भा संस्कृत, सीरीज ऑफिस, वाराणसी, १९६४ ।

काव्यप्रकाश - *आचार्य मम्मट*, आचार्य विश्वेश्वर टीका,ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, १९६० ।

काव्यालङ्कारसूत्र - वामन, *आचार्य विश्वेश्वर*, Delhi University Delhi 1959.

किरातार्जुनीयम् - *महाकवि भारवि*, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२३ ।

तत्त्वप्रदीपिका - *चित्सुखाचार्य*, निर्णयसागर प्रेस , १९१५ ।

तिलकमञ्जरी - *धनपाल*

दशरूपकम् - धनञ्जय-*डॉ० भोलाशङ्कर व्यास* टीका, १९६७, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।

ध्वन्यालोक - आनन्दवर्धन - *आचार्य विश्वेश्वर* टीका, नई दिल्ली, १९५२ ।

नाट्यशास्त्र - *भरतमुनि*, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४३ ।

नाटकचन्द्रिका - *रूपगोस्वामी*, चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, १९६४

नाटकलक्षणरत्नकोश - *सागरनन्दी*, Oxford University Press. 1937.

नाट्यदर्पण - *रामचन्द्रगुणचन्द्र*, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज, बड़ौदा १९२०

नीतिशतकम् - *भर्तृहरि*, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९५७

प्रतिमानाटक - *टी० गणपति शास्त्री*, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, १९१५ ।

बालरामायण - *जीवानन्द विद्यासागर*, कलकत्ता, १९८४ ।

भारतीय नाट्यशास्त्र की

परम्परा और दशरूपक - *डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी* ।

भवभूति के नाटक - *डॉ० ब्रज वल्लभ शर्मा* ।

भवभूति - *वाचस्पति गैरोला* ।

भवभूति और उनकी

नाट्यकला - *डॉ०अयोध्या प्रसाद सिंह*, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी १९८८

भावप्रकाशनम् - *शारदातनय*, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज, बड़ौदा, १९३० ।

भारतीय नाट्य-परम्परा

और अभिनय दर्पण - *वाचस्पति गैरोला*, Ministry of Education Govt. of India

मेघदूतम् - कालिदास-*शारदारञ्जन राय*, कलकत्ता, १९४६ ।

मुद्राराक्षस - *विशाखदत्त*, ओरिएन्टल बुक एजेन्सी, पूना १९३० ।

मालतीमाधव-सार-आणि विचार - *M. V. Lele.*

मालतीमाधवम् - *माधवव्यङ्कटेश*-सारआणि विचार ।

मालतीमाधवम् - *डॉ० आर०जी० भण्डारकर*, गवर्नमेण्ट बुक डिपो, बम्बई,१८७६

मालतीमाधवम् - *भवभूति, रामप्रताप त्रिपाठी* टीका, लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद, १९७३ ।

महावीरचरितम् - *भवभूति, रामप्रताप त्रिपाठी* टीका, लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद, १९७३ ।

महाभारत - *वेदव्यास* चित्रशाला प्रेस, पूना, १९२९ - १९३३ ।

महाभाष्य - *पतञ्जलि*, प्रदीप-उद्योत टीका सहित ।

महाकवि भवभूति - *डॉ० गङ्गा सागर राय*, चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, १९६५

महाकवि भवभूति - *डॉ० शिव बालक द्विवेदी*, ग्रन्थम् , कानपुर, १९८५ ।

मनुस्मृति - *मनु*

मृच्छकटिकम् - *शूद्रक*

योगसूत्र - *पतञ्जलि*, आनन्दाश्रम मुद्राणालय, पूना, १९१९ ।

रघुवंशम् - *कालिदास*, पण्डित पुस्तकालय काशी, १९५५ ।

राजतरङ्गिणी - *कल्हण*, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६१ ।

रामायण - *वाल्मीकि*, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० २०१७ ।

रसगङ्गाधर - *पण्डितराज जगन्नाथ*, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३९ ।

रसिकजीवन - *गदाधर भट्ट* ।

रसार्णवसुधाकर - *शिङ्गभूपाल*, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, १९१६ ।

व्यक्ति विवेक - *महिमभट्ट*, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६४ ।

विक्रमोर्वशीयम् - *कालिदास*, चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, १९५३

साहित्यदर्पण - *आचार्य विश्वनाथ*, डॉ० सत्यव्रत सिंह,चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी १९५७ ।

संस्कृत और उसका साहित्य - *शान्तिकुमार नानूराम व्यास ।*

संस्कृत नाट्यकला - *डॉ० राम लखन शुक्ल*, मोतीलाल बनारसीदास,वाराणसी, १९७०

संस्कृत साहित्य का इतिहास - *डॉ० कपिलदेव द्विवेदी*

संस्कृत नाटककार - कान्तिकिशोर भरतिया, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

संस्कृत साहित्य का इतिहास - *डॉ० बलदेव उपाध्याय*, शारदा मन्दिर, वाराणसी, १९६८ ।

संस्कृत आलोचना - *आचार्य बलदेव उपाध्याय*, हिन्दी समिति-सूचना विभाग,उ०प्र०, १९६३ ।

संस्कृत नाटक - *डॉ० कीथ*, अनुवादक डॉ० उदय भानु सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६५ ।

संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - *डॉ० रामजी उपाध्याय*, रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, १९५७ ।

संस्कृत साहित्य की रूपरेखा - *पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय एवं डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास* साहित्य निकेतन, कानपुर १९६७ ।

सप्तपर्णा -अपनी बात - *महादेवी वर्मा*

संस्कृत साहित्य का इतिहास - *डॉ० कीथ*, अनुवादक डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री, १९६० ।

साहित्यदर्पण - *पं० शालिग्राम शास्त्री*, मोतीलाल बनारसीदास, १९५६ ।

संस्कृत-हिन्दी कोश - *वामन शिवराम आप्टे*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,१९६६ ।

सदुक्तिकर्णामृत - *श्रीधरदास*, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर १९३५ ।

A History of Indian Sanskrit Literature- *M. Winternitz*., Motilal Banarasidas, Varanasi, 1963.

A History of Indian Literature - *V. Vardachari*, Allahabad - 1952.

Archaeological

Survey of India - *M. B. Garde,* Report for 1915-1916 .

Bhavbhuti &

His play in Sanskrit

Literature - *A. Barua.* Calcutta , 1878.

Bhavbhuti - *Dr. V.V.Mirashi,* Popular Prakashan, Bombay

1968.

Drama & Dramatic

dance of Non

Europian Races - *Dr. Ridgeway*

Early History

of India - *Vincent Smith*

History of

Dharmashastra - *P.V. Kane.* Bhandarkar Research Institute,

Pune-1968.

Geschichte des Dramas-Klein

History of Dramas-Klein

History of Sanskrit

Literature - *Macdonnel,* Munshi Ram Manohar Lal, Delhi.

1962.

History of Indian Literature - *Prof. A. Weber*. 1961.

Introduction to Gaudavaho - *Vagpati Raj, S. P. Pandit*

Indian Literature & Culture - *Leopold V. Shroeder*

India 'What can it teach us - *Maxmuller,*Longmens Green & Co. London, 1892.

Mahavircharitam - *Todermal.* Oxford. 1928

Malatimadhavam - Bhavbuti - *M. R. Kale*, Gopal Narayan &. Co. Bombay 1928.

Malatimadhava - *Dr. R. G. Bhandarkar* - 1905

Mind & Art of Bhavbhuti - *Dr. Vimla Gera*, Meharchand Lacchhmandas, Delhi. - 1973.

Rama's Later History - *S. K. Belvelker*, Hoveward University Press, 1915.

Theory of Vigitation spirit - *Dr. A. B. Keith*

The Classical period Sanskrit of Literature - *M. Krishnamachariur* Madras, 1906.

Sanskrit Drama - *Dr. A. B. Keith,* Oxford. 1924.